धानिधि ग्रन्थावली

ऊर्ध्वांग चिकित्सा

तृतीय भाग

शालाक्य तन्त्रान्तर्गत

नासारोग-विज्ञान

लेखक

श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य

प्रयाग

प्रकाशक

आयुर्वेदरत्न पं० राजेन्द्रचन्द्र शुक्ल वैद्य

सुधानिधि कार्यालय,

३ सम्मेलनमार्ग, प्रयाग।

प्रथम संस्करण १०००

भाद्र सं० २००२ वै० सितम्बर १९४५ ई०

मूल्य २) दो रुपया
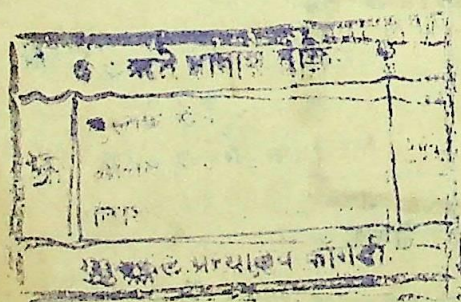
मुद्रक

सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग।

श्री मतेभरद्वाजायनमः

आरम्भकी बात

देखनेमें नाक शरीरका एक बहुत छोटासा अङ्ग है; परन्तु इसका महत्व बहुत बड़ा है। नाक न रही तो कुछ न रहा। सारे शरीरकी शोभा इसीके बल पर है। कोई किसी पर अप्रसन्न हुआ तो उसका हमला पहले नाक पर ही होता है। कहता है मारूँगा नाक पिच्ची हो जायगी, नाक काटकर समझा जाता है कि मैंने इसे बदसूरत कर दिया। यह इतनी कोमल वस्तु है कि प्रत्यक्षमें बिना काटे भी मनुष्यकी इज्जत मिट्टीमें मिला देती है। जरा चाल बेचाल हुई, जरा रास्तेसे पैर खिसका कि नाक नीची हो जाती है, नाक कट जाती हैं, नाक नहीं रह जाती ! जरासी बदनामीमें ही नाक पुछ जानेका भय रहती है। बाल तो बाल परन्तु नाकके बालका साहित्यमें खास स्थान है। कोई किसीके बलपर इतराने लगा कि लोग कहते हैं कि यह तो उसकी नाकका बाल है ! राम-रावण युद्धका आरम्भ भी शूर्पनखाकी नाक कटनेसे ही हुआ था और इस समयके महासमरका सूत्रपात भी नाक रखनेकी शानके कारण ही हुआ था। इस तरह यह नाक सब कुछ करा सकती है। प्रत्यक्षमें भी बाहरी सर्दी-गर्मीका असर पहले नाक पर ही होता है। उस असर का प्रभाव भी जबरदस्त होता है। मानों यह नाक ही शरीरका थर्मा-मीटर है। और ऊर्ध्वाङ्गके गौरवका गौरीशंकर तो यह है ही। उसी नाकके सम्बन्धकी यह पुस्तक सर्वसाधारणके सामने है।

ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा आयुर्वेदके अष्टाङ्गोंमें से एक है। इसमें मुख, नाक, कान, आँख और शिरके रोगोंका अन्तर्भाव होता है। किन्तु इधर इसकी ओर बहुत दुर्लक्ष्य होने लग गया था। वैद्य लोग इस अंग

की चिकित्सामें विशेषज्ञ होनेका प्रयत्न छोड़ बैठे थे। विद्यार्थियोंको पढ़ानेमें भी इसको गौणत्व प्राप्त हो रहा था। इसके विरुद्ध डाक्टरों में इस अंगका कोई विशेष नाम न होने पर भी इसके महत्वको समझने में अवहेलना नहीं होती। जैसे हमारे यहाँ ऊर्ध्वाङ्ग या शालाक्यतन्त्र कह देनेसे मुख-आँख-नाक-कान सबका बोध हो जाता है वैसे एलोपैथी में कोई एक शब्द नहीं है। उन्हें नोज, थ्रोट, ईयर, आईज अलग अलग नाक-गला-कान-नेत्र कहकर इस अंगका परिचय देना पड़ता है। किन्तु इसका अलग अध्ययन होता है और इस विषयके विशेषज्ञ भी होते हैं। यही कारण है सर्वसाधारण ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्साके लिये ऐसे विशेषज्ञकी ओर ही अधिक आकृष्ट होते हैं। मध्यकालकी आयी हुई यह अवहेलनापूर्ण विषमता अब आगे चलायी नहीं जा सकती। इसलिये इधर मेरा ध्यान गया और मैंने शिक्षार्थियोंके पाठ्यक्रममें इस अङ्गका अलग निर्देश करनेका प्रयत्न किया और इसकी एक विषयके रूपमें अलग परीक्षा लेनेकी व्यवस्थाका भी प्रतिपादन किया। अवश्य ही पहले इस अङ्गपर स्वतन्त्र ग्रन्थ थे। निमि, भोज, गदाधर, खरनाद, विदेह आदिके स्वतन्त्र ग्रन्थ अप्राप्य हो गये हैं। अब तो चरक-सुश्रुत-वाग्भटके एकएक दो दो अध्यायमें एक एक दो दो पत्रोंमें इनका जो वर्णन मिलता है उसीसे सन्तोष करना पड़ता है। किन्तु एक स्वतन्त्र अङ्गके विवेचन और चिकित्साके लिये इतना पर्याप्त नहीं। इसलिये मैंने यह भी चाहा कि इस विषय की स्वतंत्र पुस्तकें भी निर्माण होनी चाहिये। अपने यहाँ तो 'जो रास्ता दिखलावे वही आगे चले' वाली कहावत प्रसिद्ध ही है। अतएव मार्ग साफ करनेके लिये मैंने ही आगे बढ़ना उचित समझा। किन्तु अनेक झंझटोंमें फँसे रहनेके कारण मु . अवकाशका अभाव रहता है। इसलिये इस कार्यमें विलम्ब लगना स्वाभाविक था।

छः सात वर्ष पहले औरैयाके सम्मेलनमें जाना पड़ा। उस अवसर पर कुछ भ्रमणमें शरीर ऐसा ताव खा गया कि तीन महीने बीमार

रहना पड़ा। उसके फल स्वरूप कई वर्षों तक यह स्थिति रही कि बार-म्बार जुखाम हो जाया करता था। पूरी तरह पर उससे छुटकारा अब भी नहीं मिला। ऐसी स्थितिमें इस विषयके साहित्य देखनेकी उत्सुकता और भी प्रबल हुई। इसलिये दो वर्ष पहले अध्ययन और लेखनके लिये हरिद्वारके एकान्त स्थलमें रहनेका प्रबन्ध किया। हरिद्वारके आदर्श महन्त स्वामी शान्तानन्दजी नाथ विद्वान, विद्याप्रेमी और विद्वानोंका समादर करनेवाले हैं। उन्हींके श्रवणनाथ ज्ञानमन्दिरमें वृहत पुस्तकालयकी भी सुविधा प्राप्त हुई। अपने साथ भी बहुत सी पुस्तकें ले गया था। ऊपर-ऊपर देखनेसे मालूम पड़ता है कि जैसे नाक छोटी है, उसी तरह उसमें होनेवाले प्रतिश्याय, पीनस आदि रोग भी कुछ ही हैं; किन्तु इस दो सौ से अधिक पृष्ठोंकी पुस्तक देखकर आप समझ सकेंगे कि नाकमें कितने रोग होते हैं और उनका सम्बन्ध कैसा शरीरव्यापी होता है।

बाहरसे नाक छोटी और मामूली मालूम पड़ती है; किन्तु इसका शारीर वर्णन देखकर उसका भीतरी विस्तार और सम्बन्ध प्रकट हो जायगा। नासासामुद्रिक विद्यार्थियोंके लिये नहीं; किन्तु अन्य लोगोंके लिये एक विनोदकी वस्तु होगी। नासाशारीरका अभ्यास हो जानेसे नाकके भीतरी-बाहरी रोग समझने और उनकी उचित चिकित्सा करने में सरलता होगी। शास्त्रमें नासागत ३४ रोगोंका वर्णन है। किन्तु इसकी विषयसूची देखकर प्रकट होगा कि इसमें नाक और नाकसे सम्बन्ध रखने वाले १०० से अधिक रोगोंका वर्णन हुआ है। प्रत्येक रोगका यथासम्भव विस्तृत परिचय, निदान और चिकित्साका साथ ही वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्तमें नासारोगकी सर्वसाधारण औषधियाँ भी लिखी गयी हैं। नासारोगोंका साध्यासाध्यत्व और उसमें बरती जानेवाली आवश्यक सावधानीका निर्देश हुआ है। पथ्यापथ्यका भी विशद वर्णन हुआ है। परिशिष्ट भागमें नाकसे सम्बन्ध रखनेवाले

खाँसी, श्वास, इनफ्लुएञ्जा जैसे २० रोगोंका भी वर्णन दे दिया गया है। शालाक्यकर्ममें उपयोगी यन्त्रशस्त्रों का वर्णन और उनके प्रयोगका भी जिक्र आ गया है। अन्तमें नासारोगके डाक्टरीके पर्यायनाम भी पं० रामसेवक मिश्र ए० एम० एस० के निर्देशानुसार दे दिये गये हैं। कर्णरोग विज्ञान पहले ही छप चुका है इसलिये उसके कुछ पर्यायनाम इसी पुस्तकके अन्तमें दे दिये गये हैं। अवश्य ही लेखक शल्य-शालाक्यका प्रत्यक्षकर्माभ्यासी नहीं; अतएव इस सम्बन्धकी सामान्य जानकारी ही इसमें प्राप्त हो सकेगी और आगे चलकर कोई यशस्वी लेखक उसकी भी पूर्ति कर देगा। इस समय जितना साहित्य इस विषयका संकलित हो सका है, वह दो महीनेके अहर्निश परिश्रमका फल है और इस समय पर्याप्त भी है।

जिन्हें इस विषयका परिचय और अभ्यास है वे देख सकेंगे कि किस प्रकार विषय विवेचन करनेमें प्रयत्नशील रह परिश्रम किया गया है। अनेक आचार्यों और ग्रन्थकारोंके मत और पुरुषार्थको आयत्ती-करण करनेका उद्योग हुआ है। यथाशक्य और यथावश्यक यूनानी मत और डाक्टरी विवरणसे भी लाभ उठानेका प्रयत्न किया गया है।

हमारे वैद्य भाइयोंमें इस विषयकी पूर्णता हो यही लक्ष्य विशेष-रूपसे सामने रहा है। आयुर्वेदविद्यानुरागियोंके लिये यह पुस्तक प्रिय होगी, इसमें सन्देह नहीं। उन्हें नानाक्षार संग्रहका एकत्रीकरण इसीमें मिल जायगा। हाँ, विद्यार्थियोंके लिये यह आवश्यक नहीं कि समूची पुस्तक पाठ्यांशमें रहे। अध्यापकोंका कर्तव्य है कि उनके कोर्सके अनुसार पाठ्यांश निर्दिष्ट कर नोट करा दें, जिससे उनपर परीक्षा की तैयारीमें अधिक भार न पड़े। पुस्तक लिखनेमें बहुतसे ग्रन्थ पढ़ने और देखने पड़े हैं। उनके मतोंसे लेखकको प्रभावित भी होना पड़ा है। उनसे यथावश्यक लाभ भी उठाया गया है। इसलिये सबके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। विशेषकर श्री श्रवणनाथ

संस्थानके महन्त स्वामी शान्तानन्दजी नाथका मैं बहुत आभारी हूँ, जिनकी कृपासे शान्ति और सुविधाके साथ पुस्तक तैयार करनेमें स्थान और निवासकी ही सुविधा ही नहीं प्राप्त हुई, बल्कि पर्याप्त पुस्तकोंकी सहायता भी उनके पुस्तकालयसे मिलती रही और हरिद्वारका निवास सुखकर, मनोरञ्जक और स्मरणीय हो सका। महन्तजीमें आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये आवश्यक क्रियाशीलता और तत्परता है। एक आयुर्वेदिक विशाल धर्मार्थ औषधालय आप चला रहे हैं, जिसे आतुरालयका स्वरूप देनेके लिये भी आपकी इच्छा है। कितने ही आयुर्वेदिक विद्यार्थियोंको आप सहायता भी दिया करते हैं। आपमें इस प्रकारका आयुर्वेदिक प्रेम बढ़ता रहे यह अभीष्ट है। कागज और प्रेसकी असुविधाके कारण पुस्तक सर्वसाधारणके सामने आनेमें दो वर्ष लगे और इस समय भी वह पं० गणेश पाण्डेयजी की कृपासे आ सकी; इसलिये उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

प्रयाग सम्मेलनमार्ग
भाद्र शुक्ल सप्तमी
सं० २००२
ता० १३-९-४५ ई०

विनयावनत
जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य

❀ श्रीधन्वन्तरयेनमः ❀

ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा-विज्ञान

नासारोग विज्ञान

पुस्तकमें प्रयुक्त कुछ प्रसिद्ध औषधियाँ

सुधानिधि पुस्तकालयकी पुस्तकें

आरोग्य विधान	४)	नीति सौन्दर्य	=)
शंकर चरित्र	-)	इञ्जेक्शन प्रकाश	।=)
भारत में प्लेग	-)	पथ्यापथ्य निरूपण	।)
धातु विज्ञान	।)	मूत्र परीक्षा	१)
धारा कल्प	=)	आयुर्वेद मीमांसा	१)
आजकलका वीर्य नाश	≡)	अनुपान कल्पतरु	।।।)
वनौषधि विज्ञान भाग २	।।।=)	रस परिज्ञान	१)
आरोग्य सूत्रावली	१।)	भारतीय भौतिक विज्ञान	।।)
निघण्टु शिरोमणि प्र० भाग	१।)	वैद्य वल्लभ	।=)
दोष विज्ञान	≡)	प्रयाग माहात्म्य	=)
प्राकृत ज्वर	।)	प्रयाग माहात्म्य मराठी	-)
परिभाषा प्रबोध	१।।)	गोरसादि औषधि	-)
कीटाणु शास्त्र	।-)	रोगोत्पादक मक्खी	≡)
प्राणिज औषधि	=)	धन्वन्तरि व्रतकल्प	-)
आयुर्वेद का महत्व	-)	नीति कुसुम	=)
श्रीऔषधि कल्पलता	।।)	आयुर्वैदिक पत्रोंका इतिहास	।)
बुढ़ाईकी रोक और दीर्घ जीवन	≡)	भारतीय रसशास्त्र	।)
हमारा सुख	-)	नैसर्गिक आरोग्य	१।।)
कर्णरोग-विज्ञान	२)	मुखरोग-विज्ञान	२)
नासारोग-विज्ञान	२)	शिरोरोग-विज्ञान	२)
मानसिकरोग-विज्ञान	२)		

पता—वैद्य राजेन्द्रचन्द्र शुक्ल, मैनेजर
३, सम्मेलन मार्ग, प्रयाग.

नासारोग-विज्ञान

ॐश्रीधन्वन्तरयेनमःॐ

नासारोग विज्ञान

नासाशारीर

आघ्राण कर-सूंघकर किसी पदार्थकी गन्धको ग्रहण करना और जानना नासाइन्द्रिय या नाकका प्रधान कार्य है। इसीसे इसे घ्राणेन्द्रिय भी कहते हैं। यह शरीरका गन्धग्राही यन्त्र अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय है। मुखमण्डलके ऊपरी भागमें दोनों नेत्रोंके बीच मस्तकके नीचे और मुखके ऊपर इसका स्थान है। इसके प्रधानतः दो भाग हैं (१) जो भाग बाहरसे दिखलाई देता है और जिसे साधारणतः नाक कहते हैं वह वहिर्नासिका कहलाता है। (२) दूसरा भीतरी भाग जो नथुनोंसे दिखलाई देता है। एक पर्दे द्वारा इसके दो भाग हो गये हैं, दक्षिण-नासारन्ध्र और वामनासारन्ध्र। इन रन्ध्रोंको नासागुहा या नासाखात कहते हैं। नाकके ऊपर ललाटास्थिके नीचे मध्य रेखाके इधर-उधर एक दाहने और दूसरी बायें दो छोटी अस्थियाँ होती हैं। इन्हें नासा-स्थि कहते हैं। चश्मा देनेमें उसका आधार यही (Nasalbone) अस्थि होती है। मध्यरेखामें जहाँ ये दोनों अस्थियाँ पुल-सा बनाती हुई मिलती हैं उसे नासाबन्ध या नासासेतु कहते हैं। ये अस्थि कुछ चौकोर-चार किनारे और दो पृष्ठकी होती हैं। ऊपर और नीचेके किनारे छोटे और अगले-पिछले-लम्बे होते हैं। अगला किनारा मध्य-रेखामें दूसरी ओरकी अस्थिसे जुड़ा रहता है। पिछला किनारा

उच्च हन्वस्थिसे और ऊपरका किनारा ललाटास्थिसे मिला रहता है। नीचेके किनारेके नाकके अगले और नीचेके भागमें कूर्चा या तरुणास्थि (कार्टिलेज) लगी रहती है। कुछ मांस और ऊपर चमड़ा रहता है। यह भाग मुलायम होता है और दबानेसे दब जाता है। इसीको दबाकर नाकसे श्लेष्मा निकाला जाता है। इसकी स्थिति स्थापकताके कारण नाकमें दुर्घटनाका भय कम रहता है। नाकके दोनों ढालू पार्श्वमें जो छिद्र होते हैं उन्हें नकने, नथने या नासारन्ध्र कहते हैं।

नासारन्ध्रोंमेंसे देखनेपर जो दोनों ओर एक एक नाली-सी दिखती है उसे **नासागुहा** या नासाखात कहते हैं। इनके बीचमें एक खड़ा पर्दा लगा रहता है। पर्देका अगला भाग कूर्चा-तरुणास्थिसे बनता है और पिछलेमें अस्थि रहती है; जो नासाफलकास्थि और झर्झरास्थि के मध्यफलकसे बनता है। नासाफलकास्थिका अधिक भाग एक पृथक अस्थिसे बनता है, शेषमें कई अस्थियोंके अंश होते हैं। अधिक भागवाला अंश ही **नासाफलकास्थि** है। यह सपाट और चौकोर होती है। अर्थात् इसमें दो बड़े और दो छोटे किनारे तथा दो पृष्ठ होते हैं। एक किनारा नासिकासे, दूसरा कपालकी तलीकी जतुकास्थिके अंगसे, अगले किनारेका ऊपरी भाग झर्झरास्थिसे मिला रहता है नीचे तरुणास्थि निर्मित भाग किसीसे मिला नहीं रहता। नासागुहाका अस्थि-कृत भाग झर्झरास्थिके मध्य फलकसे भी बनता है। यह झर्झरास्थि या बहुछिद्रास्थि (Ethmoid) कपालकी तलीमें फँसी रहती है और नासिकाकी दीवाल बनानेमें सहायक होती है। यह बहुत खोखली और हलकी तथा दबानेसे टूट जाने योग्य होती है। नासागुहाकी अस्थि की बनावटमें **जतूकास्थि** (Sphenoid bone) की भी सहायता रहती है। यह जतूकास्थि पंख फैलाये हुए चमगादड़ या तितलीके समान कपालकी तलीमें पश्चादस्थि और ललाटास्थिके पीछे

दोनों कर्णास्थियोंके बीचमें फँसी रहती है। इसका अगला पृष्ठ झर्झरास्थिसे मिला रहता है। नासागुहाकी अस्थिमें **ऊर्ध्वहन्वस्थियाँ** (Mondible) भी सहायक होती हैं। ये अस्थियाँ ऊपरके जबड़ेमें दाहने बायें मध्य रेखामें मिली रहती हैं। जिसमें ऊपरी १६ दाँत लगे रहते हैं। इन्हीं अस्थियोंके मध्यरेखामें मिलनेसे मुँहकी छतका अगला भाग और नासिकाका फर्श बनता है। इसके गात्रके चौपहलू भागके एक पृष्ठ से नासिकाकी बाहरी दीवाल बनती है। जिसमें एक छिद्र होता है, जिसके द्वारा इसका वायुसे भरा हुआ कोठा नासिकासे सम्बन्ध रखता है। एक पृष्ठ सामने नासिकाके छिद्रके पास गालमें रहता है। **ताल्वस्थियाँ** (Palatine bones) भी नासाफलक तैयार करनेमें सहायक होती हैं। दाँतोंके ठीक पीछेका तालुका अगला भागतो उच्च हन्वस्थियोंके अंशसे बनताहै और पिछले भागको ताल्वस्थि कहते हैं। इसका आकार हलके या अंग्रेजीके एल [L] अक्षरके समान होता है। इसके ऊपरी पृष्ठसे नासिकाके फर्शका पिछला भाग और नीचेके पृष्ठसे कठिन तालुका पिछला भाग बनता है। ऊपरी भाग उच्चहन्वस्थिके गात्रसे जुड़ा रहता है और नासिकाकी बाहरी दीवाल बनाने में सहायक होता है। इस प्रकार इन अस्थियों और नासास्थिकी सहायतासे इस गुहाकी दीवाल बनती है। इसका पर्दा प्रायः दाहिनी या बायीं ओर झुका रहता है। अस्थियों और कूर्चा के पृष्ठों पर श्लैष्मिककला चढ़ी रहती है। इस नासागुहा के अंगभूत कई अंश होते हैं। (१) फर्श या गुहाभूमि (२) छत या गुहाच्छदि (३) भीतरी दीवाल या अन्तःप्राचीर (४) बाहरी दीवाल या बहिप्राचीर (५) नासारन्ध्र या नासापुरो द्वार और (६) नासापश्चिम द्वार

जिन अस्थियोंसे कठिनतालु बनता है, उन्हींके ऊपरी पृष्ठोंसे **नासागुहाका फर्श** बनता है। फर्शका अगला पौन हिस्सा भाग ऊर्ध्व-

हन्वस्थिके तालुफलकसे, पिछला चौथाई भाग तालवस्थिके समतल भागसे बनता है। अस्थियोंके ऊपर श्लैष्मिककला चढ़ी रहती है। फर्शका ढालू भाग कण्ठकी ओर रहता है, जिसके पिछले किनारेसे कोमलतालु लगा रहता है। नासागुहाकी छत कई अस्थियोंके भाग आपसमें जुड़नेसे बनती है। बीचका भाग क्षितिज और अगला-पिछला भाग ढालू होता है। बीचका क्षितिज भाग झर्झरास्थिके चालनी-पटलसे पिछला जतूकास्थि के गात्रसे बनता है। जतूकास्थिके प्रवर्धन, नासाफलकास्थि और तालवस्थिसे भी सहायता मिलती है। इसी छतके क्षितिज भागके छिद्रोंसे होकर घ्राणनाड़ियां कपालमें प्रवेश करती हैं। इसकी चौड़ाई बहुत थोड़ी होती है। भीतरी दीवाल पर्देसे बनती है। बाहरी दीवालका अगला नथुना भाग तरुणास्थिसे बना मुलायम होता है, जिसमें त्वचा चढ़ी रहती है और उसमें नाकके मोटे बाल होते हैं जो नाकमें किसी वस्तुको सहसा जानेमें रोकते हैं। शेष अस्थि-कृत भाग नासास्थि, ऊर्ध्वहन्वस्थिगात्र, ललाटप्रवर्धन, अधोशुक्तिका, झर्झरास्थिके पार्श्वपिण्ड और तालवस्थिके ऊपरी भागकी सहायतासे बनते हैं। खोपड़ीमें तो नासिकाछिद्र होते हैं, उसकी दीवाल पर तीन मुड़ी हुई सीप की आकृतिकी अस्थियाँ रहती हैं। बड़ी पिछले भागमें और दो छोटी अगले भागमें हैं। इनके ऊपरकी दो झर्झरास्थिका निम्नांश हैं और नीचेवाली बड़ी पृथक अस्थि है और बिना किसीको तोड़े अलग की जा सकती है। इसका उभड़ा हुआ पृष्ठ नासिकाके पर्देकी ओर रहता है। इसपर एक गहरे गुलाबी रङ्गकी झिल्ली चढ़ी रहती है। इन तीनों सीपोंके द्वारा नासागुहामें तीन नालियाँ या सुरंगें बन जाती हैं। अधोशुक्तिकाके नीचे अधःसुरङ्गा, मध्यशुक्तिका और अधोशुक्तिकाके बीच नासामध्यसुरङ्गा तथा ऊर्ध्वशुक्तिका और मध्य-शुक्तिकाके बीच नासाऊर्ध्वसुरंगा होती है। पर सबमें छोटी होती है। इस दीवालके सभी भागोंपर श्लैष्मिककला लगी रहती है। नाकके

भीतरी भागको दबानेपर एक गढ़ासा मालूम पड़ता है, जहाँसे अश्रु-वाहिका नालीका आरम्भ होता है जो नासिकाके बाहरी दीवालमें लगी रहती है। जब कोई रोता है तब कभी कभी आँसू नाकसे भी बहने लगते हैं। आँखसे आँसू अश्रु छिद्रोंमेंसे होकर अश्रु वाहिनियोंमें जाते हैं। ये नालियाँ अश्रु कोषसे लगी रहती हैं। अश्रु कोषसे अश्रु वाहिका द्वारा आँसू नासिकामें पहुँचते हैं। आँखसे गढ़ेकी भीतरी दीवालके कोनेमें जो पतली चौकोर अस्थि मुड़ी हुई नालीका स्वरूप बनाकर रहती है वही अश्रु अस्थि कहलाती है। यह नाली नीचे जाकर नासिकासे सम्बन्ध रखती है। इस नालीमें जो सौत्रिकतन्तुसे निर्मित थैली होती है वही अश्रु कोष है। इसीसे होकर नासिकामें आँसू पहुँचते हैं। आँसुओंसे सम्बन्ध होनेके कारण इसे अश्रु-अस्थि कहते हैं। यह कागज-सी पतली और कोमल होती है। ऊर्ध्वहन्वस्थि खोखले कोटरछिद्रसे मध्य-सुरङ्गाका सम्बन्ध रहता है। ललाटकोटर और झर्झरास्थिके अगले और बीचके कोटरसे भी मध्यसुरङ्गाका और झर्झरास्थिके पिछले कोटरसे ऊर्ध्वसुरंगाका सम्बन्ध रहता है। सब कोटरोंमें श्लैष्मिककला लगी रहती है। **नासारन्ध्र** या नासापुरोद्वार नासागुहाका अगला तिकोना छिद्र है। जो बालोंकी चलनीसे भरा रहता है। **नासापश्चिम-द्वार** नासागुहाके पिछले चौकोर द्वारके द्वारा कण्ठसे सम्बन्ध रखता है। दोनों द्वार कोमल तालुकी ओटमें रहते हैं। इससे मुँह खोलने पर दिखलाई नहीं देते। नासिकाके भीतरी भागको दो समान भागोंमें विभक्त करनेवाली सीरिकास्थि (Vomer) है। नासागुहाके नीचेका भाग **श्वासग्राही कक्ष** (Respiratory chamber) और ऊपरी भाग **गंधग्राही कक्ष** (Olfactary chamber) है।

नासिकाकी श्लैष्मिककलामें अन्यत्रकी श्लैष्मिककलाओंसे यह विशेषता है कि इसमें रक्त अधिक रहता है। शुक्तिकाओंपर चढ़ा हुआ भाग विशेषकर रक्तमय तथा रक्तकेशिकाओंके घने जालके बड़े

झुंडवाला होता है। परदे और ऊर्ध्वशुक्तिकाके बीच एक इंचके बारहवें भाग और अधोशुक्तिके बीच एक इञ्चके छठे भाग बराबर अन्तर रहता है। जुखाममें श्लैष्मिककलाका शोथ होने पर कला फूल जाती और यह अन्तर और भी कम हो जाता है। जिसे नाकका सट जाना कहते हैं। कभी इस अन्तर में श्लेष्मा भर जाने अथवा शुक्तिकाओंकी फूली हुई कला और पर्दे के सट जानेसे नाकके सुर बन्द हो जाते हैं। नासिकामें अधिक रक्तमयकला रहनेसे यह लाभ होता है कि बाहरी वायु साँसमें इनके द्वारा गरम होकर जाती है जिससे उसकी सर्दी हानि नहीं पहुँचा सकती। यही नहीं कलासे मिलकर गरम वायुमें कुछ तरी भी आ जाती है। अधिक ठंडी हवा फेफड़ोंके लिये हानिकर होती है। श्लैष्मिककला के पीठपर जो कोषाणु होते हैं उनमें लोमवत सेलांकुर या कोषांकुर होते हैं, ऐसे अंकुरवाले कोष गन्धज्ञ प्रदेशोंमें नहीं होते। श्लैष्मिककलामें श्लैष्मिकग्रन्थियोंके अतिरिक्त जगह-जगह लसीकाणुसदृश्य कोष समूह भी होते हैं। श्लैष्मिककलामें श्लेष्मा रहनेसे कलापृष्ठतर बना रहता है। जुखाम आदिमें कलाप्रदाह होनेपर श्लेष्मा अधिक बनता है और वही छिनकने पर नाकसे निकलता या कण्ठमें चला जाता है। यह श्लेष्मा मस्तिष्कसे नहीं आता।

श्वासमार्ग—नासिकाके दो प्रधान कार्य हैं (१) श्वासलेना और प्रश्वास छोड़ना और दूसरा गन्धआघ्राण करना। नाककी श्वासक्रियाका सम्बन्ध श्वासमार्गसे है। जब हम बाहरी वायुको श्वास द्वारा खींचकर नाकमें ग्रहण करते हैं तब वह वायु नासारन्ध्रोंके द्वारा नासिकामें प्रवेश करता और मध्य तथा अधःसुरंगोंमें होते हुए पश्चिमद्वारोंके द्वारा कंठमें जाता है। कंठसे स्वरयन्त्र टेंटुवेके द्वारा फुफ्फुसोंमें जाता है। नासारन्ध्रमें जो असंख्य रोमराजी रहती है वह छन्नेका काम करती है। और श्वासद्वारा ग्रहण किये हुए वायुमें यदि धूलि कण, कोयलेके टुकड़े, रुई आदिके भुवे,

वालुकाकण, छोटे कीड़े आदि हों तो वे सांस भीतर जाते समय इन बालों में अटक रहते हैं और फुफ्फुसमें जाकर हानि करनेमें समर्थ नहीं होते। किन्तु यदि धूल, बालू आदि अधिक हों तो ये पूर्ण रूपमें उन्हें रोकनेमें समर्थ नहीं होते। इसी तरह अदृश्य रोगबीजाणु भी वायुके द्वारा फेफड़ेमें पहुँच जा सकते हैं। इतने पर भी सभी फेफड़ेमें नहीं पहुँच पाते। बहुतसे नासिकाके बीच की ग्रन्थियोंसे निकले रसमें अटककर रह जाते हैं। भीतरकी सांस बाहर प्रश्वास द्वारा छोड़ते समय भीतरका अशुद्ध वायु टेंटुवे, स्वर-यन्त्र और कण्ठमें होते हुए नाकमें आता है, वहाँसे नासारन्ध्रों द्वारा बाहर निकलता है। यदि हम सांस नाक द्वारा न लेकर मुँहसे लें तो वह बाहरी वायु बिना छने हुए सीधे मुँहसे कण्ठ और कण्ठसे स्वरयन्त्र में पहुँच जायगा, इसी तरह भीतरका वायु भी सीधे श्वास-नलिकासे कण्ठमें और कण्ठसे मुख द्वारा बाहर निकल जायगा। इससे वायुके न तो छाननेका काम होगा और न रक्तमय कलाओं के द्वारा वायुका तापक्रम ही शरीरके अनुकूल हो पावेगा। इसीलिये मुँहसे सांस लेना या निकालना निषिद्ध माना जाता है। नासिका-की श्लैष्मिकलाके श्लेष्ममें कुछ कीटाणु नाशक शक्ति भी होती है, उसका उपयोग भी मुँह द्वारा सांस लेनेमें न हो सकेगा। इसीलिये जब रोगी मुँहसे सांस लेने और छोड़ने लगता है तब उसे अरिष्ट समझा जाता है; क्योंकि स्वास्थ्यपूर्णोपयोगी वायुका शोधन और उपयोग करनेमें उस समय रोगी असमर्थ हो जाता है। ऐसी स्थिति-में जुखाम, खांसी, गला पड़ने और फुफ्फुस रोग होनेकी सम्भावना रहती है। नासागुहा या कण्ठके ऊपरके भागमें बहुधा किसी न किसी प्रकारकी रुकावट होनेपर ही मनुष्य नासिका द्वारा श्वास प्रश्वास नहीं ले पाता या छोड़ सकता। ऐसी दशाकी तुरन्त चिकित्सा करनी चाहिये।

घ्राणेन्द्रिय—प्रत्येक नासागुहामें ऊर्ध्वशुक्तिका तथा उसके सामने परदेकी श्लैष्मिककलाका काम गन्ध पहचाननेका है। यह गन्धग्राही कत्त एक प्रकारके स्तम्भाकृति कोषाणु (Columnar) द्वारा निर्मित और श्लैष्मिककला द्वारा आवृत रहते हैं। ऊर्ध्व शुक्तिका और श्लेष्मिककलाके पीले रंगके प्रान्तको **घ्राण-प्रदेश** (Regia Olfactaria) कहते हैं। इसका क्षेत्रफल डेढ़ वर्ग इञ्चके बराबर होता है। नासिकाके अन्य भागोंकी कला गन्धज्ञ नहीं होती। गन्ध प्रान्तमें एक तो स्तम्भाकृति कोषाणु होते हैं, जिनका ऊपरी भाग स्तम्भाकृत और निम्न भाग पतला नुकीला होता है, इन कोषाणुओंके सहारे भी विशेष कोषाणु रहते हैं। इनसे भिन्न विशेष गन्धज्ञ कोषाणु (Olfactorycells) बीचमें मोटी और दोनों सिरोंपर पतली होती है। इनके पृष्ट भागके सिरेपर बाल ऐसे कड़े तार निकले रहते हैं। दूसरे सिरेसे एक पतला और लम्बा तार निकलता है। कोषाणुओंके इन पतले और लम्बे तारों से आघ्राणनाड़ी या गन्धग्राही नाड़ी (Olfactory Nerves) बनती हैं। जो प्रथम शीर्षण्यनाड़ी द्वारा मस्तिष्कमें पहुँचती है। ऊपरी तार घ्राणाङ्कुर (Orfactary hairs) कहलाते हैं। लगभग २० घ्राणनाड़ियाँ प्राणप्रदेशसे नासागुहाकी छतके छिद्रोंमेंसे होकर कपालमें घुसतीं और वहाँ पहुँचकर घ्राणपिण्ड (Olfactory bulb) में घुस जाती हैं। ये घ्राणपिण्डमें समाप्त हो जाती हैं और वहाँसे घ्राणपंथ (Olfactary tract) बनानेवाले नये तार आरम्भ होते हैं। घ्राणपथका अन्त घ्राणकेन्द्र (Olfactorycentre) में हो जाता है। घ्राणप्रदेशको छोड़कर नासिकाकी शेष श्लैष्मिककला में केवल स्पर्श, पीड़ा, गरमी, सर्दी अनुभव करनेकी शक्ति है। इस कलामें पञ्चमी नाड़ीके तार रहते हैं।

इस प्रकार घ्राणेन्द्रियके नीचेके भागसे श्वासोच्छ्वास क्रिया सम्पा-

दित होती है और ऊपरी घ्राणेन्द्रियसे आघ्राणकी क्रिया पूरीकी जाती है। समूची घ्राणेन्द्रियका विस्तार दश वर्गइञ्च है। आघ्राणशक्ति किसी मनुष्यमें कम, किसीमें सामान्य और किसीमें तीव्र होती है। मांसाहारी प्राणियोंमें आघ्राणशक्ति बहुत तीव्र होती है। शाकाहारी जीवोंको सूंघनेसे वनस्पतिका ज्ञान हो जाता है। मनुष्योंमें यह शक्ति सामान्य होती है। किन्तु जानवरों और जङ्गली लोगोंका गन्धज्ञान अधिक होता है। कहते हैं पेरू देशके जङ्गली लोग किसी मनुष्यको सूंघकर बतला देते हैं कि यह अमुक वंशका है। प्रायः अन्धे लोग भी आघ्राणद्वारा पदार्थोंका भेद और मित्रशत्रुका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। गन्धरस पिंडोंसे जो रस निकलता है उससे नासात्वचा गीली रहा करती है। यदि नाककी त्वचा बहुत सूखी या अधिक गीली हो तो गन्धज्ञान ठीकसे नहीं होता। किसी किसी मनुष्यमें गन्धज्ञान अधिक और विलक्षण होता है। वे सूंघकर भिन्न-भिन्न वस्तुओंका परिचय बता देते हैं। किसीको कोई गन्ध प्रिय और कोई अप्रिय होती है। प्रत्येक पदार्थसे उसके जो सूक्ष्म परमाणु वायुमें फैलते हैं वे जब नाकके पास आते हैं, तब गन्धग्राही रसपिंडाके द्रवमें द्रुवत्वको प्राप्त होते हैं तब मनुष्यको गन्धज्ञान होता है। इसके लिये आवश्यक है कि वह पदार्थ गीला या द्रवरूप या वायुरूप हो और उसके परमाणु वायुमें सहज ही मिलकर नाकमें पहुँच सकें। जब तक गन्धपरमाणु गन्धरस पिंड के द्रवमें नहीं घुलते तब तक उस पदार्थकी गन्धका ज्ञान मनुष्योंको नहीं होता। गन्धवान पदार्थके सूक्ष्मपरमाणु वायुमण्डलमें फैलते हैं और नाकमें पहुँचते हैं। तब गन्धज्ञान होता है। ये परमाणु इतने कम निकलते हैं कि एक तोला कस्तूरी किसी जगह खुली जगहपर दश वर्षों तक रखी रहे तौभी वज़नमें बहुत कम घटती है। किसी डब्बेमें कोई सुगन्धित पदार्थ कुछ दिन रखा रहे तो उसे निकालनेपर भी बहुत दिनों तक उसमेंसे उसकी गन्ध नहीं जाती। इस गन्धज्ञानके कारण हमें आहार

के पदार्थों की परीक्षा करना सहज होता है। सड़ी दुर्गन्धित या तीव्र-गन्धवाली चीजोंको त्यागा जा सकता है। कहीं सड़ी दुर्गन्धित, विषैली और हानिकर वास आती हो तो उससे स्वास्थ्यको हानि न पहुँचे इसलिये उस स्थानको त्यागा जा सकता है। किसी किसी पदार्थकी गन्धमें इतनी तीव्रता होती है कि उसके सूक्ष्म अंशकी गन्ध भी नाकको मालूम पड़ती है। कहते हैं कि कस्तूरीके एक अंशका एक करोड़ ३० लाखवाँ हिस्सा भी वायुमें मिले तो उसकी गन्ध मालूम पड़ जायगी। भिन्न-भिन्न पदार्थों की गन्धका विभेद समझना अभ्यास और आदतपर निर्भर करता है। यदि गन्धग्राही स्थानमें सञ्चालित वायु किसी प्रकार की गन्धसे पूर्ण हो तो वह सम्पूर्ण नाड़ीप्रान्तको उत्तेजित कर देता है। यह उत्तेजना संज्ञागन्धानुभूति रूपसे गन्धग्राही नाड़ी नामक प्रथमशीर्षण्य नाड़ी द्वारा मस्तिष्कमें पहुँचती है, यह गंधग्राही नाड़ी ही गंधको मस्तिष्कमें ले जाती है। जब तक गन्धवहानाड़ी द्वारा गन्धग्रह संज्ञा मस्तिष्कमे न पहुँचे तब तक गन्धज्ञान नहीं हो पावेगा। गुलाब, कमल, अमरूद आदिकी गन्धका भिन्नत्व भी तब तक समझ में नहीं आवेगा। यदि कोई इत्र, लवेंडर या गुलाब जल नाकके भीतर डालकर भर दिया जाय तो उसकी गन्धका पता नहीं लगेगा; किन्तु वही पदार्थ यदि नाकके नीचे रखा जाय तो वायुके साथ उस गन्धके परमाणु भीतर पहुँचते ही अच्छी तरह वासका अनुभव होगा। क्योंकि ऐसा होनेसे सुगन्धित पदार्थके सूक्ष्म जलकण श्वाससे आकर्षित हो गन्धग्राही स्थानमें पहुँच जायँगे। अतएव गन्धद्रव्य कठिन की अपेक्षा तरल हो और उसके वाष्पीय सूक्ष्मकण प्राणवायुके साथ अच्छी तरह मिलकर गन्धग्राही अंशमें प्रविष्ट हो सकें, इसके विना गन्धकी अनुभूति नहीं हो सकती। सर्दी जुखाममें शुक्तिकास्थिके ऊपरकी श्लैष्मिककला फूलकर या सर्दीके वीजाणुओंके आक्रमणसे फैलकर गन्धग्राही प्रांतके द्वारको बन्दकर देती है। इसलिये गन्धद्रव्यकी

खबर गन्धग्राही नाड़ी तन्तुओंके अन्तिम स्थान तक नहीं पहुँच पाती। इसलिये गन्ध आनेपर भी उसकी अनुभूति नहीं हो पाती।

शृङ्गाटिका—घ्राणसन्तर्पणी सिरा, श्रोत्र सन्तर्पणी सिरा-आक्षसन्तर्पणीसिरा और जिह्वासन्तर्पणी सिरा जहाँ पर मिली हैं वहाँ इन चारोंके बीच सिरासन्निपात स्वरूप चार शृङ्गाटिका नामक मर्म हैं। इन मर्मों का सन्तर्पण होते रहने से श्वासक्रिया, गन्ध ग्रहण और गन्धज्ञानकी शक्ति समुचित रूपसे बनी रहती है। इनमें दोष प्रभाव पड़ने पर उक्त कार्यों में बाधा पड़ती है।

नासा सामुद्रिक

अन्य अङ्गोंकी बनावटके अनुसार नाककी बनावटसे भी मनुष्यके स्वभाव और प्रकृतिगत असरके अनुसार उसके स्वास्थ्य और सुख-सौभाग्य का पता लगता है। इसलिये सामुद्रिक मतानुसार उसका भी कुछ आभास नीचे देते हैं।

चार अंगुलके परिमाण लम्बी नाक मोटे नथुने और छोटे छिद्र जिसके हों और नाक मोटी और सिकुड़ी हुई न हो ऐसे मनुष्य दीर्घायुषी और सुखभोग करनेवाले होते हैं। जिसकी नाक ऊँची ऊपर उभड़ी हुई होती है वह सुभग सदाचारी होता है। सुवेकी-सी नाकवाला पुरुष सुखी और हाथीकीसी चौड़ी नाकवाला मनुष्य सुखी होता है, और अच्छा धन संचय करता है। सीधी नाकवाला मनुष्य भोगी-विलासी होता है और सूखी नाकवाला पुरुष चिरञ्जीवी होता है। भाग्यवान पुरुषकी नाक सीधी छोटे छेदवाली और सुन्दर पुटवाली होती है,जिसकी नाकका अगला भाग टेढ़ा हो वह धनी होता है। जिसकी नाक दाहनी ओर टेढ़ी झुकी हो वह बहुत खानेवाला और कुटिल होता है। जिस मनुष्यकी नाक तिलके फूलके आकारसी अथवा नुकीली उतारदार होती है वह भूमिपति राजा होता है। उग्र और टेढ़ी नाक-

वाला मनुष्य धनवान होता है और छोटी नाकवाला पुरुष शीलवान तथा धर्मवान होता है। जिसकी नाक क्रमशः विस्तीर्ण समुन्नत हो वह राजा होता है और जिसकी नाकका अगला भाग द्विधाविभक्तसा मालूम पड़े और नाक या तो बहुत लम्बी या बहुत छोटी हो वह निःसत्व दरिद्री होता है। कुञ्चित सँकरी नाकवाला मनुष्य चोरीसे प्रेम रखता है। चिपटी नाकवाले मनुष्यकी मृत्यु स्त्रीके द्वारा या स्त्रीके कारण होती है। छिन्न और कटी नाकवाला अथवा कटी हुई-सी नाकवाला मनुष्य पापी होता और अगम्यागमन की परवाह नहीं करता है। विकृत-बीचसे कटी या बीचमें दबी हुई जिसकी नाक हो अथवा जिसकी नाकका अगला भाग मोटा हो अथवा ढालू पिच्छिल नाक हो वह पुरुष दुःखभागी होता है। जिसकी नाक दाहनी ओर झुकी टेढ़ी हो उसे अभक्ष्या-भक्ष्यका विचार नहीं रहता, वह स्वभावतः क्रूर प्रकृतिका होता है। नाकके दोनों नथने मिलाकर २ अंगुलका विस्तार होना उत्तम औसत नाकका दर्जा है। जिस मनुष्यकी ऊँची नाकके साथ ही बगल, छाती, गर्दन, नख और मुख भी उन्नत हों वह खूब उन्नति कर उच्चपद पाता है। भोगी पुरुषोंकी नाकसे प्रतिबार छींकमें एक शब्द निकलता है। जिनकी छींकमें दो शब्द होते हैं वे धनवान होते हैं, जिनकी छींकमें एक साथ तीन शब्द होते है वे दीर्घायुषी होते हैं। भोगी पुरुषोंकी छींक कुछ खाली कुछ भरी हल्की होती है। ईषत अनुवाद अल्प शब्द वाली छींक कुशल-मंगलकारक होती है। पंडितजनोंकी छींकमें आनन्द-दायक शब्द होता है और छींकके शब्द हरबार दो या तीन बार होते हैं।

पुरुषोंके समान स्त्रियोंकी नाकसे भी उनकी प्रकृति और स्वास्थ्य आदिका पता चलता है। जिस स्त्रीकी नाकके अग्र भागमें दो नोक दिखें या नाक द्विधा विभक्त-सी मालूम पड़े ऐसी स्त्री दरिद्रनी होती है। जिस स्त्रीकी नाक छोटी हो वह प्रायः मजदूरनी होती है। चपटी

और दीर्घनासावाली स्त्री पतिरहित क्रोधी प्रकृतिकी होती है। जिस स्त्रीकी नाकका अगला भाग लाल दिखे और अगले भागमें लाल तिल या मस्सा हो वह किसी राजाकी स्त्री होती है और पुत्र रूपसे भी राजाको जन्म देती है। इसके विरुद्ध जिस स्त्री की नाकके अग्रभागमें काला तिल या मस्सा हो वह व्यभिचारिणी और खोटे आचरणवाली होती है और पतिघातिनी भी होती है। यदि ऐसा चिन्ह बायीं ओर हो तो कम अशुभ दाहिनी ओर हो तो अधिक अशुभ होता है। लम्बे ओंठ और लम्बी नाकवाली स्त्री अच्छी नहीं होती। स्त्रियोंकी नाक समान सुडौल और समान छिद्रवाली मनोहर होना शुभदायी है।

श्रीधन्वन्तरयेनमः

नासारोग विज्ञान

नासा महत्व

नाक शरीरका बहुत महत्वपूर्ण अङ्ग है। नाकके द्वारा आघ्राण कर मनुष्य पदार्थोंका गन्ध ज्ञान प्राप्त करता है। इससे उसे पदार्थोंके परिचयमें बहुत सुविधा होती है। यही नहीं श्वास-प्रश्वासकी इन्द्रिय भी नाक ही है। सांस लेकर अम्बर पीयूष शरीरके भीतर पहुँचाना और प्रश्वास क्रिया द्वारा शरीरके भीतरका मलयुक्त-कार्बन या कोकिल वायु बाहर निकालना भी इसी इन्द्रियके द्वारा होता है। श्वास लेकर ही हम शरीर धारण कर सकते हैं और प्रश्वास द्वारा मलिन वायु बाहर फेंककर शरीर शुद्ध रखनेका प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार नासा-इन्द्रियकी शुद्धि और कार्य-क्षमता ठीक बनी रहनेसे मनुष्य शरीरकी रक्षणक्रिया सम्पादित होती रहती है। इसकी रचना जगन्नियन्ताने ऐसी चतुराई से की है कि शारीरिक श्वास-प्रश्वास और गन्ध ग्रहणका कार्य सम्पादन सुलभतासे होता रहता है। पहले जो वर्णन हो चुका है उससे मालूम हो चुका है कि नासा निर्माणमें १४ अस्थियोंका विनियोग हुआ है। नासागुहा आगे और पीछेकी अपेक्षा बीचमें सँकरी रहती है। जिससे एक पर्देके द्वारा नासागुहाएँ एक दूसरेसे अलग रहती हैं। पूर्वकपालास्थि, झर्झरास्थि, जतूकास्थि और ऊर्ध्वहन्वस्थियोंके वायुकोटर नासागुहाके छिद्रोंसे सम्बन्धित रहते हैं। यदि नासागुहामें विकार या शोथ हो तो वह इन अङ्गोंमें

भी पहुँच सकता है। इससे नाककी सफाई नितान्त आवश्यक है। नाकमें कोई विकार न होने पावें और होनेपर वे अधिक दिन तक स्थायी न रहने पावें इसकी सावधानी नितान्त अपेक्षित है। यदि नाकके भीतरके श्लेष्मा का संचय न रोका जाय तो भीतर पूयोत्पत्ति हो जाती है और पूयकी शुद्धि न होनेसे पीनस आदि भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पहले वर्णनसे मालूम हो गया होगा कि नासागुहा बहुत पतली श्लेष्मलकलासे ढकी रहती है, जिसमें असंख्य सूक्ष्म रक्त-नलिकाएँ फैली रहती हैं। इस रचनाकौशल्यके कारण बाहरी सर्दी गर्मीसे नाक और फेफड़ों की रक्षा होती रहती है। जब नाकमें रोग हो जाता है तब श्लेष्मल कलामें रक्तकी कमी हो जाती है और कला मोटी पड़ जाती है, अतएव उससे वायुके छनने और सर्दी गर्मीके तारतम्यको सुरक्षित रखने का काम ठीक नहीं हो पाता। इससे नाकके ही रोग नहीं फेफड़ेके रोग भी हो जानेका भय रहता है। श्वास-प्रश्वासकी क्रिया बिगड़ जाती है, मनुष्यको अतिरिक्त वायु श्वास द्वारा खींचनी पड़ती है। वह वायु दूषितनासिका द्वारा ग्रस-निका, स्वरयन्त्र, श्वासनलिका और फुफ्फुसमें पहुँचकर उनमें भी विकृतिका कारण बनता है। इससे स्पष्ट है कि नासारोगोंकी चिकित्सामें जैसी असावधानी देखी जाती है वह हानिकर और खतरनाक है।

निदान-कारण

नाकमें बीमारी होनेके कुछ साधारण वाह्य कारण होते हैं और कुछ विशेष भीतरी शारीरिक कारण होते हैं। अधिक पानी पीनेसे शरीरमें श्लेष्मा की वृद्धि होती और वह श्लेष्मा नासाश्रित हो नाकके रोग उत्पन्न करता है। श्वासके द्वारा नाकमें धूल या धुआँ या भूसे-की भस भीतर जाती है, उससे नाककी श्लेष्मल कलामें विकार उत्पन्न होकर नाककी बीमारियां होती हैं। बहुत बोलनेसे मस्तिष्कमें जो खुश्की बढ़ती है, उससे श्लेष्मलकलामें तनाव होता है। बहुत

सोनेसे श्लेष्माकी वृद्धि और फिर जुखाम होकर नाकके रोग होते हैं। अधिक जागरणसे भी वायु की वृद्धि होकर खुश्की होती और उससे भी नाकमें विकार होता है। जलमें अधिक तैरने और नहानेसे भी जुखाम होने का भय रहता है। वान्ति तथा आंसुओंका वेग रोकनेसे ऊर्ध्वाङ्गमें क्षोभ होता है, उससे नासा रोगोंकी उत्पत्ति होती है। वाग्भट्टाचार्यने लिखा है—

> अवश्यायानिलरजो भाष्याति स्वप्न जागरैः
> नीचात्युच्चोपधानेन पीतानान्येन वारिणा।
> अन्यम्बुपान रमण छर्दि बाष्पग्रहादिभिः
> क्रुद्धावातोल्वणा दोषा नासायां स्त्यानतांगताः

ऊपर जो कारण लिखे गये हैं, आचार्यवाग्भटके कथनानुसार कुछ और भी कारण होते हैं। अर्थात् ओस या बर्फीली हवामें लेटने या घूमनेसे भी नाकके रोग होते हैं। सर्द मुल्कोंमें रहनेवाले सर्दीके समय जब बाहर निकलते हैं तब रूमालसे अपनी नाक रगड़ते रहते हैं, जिससे उसमें सर्दी लगकर नाकके रोग न हों। आचार्य वाग्भटके कथनके अनुसार इसका समर्थन होता है। ठण्डी हवा और तेज हवाके झोंकोंके समय भी इसी तरह नाककी रक्षा न करनेसे नाकके रोग हो सकते हैं। अधिक स्त्री प्रसङ्गसे भी शरीरमें विशेषकर मस्तिष्कमें खुश्की बढ़ती है और उससे नाकके रोग होनेका भय रहता है। यही नहीं सोते समय मस्तकको अधिक नीचे या अधिक ऊँचे रखनेसे भी ऊर्ध्वाङ्गगत श्लेष्मा और वायुकी परिस्थितिमें अन्तर पड़ता है, उससे नासागत रोग होनेका भय रहता है। अकसर एक स्थानसे दूसरे स्थान विशेषकर अनूप देश या अधिक वन पर्वतवाले स्थानोंमें और दूषित जलके स्थानोंमें जाने और वहांका पानी पीनेसेभी श्लेष्मा विकार होकर नासारोग होने का भय रहता है अर्थात पानीका बदलाव भी नासारोग उत्पन्न करनेका कारण होताहै। अधिक पानी पीनेसे भी

श्लेष्माकी वृद्धि और नासारोग उत्पन्न होनेका भय रहता है। नासारोग उत्पन्न होनेमें वात और कफकी विकृति मूल कारण होती है। बाहरी कारणोंसे वात और कफ विकृत होता है और तब वह विकृत वात-कफ भीतरी विकृति उत्पन्न कर नासारोग पैदा करनेका कारण बनता है।

नासारोग संख्या

सुश्रुत में नासारोगोंकी संख्या ३१ लिखी हुई है; परन्तु योगरत्नाकर और भावप्रकाशमें ३४ नासारोग बतलाये गये हैं।

आदौ च पीनसः प्रोक्तः पूतिनासस्ततः परम्।
नासापाकोऽत्र गणितः पूय शोणित मेव च
क्षवथु भ्रंशथु दीप्तिः प्रतिनाहः परिस्रवः
नासाशोषः प्रतिश्यायाः पञ्च सप्तार्बुदानि च॥
चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोथाश्चत्वारि तानि च
रक्तपित्तानि नासायां चतुस्त्रिंशद्गदाः स्मृताः

अर्थात् १ पीनस, २ पूतिनास ३ नासापाक ४ पूयशोणित ५ क्षवथु ६ भ्रंशथु ७ दीप्ति ८ प्रतिनाह ९ परिस्रव १० नासाशोष ११-१५ पांच प्रतिश्याय, १६-२२ सात अर्बुद, २३-२६ चार अर्श २७-३० चार शोथ और ३१-३४ चार रक्तपित्त। इस प्रकार कुल ३४ नासारोग हुए। सुश्रुतने पीनसका नाम अपीनस लिखा है। भावप्रकाश ने रक्तपित्तके चार भेद अलग गिनाये हैं, किन्तु सुश्रुतने उसे एक ही माना है। इस प्रकार ३४ संख्याओंमें मतभेद नहीं है। सुश्रुतने प्रतिनाहका नाम नासानाह लिखा है। हम इस बातका प्रयत्न करेंगे कि नासा सम्बन्धी अन्य रोगोंका भी इसमें संग्रह हो जावे। प्रतिश्याय के ऊपर पांचभेद कहे गये हैं; किन्तु इसमें दुष्ट प्रतिश्याय और मलेज प्रतिश्याय के दो भेद बढ़ाये गये हैं। साथ ही नासाकला प्रतिश्याय, गलप्रतिश्याय, श्वासनलिका प्रतिश्यायका परिचय दिया गया है।

भृकुटितोद और मस्तिष्क तोद मिलकर ये चार हुए। अपक्वप्रतिश्याय और प्रक्वप्रतिश्यायका भी अलग विवेचन हुआ है। वाग्भटोक्त पुट रोग भी बढ़ा है। सन्धविकृतिके चार भेद और नासाकृमिकी वृद्धि हुई है। अर्बुदमें सिरार्बुद, अध्यर्बुद और द्विरर्बुद मिलकर तीन की संख्या बढ़ी। प्रतीनाहके पश्चात चार प्रकारके नासावरोध के विषय बढ़े हैं। नासाशोथके पश्चात एक मत्स्यशोथ का भेद अधिक बढ़ा है। नासारक्तपित्तमें आगन्तुजरक्तपित्त, सिराविस्फारित रक्त पित्त और रक्तभार जन्य रक्त पित्त ऐसे विषयोंकी वृद्धि हुई है।

प्रतिश्याय

प्रतिश्यायको साधारण भाषामें जुकाम या श्लेष्मा (सखरमा) कहते हैं। आचार्य वाग्भटके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थकारोंने इसका वर्णन आरम्भमें न देकर बीचमें दिया है; किन्तु नाकके रोगोंमें यह आदि और प्रधान है। साधारणतः नाकके रोगोंमें पहले प्रतिश्याय होता है और वही प्रतिश्याय पुराना पड़कर और बिगड़कर पीनस, पूतिनास आदिके रूपमें परिणत होता है। इसलिये हमने इसका वर्णन आरम्भमें करना ही उचित समझा है। जुखामको लोग बहुत मामूली रोग समझते हैं और उसकी परवाह नहीं करते। किन्तु जुखाम बिगड़कर बहुत कष्टदायक होता है और लापरवाही करनेसे अनेक भयङ्कर न्यूमोनियाँ, ब्रोंकाइटिस, इनफ्लुएञ्जा, पीनस, क्षय, श्वास-कास आदि रोगोंको उत्पन्न करता है। इसलिये इस विषयको अच्छी प्रकार समझना उपकारक होगा।

निदान—प्रतिश्याय शब्दकी निरुक्ति करते हुए माधव निदानके मधुकोष टीकाकारने कहा है कि "प्रतिश्याय इति वातंप्रति अभिमुखं, श्यावो गमनं कफादीनां यत्र स प्रतिश्यायः।" अर्थात् जिस विकारमें कफादि दोष वातदोषकी ओर अभिमुख होते हैं अर्थात् कफादि दोष वात दोषकी ओर गमन करते हैं, उसे प्रतिश्याय कहते

है। चरकाचार्यने भी कहा है कि "घ्राणमूले स्थितः श्लेष्मा रुधिरं पित्तमेव वा। मारुताध्मात शिरसः श्यायते मारुतं प्रति॥" निदान दो प्रकार का होता है, एक सद्योजनक और दूसरा चयादिक्रम-जात। जब रोगजनक कारण इतने बलवान होते हैं कि दोषोंके संचय प्रकोप और प्रसर की परवाह न कर तुरन्त रोग उत्पन्न कर देते हैं, तब उसे सद्योजनक निदान कहते हैं। जब दोष पहले संचित होकर फिर प्रकुपित होते और फिर फैलते तथा रोग उत्पन्न करते हैं तब उसे चयादिक्रमजात कहते हैं। इस प्रकार दोषोंका अकस्मात प्रकुपित हो जाना आश्चर्यकी बात नहीं है। रोगोत्पादक हेतु प्रबल होनेसे बिना संचयादि के भी रोग हो सकता है। कहा भी है "न केवलं चयं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम्। अन्यदाऽपि हि कुप्यन्ति हेतुबाहुल्य-तोरणात्।" प्रतिश्याय भी दो प्रकार से होता है। इनमें से सद्योजनक प्रतिश्याय सर्दी या कफ-दोष-वर्धक कारणोंसे नासिकामें विशेषकर कफदोष गाढ़ा पड़ जाता है, उस समय यदि मल-मूत्र-छींक-अश्रु आदि वेग रोकनेका प्रसङ्ग आवे अथवा प्रबल अजीर्ण हो, नाकमें धूल या भूसेकी भस अधिकतासे भर जावे अथवा लगातार बहुत देर तक भाषण देने या कथा कहने का अवसर हो अथवा अकस्मात ऋतुपरिवर्तन या ऋतुकी विषमता हो, शिरमें तपन या दर्द हो, रातमें जागरण करना पड़े या मनुष्य अधिक देर तक विशेषकर दिनमें सोता रहे, शीतल जलमें या वर्षामें अधिक देर तक भीगना पड़े, अवश्ययाा अर्थात् ओस, पाला या बर्फ गिरते समय खुलेमें रहनेका प्रसङ्ग आवे, अथवा अधिक मैथुनमें मनुष्य आसक्त रहे तो अधिक रोनेमें या अधिक देर तक धुएँमें बैठनेसे कफ भरा रहनेसे शिरमें प्रवृद्ध हुआ वायु तुरन्त प्रतिश्याय या जुखाम उत्पन्न कर देता है। यही प्रतिश्यायका सद्योजनक निदान है।

सन्धारणाजीर्ण रजोऽति भाष्य क्रोधर्तु वैषम्य शिरोभितापैः
प्रजागरातिस्वपनाम्बु शीतैरवश्ययया मैथुन वाष्प धूमैः

संस्थान दोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्याय मुदीरयेत्तु ॥
सद्यः प्रतिश्यायके कारण लिखते हुए सुश्रुत भी कहते हैं।

नारी प्रसङ्गः शिरसोऽभितापो धूमोरजः शीतमतिप्रतापः।
सन्धारणं मूत्र पुरीषयोश्च सद्यः प्रतिश्याय निदानमुक्तम् ॥

सम्प्राप्ति—"चयादिक्रमजात प्रतिश्यायमें पहले दोषों का संच होता है अर्थात् स्वस्थान वृद्धिर्दोषाणांचयः के" अनुसार दोष अप स्थानमें संचित होते हैं—बढ़ते हैं। इसके साथ ही रक्तका भी संच होता है। उस समय आहार-विहारकी परवाह न करनेसे अधि व्यायाम, परिश्रम, कुश्ती लड़ने, दिनमें सोने आदिसे दोष प्रकुपि होते हैं फिर बासी अन्न, तेज, खटाई, मिर्चा, सिरका आदि ते पदार्थोंके सेवन, शीतल जलपान, पूरी-कचौड़ी-लड्डू आदि मैदेक तथा गुरुपाक वस्तुओंके खानेसे उन प्रकुपित दोषोंका प्रसर होता है अर्थात् वे फैलकर शिरमें पहुँचते और प्रतिश्यायको उत्पन्न करते हैं उदानवायुकी प्रेरणासे प्रकुपित दोष ऊर्ध्वगामी होकर पहुँचते हैं पित्त और रक्त भी त्वक् और सिरामें आश्रित रहनेके कारण शिर जाकर संचित होते हैं, एवं कफ तो छातीसे शिर तक रहता ही है इस प्रकार घ्राणमूलमें स्थित कफ-पित्त और रक्त वायुकी ओर प्रेरि होते हैं, होते जाते हैं और स्थान संश्रय प्राप्त करते हैं अर्थात् नाक औ शिरमें अपना अधिकार जमा लेते हैं। जिससे प्रतिश्यायकी उत्पत्ति होती है। रोग व्यक्त होने पर उसके भेदोंकी संख्या निश्चित होती है। इस प्रकार सर्वप्रथम संचय, फिर प्रकोप, तब प्रसर और स्थान संश्रयके पश्चात व्यक्ति (रोगोत्पत्ति) और भेद रूपसे इसका चयादिक्रम होत है। कहा भी है—

चयं गतामूर्धनि मारुतादयः पृथक् समस्ताश्चतथैव शोणितम्।
प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोपनैस्ततः प्रतिश्याय करा भवन्ति हि ॥

नाककी अधिकांश व्याधियोंका सम्बन्ध मस्तिष्कके साथ है। माथेका कफ नाकमें उतरता है, दिमागका रक्त नकसीर होकर नाकसे बहता है, अतएव इस प्रकारके संचय-प्रकोप-प्रसर आदिमें घ्राणके साथ ही शिर और मस्तिष्कका सम्बन्ध रहता है। हकीम लोग भी इस सम्बन्धको मानते हैं। यूनानीमतानुसार विकृत दोष और मल दिमागके दोनों पर्दों से नाककी तरफ उतरते हैं उसे ही जुकाम कहते हैं। जब ये दोष गलेकी तरफ गिरते हैं तब उसे नजला कहते हैं। यह नजला गलेसे भी उतर सकता है और श्वासनलिकाके रास्ते छाती और फेफड़ेकी ओर भी आ सकता है। नाककी ओर उतरनेवाला जुकाम पतले कफ वाला होता है और वह नाकका रास्ता बन्द कर देता है। जुकाम और नजलेका सम्बन्ध दिमागके साथ वैसा ही है जैसा विरेचन-में दस्तोंका सम्बन्ध आमाशयसे रहता है। आमाशयकी कमजोरीके कारण आहारका पचन ठीक नहीं होता जिससे आमाशयमें निकम्मे फोक इकट्ठे हो जाते हैं। वे टुकड़े ग्रहणी द्वारा आंतमें आते और कच्चा मल दस्तोंके द्वारा बाहर निकलता है। इसी तरह शिरको ओर आये हुए कफ-रक्त-पित्तका उचित परिपाक (प्रतिश्यायोत्पादक कारणों और प्रकोप कारक आहार विहारके द्वारा क्षुभित रहनेके कारण) नहीं हो पाता। अतएव मस्तिष्कमें जो विकारको बाहर निकालनेकी शक्ति है उसके द्वारा विकृत अंश जुकाम और नजलेके रूपमें बाहर आता है। जब बाहरी आहार-विहारसे मस्तिष्कमें गर्मी पहुँचती है तब वह गर्मी शिरकी विकृतिको पिघलाकर हिलाती है और नाक या गलेकी ओर फेंकती है। धूपमें रहने, गरम पानीमें नहाने, आगके पास अधिक बैठने अथवा गर्मीके दिनोंमें बन्द जगहमें अधिक देर बैठनेसे दिमागमें ऐसी गर्मी पहुँचती है। कस्तूरी, सिरका, केसर आदि सूंघने या शिरमें कोई गरम तेल लगानेसे भी विकृत दोष मथकर नाक या गलेकी ओर उतर आते हैं। रोग कारक कारण बने

रहें तो विकार निकलने पर भी वहाँ दूसरे अपचित अंश आजायँगे। जैसे आगकी ओर तेल खिंचता है। उसी तरह इस ऊष्माकी ओर श्लेष्मा और स्निग्धांश खिंचता है।

विवेचन—डाक्टरीमें प्रतिश्यायको (Coryza) कहते हैं। एलोपैथीवाले इसके भेदोंमें नहीं उतरे। उनके यहाँ एक ही प्रतिश्यायकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ मानी जाती हैं। विकृत प्रतिश्यायमें एलोपैथीवाले कीटाणु मानते हैं। हमारे यहाँ भी कफमें कीटाणु होना माना गया है। जब कफ अधिक दिनों तक संचित होकर विकृत होता रहता है तब उसमें सड़न पैदा होती है। जहाँ सड़न होगी वहाँ जीवाणुओंका उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। कीटाणु हमारे यहाँ रोगके कारण नहीं बल्कि उपद्रवरूप रोग वर्धक हो सकते है। यह पहले कहा जा चुका है कि मस्तिष्क गत विकृत दोष नासा द्वारा बाहर होते हैं और गले तथा श्वासयन्त्र द्वारा आमाशय और छाती तथा फेफड़ेमें भी पहुँचते हैं। आमाशयमें पहुँचकर कफ दोषके कारण मन्दाग्नि उत्पन्न करते हैं और छाती तथा फेफड़ेमें पहुँचकर फुफ्फुस विकार उत्पन्न कर सकते हैं। जिससे खांसी-श्वास-क्षय जैसे भयंकर रोग और न्यूमोनियां, इनफ्लुएञ्जा आदि सान्निपातिक व्याधि भी उत्पन्न करते हैं। जिन लोगोंका स्वास्थ्य अच्छा है और रोग निवारक शक्ति यथेष्ट रूपमें है उन्हें सामान्य कारण होनेसे प्रतिश्याय नहीं होता, उग्र कारण होनेसे प्रतिश्याय होने पर भी उपाय करनेसे उसका शमन हो जाता है और भयंकर व्याधियाँ नहीं हो पातीं। ऊपरके वर्णनमें कहा गया है कि प्रतिश्यायके कारणोंसे क्षुभित कफ-पित्त और रक्त वायुकी ओर गमन करते हैं। साधारणतः कफ-पित्तकी विकृति तो समझमें आती है; परन्तु रक्तकी विकृति सोचने समझनेकी बात है (स्वाभाविक अवस्थामें रक्तमें इतनी गर्मी रहती है कि उसका प्रवाह होता रहता है, फेफड़ोंमें रक्तकी सफाई होती रहती है, यकृत और वृक्क अपना काम

करते रहते हैं; किन्तु शीत संसर्गसे रक्तकी उष्णतामें कमी आ जाती है और आवश्यकतासे अधिक उष्णतासे उसमें उबाल आ जाता है। ऐसी दोनों परिस्थितिमें रक्तमें विकार उत्पन्न होता है। ऐसी सर्दी या ऐसी उष्णताका नियन्त्रण मस्तिष्क नहीं कर पाता। रक्तकी साधारण-से कुछ अधिक उष्णता तो पसीनेके द्वारा निकल जाती है और शरीर यथास्थित हो जाता है। इसी साधारण सर्दीका नियन्त्रण भी रक्तका प्रवाह बढ़कर हो जाता है। किन्तु नियन्त्रणके बाहर सर्दी-गर्मी होनेसे प्रतिश्याय हो जाता है या नकसीर फूटने लगती है। सर्दी-गर्मीके नियन्त्रणका कार्य नाड़ीजालके द्वारा अपने नियमके अनुसार होता रहता है। उस पर जोर जबरदस्ती नहीं चल सकती। जो आरम्भसे ही परिश्रमशील होते हैं, जिनमें गर्मी-सर्दी बरदाश्त करनेकी शक्ति होती है, जिनके मल-मूत्र परिष्कारकी शक्ति सन्तोष-जनक होती है, उन्हें निदानमें वर्णित कारण होने पर भी जुकाम नहीं होता। किन्तु नाजुक प्रकृति वालों पर उनका असर शीघ्र होता है।

नैसर्गिक चिकित्सावादियोंके मतसे विकृत आहार-विहार जनित कारणोंसे जो विकार शरीरके भीतर संचित हुए हैं वे प्रतिश्यायके रूपमें बाहर निकलकर शरीर निरामय बनानेका काम होता है। ऐसी दशामें सहसा प्रतिश्याय रोकनेका प्रयत्न करना अनुचित है। आयुर्वेद भी निदान विपरीत कार्य कर विकृति रोकनेका आदेश करता है उसे दबाने या सुखानेके कार्यको अनुचित समझता है। शारीरिक और मानसिक दोषोंको उत्तेजित न करनेसे प्रकृतिसाम्य रह सकता है।

पूर्वरूप—ऊपर लिखे कारणोंसे जब प्रतिश्याय होनेवाला होता है, तब उसके पूर्वरूप प्रकट होने लगते हैं। जब प्रतिश्यायोत्पादक कारणोंसे अपने स्थानमें ही दोष सञ्चित होते हैं और दोषोंका प्रकोप करनेवाले आहार-विहारकी उपस्थिति होती है, तब उन दोषोंमें प्रकोप होता है। प्रकुपित दोष नासास्थान और शिरके अन्य भागोंमें फैलते

हैं। शिरमें सञ्चित वातादि दोष तथा रक्त अलग-अलग अथवा सम्मिलित रूपसे प्रकुपित हो अपने अस्पष्ट लक्षण प्रकट करने लगते हैं। इसके पूर्वरूपमें ये बातें होती हैं।

> क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽति पूर्णता-
> स्तम्भोऽङ्ग मर्दः परिहृष्ट रोमता।
> उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा
> नृणां प्रतिश्याय पुरः सराः स्मृतः॥

अर्थात् छींकोंकी प्रवृत्ति होती है, नाकमें सुरसुराहट होती और छींकनेकी इच्छा होती है। शिर भरा हुआ सा और जकड़ा हुआ सा मालूम पड़ता है। शरीरमें दर्द होता और टूटता हुआ-सा मालूम पड़ता है। बार-बार शरीरमें सिहरन-सी मालूम पड़ती और रोवें खड़े होते हैं। इनके सिवाय अन्य उपद्रव भी होते हैं। इन अन्य उपद्रवोंके सम्बन्धमें आचार्य विदेहने लिखा है—

> पूर्वरूपाणि दृश्यन्ते प्रतिश्याये भविष्यति।
> घ्राण धूमायनं मन्थः क्षवथुस्तालु दारणम्।
> कण्ठध्वंसो मुखस्रावः शिरसः पूरणं तथा॥

अर्थात् नाकमें धुआंसा भरा मालूम पड़ता है, नाकमें चिपचिपाहट मालूम पड़ती है, तालु फटतेसे हैं, गला बैठ जाता है और मुँहसे लार (तथा नाकसे भी पानी) निकलती है।

भेद—प्रतिश्याय ५ प्रकारका है। वातज प्रतिश्याय, पित्तज प्रतिश्याय, कफज प्रतिश्याय, सान्निपातिक प्रतिश्याय और रक्तज प्रतिश्याय। रसरत्नसमुच्चयकारने छठा मलसञ्चयजनित प्रतिश्याय भी माना है।

पाश्चात्य डाक्टरोंने स्थानिक भेदसे प्रतिश्यायजन्य कई बीमारियोंका वर्णन किया है। जिनमेंसे कुछ घ्राणाश्रित होती हैं और कुछ फुफ्फुसमें

होती हैं। इनका समावेश इन्हीं दोषोंमें प्रायः हो जाता है। उनका वर्णन हम पृथक् करेंगे। एलोपैथीमें प्रतिश्यायकी भेद-कल्पना दोष-विकृतिके आधार पर तो है नहीं अतएव डाक्टर लोग स्थानसंश्रय भेदसे उसकी भेद कल्पना करते हैं। **नासाकला प्रतिश्याय**—जब नाककी झिल्लीमें प्रदाह होता है, तब उसे वे लोग सिरका जुकाम (Rhinitis) कहते हैं। जब स्वरयन्त्र (Larynx) की झिल्लीमें प्रदाह होता है, तब उसे लेरिंजाइटिस या स्वरयन्त्रका जुकाम कहते हैं। **गल प्रतिश्याय**—जब गलेकी झिल्ली में प्रदाह होता है, तब उसे फेरिंजाइटिस या गलेका जुकाम कहते हैं। **श्वासनलिका प्रतिश्याय**—जब श्वासनलिकाकी पतली नस (Bronchia) की श्लैष्मिककलामें प्रदाह होता है, तब उसे ब्रोंकाइटिस कहते हैं। इनफ्लुएञ्जा श्लेष्मप्रधान सन्निपात भी इसी तरह माना जाता है। इस प्रकार ये प्रदाहके कुछ तो वास्तविक तथा शरीरान्तर्गत कारण होते हैं और कुछ तात्कालिक होते हैं। वास्तविक कारण दोषविकृति है, उससे रोगोत्पत्ति होती है और तात्कालिक कारण पाकर रोगका आक्रमण होता है।

कभी-कभी अन्य बीमारियोंके उपद्रव रूप भी हो जाता है। कुकुरखाँसी, खसरा, चेचक, लालबुखार और इनफ्लुएञ्जाके साथ भी प्रतिश्याय हो जाया करता है।

सिरका जुकाम एक तो तीव्र और पुराना होता है, जिसे दुष्ट प्रतिश्याय कहते हैं और दूसरा पीनसके रूपमें होता है, जिसमें दुर्गन्धि और कृमि होनेका भय रहता है। नाककी श्लैष्मिककलामें कफके कारण जो प्रदाह होता है, उसे सिरका जुकाम कहते हैं। यदि यह जुकाम एक हफ्तेसे अधिक बना रहे तो समझना चाहिये कि शरीरमें रोगनिवारकशक्ति यथेष्ट नहीं है। ऐसी दशामें जो पहले पतला कफ नाकसे निकलता था, वह गाढ़ा हो जाता है; जिसे मवाद या नेटा कहते हैं। उसके साथ शरीरके अनगिनत कोष-वे कोष भी-बाहर आते

हैं जो शरीरकी रक्षा करते थे; किन्तु दोष विकृतिसे परास्त हो नष्ट हो गये और बाहर आ गये हैं। आरम्भमें खुजलीके साथ जलन और छींकें आती हैं, पतला पानी निकलता है। आगे चलकर वह पानी चिकना फिर गाढ़ा हो जाता है। आँखोंमें पानी आना और कभी-कभी आँख उठ आनेकी शिकायत भी होती है। कान भी भारी हो जाते हैं। अधिक बढ़ने पर नाककी झिल्लियाँ सूज जाती हैं और सुगन्धि-दुर्गन्धिका ज्ञान नहीं रहता।

शिरके जुखाममें कफ सिरमें रुक जाता है, जिससे नाककी श्लैष्मिक कलामें ललाईके साथ शोथ हो जाता है। नाककी दीवालोंके सूज जानेसे नाक सट जाती और श्वास-प्रश्वासमें रुकावट होने लगती है। फिर नाकमें जलन और खुजली और वाष्प धूम निकलता है। कभी एक नासारन्ध्र सटा रहता है, कभी दूसरा। यदि भीतरी भागमें कफ जमा रहे तो नाक लाल रहती है। मुँहका स्वाद बिगड़ जाता है और नाकको सुगन्धि-दुर्गन्धिका ज्ञान नहीं रहता। कानसे कम सुनाई पड़ने लगता है।

पीनसका वर्णन आगे आवेगा। स्वरनलीके जुखाममें स्वर नलीमें प्रदाह होता है, साँस लेनेमें कष्ट होता है। यह भी नयी अवस्थामें तीव्र रहता है, फिर पुराना पड़ जाता है। तीव्र स्वर नलीका जुकाम साधारण जुखामकी तरह और कभी-कभी स्वतन्त्र रूपसे होता है। स्वर नलीमें धूल या अमोनियाँ तथा नौसादर चूनेका मिश्रण चले जानेसे स्वतन्त्र स्वरनलीका जुखाम होता है। जोरसे गाने, अधिक व्याख्यान या जोरसे कथा कहनेसे स्वरनलिकामें खुजली होकर जुखाम होता है। जिन लड़कोंको अस्थिक्षय या कण्ठमाला होता है, उन्हें यह जुखाम प्रायः हो जाता है। प्रवाल, शुक्ति, शङ्ख, शौक्तिक आदि औषधियाँ पहुँचा देनेसे लाभ हो जाता है। इसमें गलेमें जलन और खुजली होती तथा काँटेसे चुभते हैं। खाँसी आती है, स्वर भङ्ग हो जाता है,

नीचे स्वर यन्त्रकी नलीमें शोथ हो जाता हैं। पुरानें स्वर यन्त्रके जुखाममें पानीमें रहना, पैर ठण्डे रखना हानिकर है। यदि नया स्वर-यन्त्रका जुखाम पूरा तरह अच्छा न हो तो वह पुराना पड़ जाता और बार-बार होता है। स्वरयन्त्रकी झिल्लियोंमें शोथ हो जाता है। खाँसी आती है। स्थायी रूपसे स्वरभंग हो जाता है।

गलेके नये तीव्र जुखाममें गलेकी झिल्लियोंमें सूजन होती है, प्रदाह होता है, पाँव गीले रखने और गलेमें धूल जानेसे यह हो जाता है। तमाखू, बीड़ी और शराब पीनेवालोंको भी यह हो जाता है। गला सूखा करता है, काँटेसे चुभा करते हैं। गलेका पुराना जुखाम मुँहसे साँस लेने, शराब-तमाखू पीनेसे स्वरयन्त्र कमजोर पड़नेसे होता है। इसके साथ-साथ कभी-कभी स्वर यन्त्रका भी जुखाम हो जाता है। गला खसखसाया करता है। सबेरे सोकर उठनेपर गलेमें जलन और खुजली रहती है। कभी-कभी गाढ़ा चिकना कफ थोड़ा-थोड़ा निकला करता है।

श्वास नलीका जुखाम ब्रोंकाइटिस कहलाता है। श्वासवहा पतली नसें ब्रांकिया दूषित हो जाती हैं और उनकी झिल्लियोंका प्रदाह होता है। यदि प्रदाह तीव्र हो तो बीमारी तीव्र होती है, प्रदाह मन्द हो तो बीमारी भी धीमी होती है। प्रारम्भिक अवस्थामें गलेमें, नाकमें और वायु मार्गमें जोरकी जलन और खुजली होती है, गला सूखता है, काँटेसे चुभते हैं। खाँसी आती है, प्रदाह शान्त न हुआ तो दूषित कफ निकलने लगता है। ऋतु परिवर्तन, अधिक सर्दी लगने, अधिक गर्मी, भोजनमें समय-कुसमय होनेसे यह बीमारी हो जाती है। प्रायः फागुन, चैत्र या आश्विन-कार्तिकमें यह होता है। यदि किसीके माता-पिताको हो तो लड़कोंको भी हो जाया करता है।

वातज प्रतिश्याय—प्रतिश्यायमें वात प्रधान होता है; क्योंकि कफ-पित्त और रक्त जब वातकी ओर गमन करते हैं, तब वातके

संसर्गसे प्रतिश्याय होता है। किन्तु जब दोषोंमें वातकी प्रधानता रहती है, तब उसे वातज प्रतिश्याय कहते हैं।

तत्र वातात् प्रतिश्याये मुखशोषो भृशं क्षवः।
घ्राणोपरोध निस्तोद दन्त शङ्ख शिरो व्यथाः।
कीटका इव सर्पन्ति मन्यते परितो भ्रुवौ।
स्वरसादश्चिरात् पाकः शिशिराच्छ कफस्रुतिः।

अर्थात् वातप्रधान प्रतिश्यायमें मुँह सूखता है, छींकें बहुत आती हैं, नाकमें सुरसुराहट और चुभन होती है, दाँतोंमें, शंखदेश कपालमें और शिरमें दर्द होता है। भौहोंके आसपास ऐसा मालूम पड़ता कि मानों चींटी या कीड़े चल रहे हैं, गला बैठ जाता है, आवाज साफ नहीं निकलती, प्रतिश्यायका परिपाक विलम्बसे होता है, नाकसे जो कफ निकलता है, वह ठण्डा और पतला रहता है। चरकाचार्यने नाकसे जलके समान स्राव होना लिखा है। माधवकरने नाकका बार-बार रुक जाना और फिर खुल जाना तथा गला, तालु ओंठका सूखना, कनपटीमें सुई चुभानेका-सा दर्द, मुखका स्वाद फीका पड़ जाना भी लिखा है।

(१) वातजन्य प्रतिश्यायमें वातनाशक औषधियोंसे (देवदार्व्यादि गण—देवदारु, तगर, कूट, दशमूल, बरियारीकी जड़, सहदेवी आदि औषधियाँ वातनाशक हैं) सिद्ध किया हुआ घृत पीनेको देवे अथवा पञ्चलवण घीमें डालकर थोड़ा पानी डाल पका ले और पिलावे अथवा **विदार्यादि गण** (विदारीकन्द, एरण्डमूल, मेढ़ासिंगी— ककड़ासिंगी, पुनर्नवा, देवदारु, मुद्गपर्णी, केवांचके बीज, जीवन पञ्चमूल, सतावर-काकोली-जीवन्ती-जीवक-ऋषभक, लघुपञ्चमूल-सरिवन-पिठवन, भटकटैया-बड़ी भटकटैया, गोखरू, अनन्तमूल, लज्जालू, विदार्यादि गण हैं) की औषधियोंसे घृतपाक कर पिलावे। अर्दित रोगमें वर्णित स्वेद और नस्यका भी प्रयोग करे। (२) अथवा आधी छटाँक गेहूँका चोकर,

आधी छटाँक मिश्री वा बतासा, आधा तोला हल्दी, तीन माशा मुलेठी सबको आध सेर पानीमें पकावे, जब आध पाव रहे, तब उसे पिलावे। (३) अथवा ककड़ीके बीजकी मींगी, खीराके बीजकी मींगी, बादामकी बीजी, बादामका तेल, गौके दूधका मक्खन मिलाकर खिलावे। (४) अथवा गुलबनफशा, मुलेठी, उन्नाब,लसोड़ा और मुनक्का तथा काली-मिर्चका काढ़ा कर मिश्री और बादामका तेल मिलाकर पिलावे।

शताह्वादि धूम्रपान—सौंफ, दालचीनी,बरियारीकी जड़, श्योनाक, एरण्डमूल, बेलकी छाल, अमिलतासका गूदा, सबको पीसकर मोम, चर्बी और घी मिलाकर बत्ती बनावे और यथाविधि धूम्रपान करे। (५) अथवा **शक्तुक धूम्रपान**—घृतयुक्त सत्तू एक सकोरेमें डाल उसमें अङ्गार रखे और ऊपरसे परई ढाँक दे, जिसके बीचमें छेद रहे। इस छेदमें एक पोली नली लगा दे, जिससे जो धुआँ निकले, उसे नाकमें नली लगाकर नाकमें धुआँ खींचे, इसी प्रकार शताह्वादि धूम्र-पानमें भी धूम्रपान लें।

(६) यदि शंखदेश या शिर अथवा मस्तकमें दर्द होता हो तो पाणिस्वेद करे। अर्थात् हाथकी हथेली आगमें तपाकर उसीसे शंख-देश या मस्तक या शिर सेंके। छींक, अवरोध आदिमें हाथोंमें तेल तेल चुपड़ कर तब सेंकना चाहिये।

पैत्तिक प्रतिश्याय—पैत्तिक प्रतिश्यायमें पित्तकी विकृति विशेष-रूपमें होती है। पित्तकी ऊष्मासे प्रकृतिमें गर्मी बढ़ जाती है। यहाँ तक कि दिमागकी स्वाभाविक गर्मी भी बिना किसी बाहरी कारणके प्रति-श्याय उत्पन्न कर देती है। इससे नाकका जुखाम और गलेमें उतरने-वाला नजला भी हो सकता है। जिस समय दिमाग गर्म होता है उस समय उसमें इतने विकारोंका संचय हो जाता है कि वह उस विकारको पचा नहीं सकता। वही विकार प्रतिश्यायके रूपमें बाहर निकलता या गलेमें उतरता है। कभी-कभी प्राणस्थित दोष अथवा

मस्तिष्क स्थित दोषोंके कारण उन अवयवोंमें इतनी निर्बलता आ जाती है कि वे अपना स्वाभाविक कार्य करनेमें समर्थ नहीं होते, अपनी निर्बलताके कारण वह दोषोंको निकाल भी नहीं सकते। भीतरी उष्णताके कारण उन दोषोंमें विदग्धता आ जाती है। प्रतिश्यायके द्वारा श्लेष्मा यथावश्यक नहीं निकल पाता। नाड़ी उष्ण और जल्दी-जल्दी चलती है, पेशाब भी पीला पड़ जाता है। ऐसी दशामें निम्न लक्षण भी होते हैं—

पित्तात्तृष्णा ज्वर घ्राण-पिटिका सम्भव भ्रमाः।
नासाग्रपाको रूक्षोष्ण स्ताम्रपीत कफस्रुतिः॥

अर्थात् पित्त-विकृतिके कारण जो प्रतिश्याय होता है, उसमें रोगीको प्यास बहुत लगती है, क्योंकि भीतरी ऊष्माकी शान्तिके लिये प्रकृति प्रयत्नशील होती है। उष्णताके कारण ज्वर आ जाता है, नाकके अग्र भागमें फुंसियाँ पड़ जाती हैं, उष्ण और उष्ण भाफके कारण चक्कर आते हैं, नाक पक जाती है, कफ कम आता है, जो आता है वह रूक्ष-उष्ण और ललाई लिये पीले रङ्गका रहता है। चरकाचार्य कहते हैं कि मुँह सूखता और प्यास लगती है। सुश्रुताचार्य कहते हैं कि रोगी दुबला और पीले फीके रङ्गका हो जाता है, शरीरमें जलन-सी रहती है, मुँहमें धुएंकी डकारें आतीं और गरम गरम वान्ति होती है।

मधुरादिगण—नारियल, फालसा, सतावर, मुनक्का, काकोली, बला, अतिबला, नाग बला, मेदा, महामेदा, सरिवन, पिठवन, जीवन्ती जीवक, ऋषभक, मुलेठी, विदारी कन्द, मुण्डी, वंशलोचन, कटसरैया, गोखरू आदि औषधियोंका काढ़ा पिलावे। अथवा इन्हीं औषधियोंसे सिद्ध कर घृतपान करावे।

यवासादि क्वाथ—(१) पित्तजन्य प्रतिश्यायमें मधुर औषधियों से सिद्ध कर घृतपान करावे। (२) जवासाकी जड़, दूब, नीमकी छाल, अड़ूसेकी जड़की छाल, केवाचके बीज, नागरमोथा,

सतावर, मुलेठी, मुनक्का, अंजीर, प्रियङ्गु, सरिवन, पिठवन, कमल-गट्टाका काढ़ा मिश्री डालकर पिलावे (३) खस, कमलनाल, दूब, सुगन्धबाला पीस कर शरीर पर लेप करे। (४) पित्तकी उष्णता कम करनेके लिये मुनक्का, अंजीर, बनफशा, उन्नाब, लसोढ़ा, तुख्मखतमी, शीरखिस्त और गुलाबके फूल पकाकर काढ़ा पीवे। इससे उष्णता घटेगी और साफ पायखाना होकर बेचैनी दूर होगी। बलगम ढीला पड़ कर बाहर निकलेगा। (५) प्रतिश्यायका नजला गले या स्वर-यन्त्रमें न जाने पावे, इसके लिये अनारका छिलका या अनारदाना और मसूर पकाकर कुल्ले करावें। अथवा पोस्तकी डोंडी, और पोस्ता के दाने मसूरके काढ़ेमें औटा कर कुल्ले करावे। (६) हकीम लोग ऐसी दशामें दयाकूजा बनाकर दिया करते हैं। आधपाव खसखसके बीज अठगुने पानीमें एक दिनरात भिगा रखे, फिर खसखसपीसकर उसी पानीमें औटावे। जब आधा रह जाय तब उतार कर हाथसे मल कर छान ले। इसके बाद एक पाव मिश्री या साफ चीनी डाल कर चासनी बनावे। यदि अधिक तेज करना हो तो खसखसके साथ ही उसमें पोस्तेके डोंड़े भी मिला दे। यदि पानी गांगजल (सावन-भादोंकी वर्षाका पानी ऊपर ही रोक कर वर्तन में ले ले उसे गाँगजल कहते हैं) हो तो अधिक उत्तम होगा। शर्बत बनाते समय यदि उसमें अंगूरका रस चीनीके बराबर डाल दे तो अच्छा होगा। इस शर्बतको यवागूके साथ मिलाकर पिलावे। (७) **सरलादि कवल**—रालाधूप, देवदारु, पतङ्ग, लाल-चन्दन, प्रियंगु, शहदके नीचेकी जमी हुई शर्करा, मुनक्का, मुलेठी, गुर्च, बनगोभी, काश्मीरी, सेवका काढ़ाकर मुखमें कवल धारण करे। (८) धौकी छाल, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, त्रिवृत, पठानीलोध, मुलेठी, हल्दी और श्रीपर्णी समान भाग लेकर दशगुने दूध में तैलपाक करे। इस तेलका नस्य हितकारी होगा। यह रक्तपित्तमें भी अधिक लाभदायक होगा। (९) यदि वातज प्रतिश्यायमें आँखोंमें खुश्की, सिरमें दर्द और भारीपन

मुखमें विदग्धता और नाकमें धुएंकी-सी गन्ध हो तो बताशा और, बनफशा, खतमी, काहूके बीज और घिया तरोई के पत्ते औटाकर बफारा देवे। इसी काढ़ेसे माथेको सींचे। जौके काढ़ेमें खसखस पकाकर देवे। निशास्ता, खाँड़ और बादामके तेल से हरीरा बना कर देवे। चन्दरसगोंदकी धूनी देवे।

कफज प्रतिश्याय—अधिकतर जुखाम या प्रतिश्याय कफका रोग माना जाता है। इसमें कफकी विकृति प्रधान है और वह अनिवार्य रूपसे होती है। प्रत्यक्षरूपसे भी कफ हो या नजला या बलगम हो वह श्लेष्माके रूपमें निकलता है। ऐसी कफ विकृति चाहे बाह्य कारणसे हो चाहे भीतरी दोषविकृतिसे हो कफपर असर अवश्य डालती है। बाहरी कारणोंसे सिर पर सर्दी पहुँचने, अधिक समय तक ठण्डेपानीमें रहने, सर्द हवामें खुले सिर घूमने, परिश्रम या व्यायामके पश्चात तुरन्त स्नान करने या पानी पी लेने-से कफ विकृति हो जाती है। खुले शरीर सर्दीमें रहनेसे रोमरन्ध्र बन्द हो जाते हैं; क्योंकि रक्तमें गाढ़ापन आ जाता है और चमड़ा सिकुड़ जाता है। ऐसी दशामें रक्तका संचार कम पड़ जाता है, पसीना रुक जाता है, जिससे दूषित अंश बाहर नहीं निकल पाते। भीतरी सर्दी पहुँच जाने के कारण भीतर शरीरमें भी उनका विपाक नहीं हो पाता। अतएव वह दूषित अंश श्लेष्मा बनकर नासिकाकी ओर आता है अथवा नजला बनकर गले या स्वरयन्त्र द्वारा छाती और फेफड़ेमें जाता है। जैसे अर्क खींचनेके यन्त्रमें गरम भाफ नलिकामें आकर सर्दी पाने से पानीके समान टपकने लगती है, उसी तरह भीतरी विकृति से श्लेष्मांश बाहर आता है। यही कफज प्रतिश्याय है। वाग्भटाचार्य इसके लक्षण यों लिखते हैं—

कफात् कासो ऽरुचिः श्वासो वमथुर्गात्रगौरवम्
माधुर्यं वदने कण्डूः स्निग्ध शुक्ल घना स्नुतिः

अर्थात् कफज प्रतिश्यायमें खाँसी होती है, कफविकारके कारण भोजनमें अरुचि हो जाती है, यदि व्याधि कुछ दिनों तक कायम रहे तो श्वास यां दमाकी-सी शिकायत होती है। इस प्रकार दमाकी शिकायत होनेके लिये यह आवश्यक है कि दोष या नजला स्वरयन्त्र द्वारा छातीमें आवे। दमाकी शिकायत होने पर स्वरयन्त्रमें वंशीकी ऐसी ध्वनि आकर्णनयन्त्र या छातीमें कान लगाकर सुननेसे मालूम पड़ती है। कफ वृद्धिके कारण जो मचलाता है और वान्ति मालूम पड़ती है। शरीर भारी और जकड़ासा मालूम होता है, मुँहका स्वाद मीठा-सा गुलचट मालूम पड़ता है। नाकमें खुजली मालूम पड़ती है। कफ गाढ़ा पड़ जाता है अतएव नाकके द्वारा जो कफ बाहर निकलता है वह चिकना, सफेद गाढ़ा होता है। चरकाचार्य कहते हैं कि मुखके द्वारा जो कफ आता है वह भी गाढ़ा होता है। सुश्रुताचार्य इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं

कफः कफकृते घ्राणाच्छुक्लः शीतः स्रवेन्मुहुः
शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरु शिरोमुखः
शिरो गलौष्ठ तालूनां कण्डूयनमतीव च ॥

अर्थात् नाकसे जो कफ निकलता है वह सफेद और ठण्डा होता है तथा बारम्बार निकलता है। शरीर सफेद फीका पड़ जाता है। आँखोंकी पलकें और गण्डमें सूजन मालूम पड़ती है। शिर और मुख भारी मालूम पड़ता है। शिरमें खुजली, गलेमें सुरसुराहट, ओठों और तालुओंमें भी खुजली मालूम पड़ती है। यह खुजली कुछ अधिकता के साथ मालूम पड़ती है।

कफज प्रतिश्यायमें (१) लंघन कराकर बढ़े हुए कफको सुखावे (२) पीले सरसों पीसकर सिरमें लेप करे (३) घीमें जवाखार मिलाकर पीवे और कय करे (४) सैंन्धवादिनस्य—सेंधानमक, सोंठ मिर्च, पीपल वायविड़ंग, इन्द्रजव और जीरा बकरेके मूत्रमें पीसकर नाकमें नस्य ले।

(५) **यवाग्वादिवमन**—यवागू तिल, उड़द, घी से स्निग्ध कर पीवे और वमन करे। (६) **बलादितैल**—बला, अतिबला, छोटी भटकटैया, बड़ी भटकटैया, वायविडंग, गोखरू, सफेद विष्णुकान्ताकी जड़, मुद्गपर्णी, रास्ना, पुनर्नवा बराबर लेकर चौगुना तेल सिद्ध करे। इसका नस्य कफजप्रतिश्यायमें हितकारी होता है। (७) **त्रिवृत्तादि—धूम्रपान** निशोथ, अपामार्ग, दन्ती, देवदारु और इङ्गुदी, पीसकर बत्ती बनावे इसका धूम्रपान कफज प्रतिश्यायमें हितकारी होगा। (८) बाजरेके आटेकी मोटी-रोटी बना एक ओर उसे सेंकें और एक कपड़ेमें रख उससे माथेमें हल्की सेंक करें। (९) बन्द कमरेमें एक कपड़ा ओढ़कर बैठे और गरम पानीकी डेगची कपड़ेके भीतर रख स्वेदन करे। इससे पसीना आवेगा और रोमरन्ध्र खुल जावेंगे। **अगरुधूम्रनस्य**—(१०) अगर, कूट और कलौंजी सिरकेमें भिगोकर आगमें जलावे और उसका धुआँ सूँघें, अथवा इस प्रकार जलावें कि धुआँ नाकमें खींचा जासके। इससे कफ दोष ढीला पड़ेगा। (११) यदि भीतरी कारणोंसे दिमागमें शीत संचित होकर जुखाम हुआ हो, इन्द्रियोंमें शिथिलता, सिरमें बोझ और शरीरमें सुस्ती हो, उष्ण पदार्थोंके सेवनसे आराम मिले तो बफारा देकर, शिरोवस्ति देकर और सूंघनेकी दवा देकर दिमागमें उष्णता पहुँचावे। (१२) कफज प्रतिश्यायमें यदि सिरमें भारीपन रहे, बेहोशी मालूम पड़े, मुखका स्वाद बिगड़ जाय, खाने और सोनेके समय जीभ कट जाया करे, कफसे स्रोतस बन्द हो जानेके कारण बात करना कठिन हो तो तबियतको नरम करनेके लिये जूफा, मुलेठी, और अंजीर पानीमें औटा कर तुरंजबीन (हकीमीदवा) मिलाकर पीवे। गेहूँका चोकर और बादामकी गिरी, पकाकर शहद मिलाकर हरीरा पिलावे। (१३) **दार्व्यादि धूम्रपान**—दारुहल्दी, इंगुदी फलका गूदा, दन्तीबीजकजड़, अपामार्ग, निर्गुण्डीके पत्ते और तुलसीके पत्ते या बीज सब मिलाकर या जो मिलें अथवा एक-एक लेकर किसी पत्ते या

कागज में बीड़ी बना धूम्रपान करे। वृन्दामाधवमें मूलपाठ "दार्वीङ्ग द निकुम्भैश्च किणिह्या सुरसेन च ॥ वर्तयोऽथ पृथग्योज्या, धूम्रपाने यथाविधि" है। किन्तु योगरत्नाकरमें 'सुरस' के स्थान पर "सरलेन च" पाठ है। अतएव विकल्पसे सरलधूप भी ले सकते हैं।

त्रिदोषजक प्रतिश्याय—जब तीनों दोष दूषित होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करते हैं तब वह व्याधि घोर रूप होती है। इसमें प्रायः दोष-विकृति बाहरी और भीतरी दोनों कारणोंसे होती है। इसीसे इसमें वेग अधिक होता है। इस प्रतिश्यायका असर सारे शरीर पर पड़ता है। दोष विकृति ऊर्ध्वगामी होकर दिमागपर असर करती है। सुश्रुता-चार्य कहते हैं—

> भूत्वाभूत्वा प्रतिश्यायो यो ऽकस्माद्विनिवर्तते
> सम्पक्को वाप्यपक्को वा स सर्व प्रभवः स्मृतः।
> लिङ्गानि चैव सर्वेषां पीनसा नां च सर्वजे।

अर्थात सभी दोषोंके प्रकोपसे जो प्रतिश्याय होता है वह बारम्बार होता और अकस्मात् अच्छा हो जाता है और फिर होता है। वह जुखाम कभी पकता है और कभी नहीं पकता। इसमें सभी दोषोंके चिन्ह प्रकट होते हैं, यही नहीं पीनसके लक्षण भी इसमें देखे जाते हैं। आचार्यवाग्भट कहते हैं कि दोष विकृति अकस्मात बढ़ जाती है और इसी तरह अकस्मात शान्त भी हो जाती है। चरकाचार्य कहते हैं कि तीव्र वेदना होती है और वेदनाके कारण रोगीको बहुत कष्ट होता है। ऐसे जुखाममें पित्त दोषके कारण सिरमें दर्द तथा सिर और आँखोंमें जलन होती है, आँसू बहते हैं, मुखमें कडुवापन बना रहता है, प्यास अधिक लगती है,। नाकसे जो श्लेष्मा निकलता है वह पीले नीले रङ्गका गरम होता है। वायुके दोषसे खुश्की मालूम होती है, कफ सूखता है, कफमें नीली गाँठेंसी पड़ जाती हैं। कफ दोषसे शरीरमें भारीपन मालूम पड़ता है।

सान्निपातिक प्रतिश्याय कष्टदायक होता है। यों तो सभी प्रतिश्याय ज्यों-ज्यों पुराने होते और बढते हैं, त्यों-त्यों रोगी क्षीण होता जाता और अधिक बढ़नेपर क्षयरोग हो जाता है; किन्तु सान्निपातिक प्रतिश्याय पीनस उत्पन्न करनेका कारण होता है और कास-श्वास तथा क्षय भी औरोंकी अपेक्षा शीघ्र उत्पन्न करता है। अतएव इसकी चिकित्सामें विशेष सावधानी रखनी चाहिये। (१) त्रिदोषजन्य प्रतिश्यायमें तिक्त और तीक्ष्ण पदार्थोंसे घृत सिद्ध कर देना चाहिये। तिक्तादिघृत—परवर, त्रायमाण, सुगन्ध वाला, खस, चन्दन, चिरायता, नीम, कुटकी, तगर, अगर, कुरैया, करञ्ज, हल्दी, दारूहल्दी, नागरमोथा, मुर्रा, अडूसा, पाठी, अपामार्ग, गुर्च, जवासा, बृहत्पंच मूल (वेल, श्योनाक, अग्निमन्थ, पाटला, काश्मरी) छोटी भटकटैया, बड़ी भटकटैया, इन्द्रायण, अतीस, वच आदि तिक्त पदार्थ हैं। इनमेंसे उपयुक्त पदार्थोंसे घृत तैयार कर देवे। ऐसेही पदार्थोंका काढ़ा पिलावे नस्य देवे और काढ़ाकर कवल धारण करावे। ऐसेही पदार्थोंकी बत्ती बनाकर धूम्रपान करावे (२) नस्यके लिये। रसाञ्जननस्य—रसवत, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, भद्रमोथा बराबर बराबर लेकर चौगुने तेलमें पकाकर देवे। (३) कवल धारणके लिये मुस्तादिकवल—नागरमोथा, तेजबल, पाढ़ी, कायफल, कुटकी, वच, सरसों, पिपरामूर, छोटी पीपर, बड़ी पीपर, सेंधानमक, अजमोदा, शुद्ध तूतिया, करञ्ज बीज, देवदारु, सांभर नमक लेकर काढ़ा करे और उसी काढ़ेका कवल धारण करावे। इन्हीं पदार्थोंसे तेल सिद्ध कर शिरोविरेचन करावे। (४) गेहूँके चोकरको पानीमें पकाकर और फिर शहद मिलाकर गोधूमपेय पिलावे अथवा उसमें भुनी अलसी और काली मिर्च मिलाकर लेवे।

रक्तजप्रतिश्याय—प्रायः आचार्योंने रक्तजप्रतिश्यायको पित्तज प्रतिश्यायके अन्तर्गत माना है; क्योंकि रक्त कोई पृथक् दोष नहीं है।

वह दूष्य है और वातादिक दोषोंसे दूषित हुआ करता है। इतना होने पर भी पित्तज प्रतिश्यायसे इसमें कुछ विशेष अन्तर है। पित्तज प्रतिश्यायमें शरीर और आँखोंमें कुछ पीलापन आ जाता है; किन्तु रक्तजप्रतिश्यायमें आँखोंमें लाली मालूम पड़ती है, शिरमें भारीपन, कभी-कभी बेहोशी और नींदमें कमी होती है। गलेके कौवा, मसूड़े, कानों और मुँहमें खुजली मालूम पड़ती है। मुखमें मीठापन मालूम होता और दुर्गन्धि निकलती है। नाकसे गुलाबी रङ्गका मल निकलता है। आचार्यवाग्भट लिखते हैं –

> दुष्टं नासाशिरः प्राप्य प्रतिश्यायं करोत्यसृक्।
> उरसः सुप्तता ताम्रनेत्रत्वं श्वास पूतिता।
> कण्डूः श्रोत्राणि नासासु पित्तोक्तश्चात्र लक्षणम्।

अर्थात् दुष्ट हुए दोष विशेषकर रक्त नासाकी सिराओंमें व्याप्त होकर रक्तज प्रतिश्याय उत्पन्न करते हैं। इससे छातीमें सुन्नता मालूम पड़ती है, नेत्रोंमें लाली और श्वासमें गन्ध मालूम पड़ती है। कान और नाकमें खुजली होती तथा पित्त प्रतिश्यायके भी लक्षण प्रकट होते हैं। सुश्रुत कहते हैं कि रक्तज प्रतिश्यायमें नाकसे रक्त जाता है, छातीमें दर्द मालूम पड़ता है। इसके होने पर उस मनुष्यको पदार्थों की गन्धका ज्ञान नहीं होता। विशेष बात यह कि सफेद-काले और अणुके समान छोटे कृमि भी रक्तके साथ गिरते हैं। छातीमें जो विकार होता है, वह "उरःक्षत सुरस्तम्भः पूतिकर्ण कफोरसः। स कासः सज्वरोज्ञेय उरोघातः स पीनसः" के रूपका होता है! अर्थात् उरःक्षत, उरःस्तम्भ, पूतिकर्णके उपद्रवके समान छातीमें उपद्रव होते हैं। छाती कफसे भर जाती है, खाँसी और ज्वर हो आता है; पीनस होनेकेसे लक्षण भी होने लगते हैं। इससे इसकी भयानकता स्पष्ट है।

रक्तज प्रतिश्यायकी चिकित्सामें शीतल पदार्थों द्वारा लेप, नस्य, घृत आदि तैयार कर देना चाहिये। (१) भृङ्गराजपुट पाक— भांगरेके

पत्ते, काला तिल और सेंधव नमक लेकर एरण्ड पत्रमें लपेट ऊपरसे गीली मिट्टी लपेट गोला-सा कर ले और आगमें रख जब सूखने लगे, तब निकाल ले और हाथसे दबाकर उसको निचोड़ रस निकाल ले। इस पुटपाकको नित्य देते रहनेसे रक्तज प्रतिश्याय तथा अन्य प्रतिश्याय भी अच्छे होते हैं। (२) **कुरङ्ग घृत**—हिरण, कुरंग आदि जांगल्य जीवोंका मांस, तीतर-बटेर आदिका मांस लेकर मांससे अठगुने दूध और चौगुने पानीमें क्वाथ करे। मांससे चतुर्थांश घी लेकर घृतपाक करे। पाक करते समय वातनाशक औषधियों और इलायची, तेजपात्र, दालचीनी, कपूर, कंकोल, अगरु, कुंकुम, नागकेसर, लौंग, अनन्तमूल कमलपुष्प, कुमुदिनी पुष्प, लालचन्दन, आदिका कल्क डाले। और नस्य में लेप का प्रयोग करे, अथवा इन औषधियों और मांस आदिको अठगुने दूध और चौगुने पानीमें डाल पकावे। दूध शेष रहने पर उसे जमा देवे। फिर उसे मथकर मक्खन निकाल ले। इस मक्खनका घी नस्यके लिये काममें लावे। तिल तैलमें भी इसी प्रकार तैल पाक कर सकते हैं। यह नस्य रक्तजप्रतिश्याय तथा अन्य सब प्रतिश्यायोंके लिये हितकारी है। (३) रक्तजप्रतिश्यायमें कृमि पड़ जानेकी सम्भावना रहती है। यदि कृमि पड़ गये हों तो कृमिनाशक शिरोरोग कथित चिकित्सा करे। **गोमूत्र नस्य**—गोमूत्र और गोपित्तमें कृमिघ्न औषधि पीस छान कर नस्य देवे। अन्य प्रतिश्यायोंके पुराने हो जाने पर भी कृमि पड़नेकी सम्भावना रहती है, उस समय भी ऐसा ही उपाय करे। (४) माथेके पासकी सरेरूकी फस्द खुलवावे। पानी पीते समय उन्नाबका शर्बत मिलाकर पीवे। खसखसका शर्बत भी लाभकारी होता है। (५) पित्तनाशक धूनी देवे। **शैलेय धूनी**—बालछड़, चन्दरस और अगरुकी धूनी देवे। (६) **बाबूनास्वेद**—बाबूना, नाखूना और दौना मरुवाका काढ़ा कर बफारा लेवे। इससे रक्तका गाढ़ापन दूर होता है और उसकी गांठ नहीं बनने पाती।

दुष्टप्रतिश्याय—प्रतिश्याय होने पर तुरन्त उसका उपाय करना आवश्यक है। अन्यथा कोई भी प्रतिश्याय हो पुराना होने और लापरवाही होनेसे दुष्टप्रतिश्याय हो जाता है। दुष्टप्रतिश्यायमें प्रतिश्यायके लक्षण अधिक उग्रताके साथ उपस्थित होते हैं, अतएव इसमें सभी इन्द्रियोंको त्रास पहुँचता है। इसके लक्षणोंके सम्बन्धमें लिखा है।

> साग्निसाद ज्वर-श्वास-कासोरः पार्श्ववेदनः।
> कुप्यत्यकस्माद्बहुशो मुख दौर्गन्ध्य शोफकृत्॥
> नासिका क्लेद संशोष शुद्धिरोध करो मुहुः।
> पूयोपमा सिता रक्त ग्रथिता श्लेष्म संस्रुतिः॥
> मूर्छन्तिचात्र कृमयो दीर्घस्निग्धसितारणवः

अर्थात दुष्टप्रतिश्याय होनेपर अग्निमांद्य हो जाता है, ज्वर-श्वास खाँसीके साथ छाती और अंशफलकोंमें दर्द होता है। मुँहसे दुर्गन्धि निकलती है, मुँह कुछ सूखा हुआ मालूम पड़ता है। कभी-कभी बिना कारण प्रतिश्यायका वेग बढ़ जाता है। कभी नाक सूख जाती है और कभी गीली होकर कफ गिरने लगता है। कभी नाक सट जाती है और कभी खुल जाती है। नाकसे जो कफ निकलता है वह मवादके समान काला, लाल, गांठादार आता है। उस कफके साथ लम्बे-चिकने और सफेद छोटे-छोटे कृमि होते हैं। ऐसा दुष्ट प्रतिश्याय कठिनाईसे अच्छा होता है। इसी तरह सभी प्रतिश्याय तुरन्त प्रतिकार न करनेसे अनेक रोगोंको उत्पन्न करते हैं, विशेषकर दुष्ट पीनस हो जाता है। चरकाचार्यके मतसे इसमें बारम्बार छींकें आती हैं, नाक सूखना, प्रतीनाह, परिस्रव, अपीनस, नासापाक, नासार्बुद, पूयरक्त आदि नाककी अन्य व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। मुँह और नाकसे दुर्गन्धि निकलती है। नाकके भीतर फुँसियाँ पड़ जाती हैं। यही नहीं शिरोरोग, कर्णरोग और नेत्ररोग भी हो जाते हैं। नाकसे मवाद आने लगती है, शिरमें गञ्ज हो जाता है, सिरके बाल झड़ने लगते हैं। बालोंका रङ्ग भूरा या

सफेद होने लगता है। प्यास बहुत लगती है। ज्वर-श्वास-कासके अतिरिक्त रक्तपित्त, स्वरभेद और शोषरोग हो जाता है। नाकमें व्रण या घाव हो जाता है। बारम्बार जुकाम हो जाता है।

दुष्टप्रतिश्यायमें त्रिदोषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये (१) त्र्योषादिवर्तिका—सोंठ, मिर्च, पीपर, एरण्ड, वायविडंग, देवदारु, कालाअतीस, कड़ुवा कूट, इङ्गुदीफलकी मींगी, बड़ी भटकटैयाके बीज, निशोथ, सरसों, सड़ी हुई मछली, अग्निमंथके फूल, पीलूके फल, सहिजनके बीज, घोड़ेकी लीदका रस और घोड़ेका मूत्र तथा हाथीका मूत्र लेकर सबको एक साथ पीस उनके पुराने टाटमें लपेट कर बत्ती बनावे। इस बत्तीका धुआँ नाकमें खींचे और मुँहसे भी धूम्रपान करे। (२) चित्रक हरीतकी—चित्रकमूल, आँवले, गुर्च, दशमूल (बेलकी छाल, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला, काश्मरी, सरिवन, पिठवन, छोटी भटकटैया, बड़ी भटकटैया, गोखरू), रूसकी छाल प्रत्येकका रस सौ-सौ तोले, लेकर उसमें हर्रका चूर्ण ६४ तोले मिलावे। फिर १०० तोले गुड़ मिलाकर चूल्हेमें चढ़ा पाक करे। यदि ऊपर लिखी औषधियोंका रस न हो तो उक्त औषधियाँ प्रत्येक सवा-सवा सेर लेकर एक मन पानीमें पका कर चतुर्थांश काथ करले। ऐसी दशामें गुड़ ५ सेर तक डाले। जब पाक गाढ़ा हो जाय और कलछीमें लपटने लगे तब उसमें सोंठ, मिर्च, पीपर, दो-दो तोले, इलायचीके दाना, दालचीनी, तेजपात दो-दो तोला, अपामार्गक्षार या जवाखार आधातोला, लौंग, अकरकरा, आमा-हल्दी, ककड़ासिंगी, पिपरामूल, मुलेठी, रसवत, वंशलोचन प्रत्येक चार-चार तोले लेकर कूट कपड़ छानकर पाकमें मिलावे। फिर उतारकर उसमें सवा सेर मधु डालकर रखदे। यह चित्रक हरीतकी अवलेह जठराग्निकी शक्तिके अनुसार आधे तोलेसे ४ तोले तक खावे। यह उत्तम रसायन है। इसके सेवनसे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, क्षय, खांसी, कठिन पीनस, कृमि, गुल्म, उदावर्त, अर्श और

होता है। इसके सेवनसे नाक तथा श्वास नलिकाके रोग, वान्ति, प्रतिश्याय, शिरोवेदना, उरःक्षत, मन्दाग्नि, कोष्ठवद्ध, कफविकार और मस्तिष्कविकार दूर होते हैं। योगरत्नावलीके पाठके अनुसार दशमूल सब मिलकर १०० तोले चाहिये। अतएव दशमूलकी वस्तुएँ दश-दश तोले लेवे।

मल संचय प्रतिश्याय—पाँच प्रकारके प्रतिश्यायके अतिरिक्त दुष्ट प्रतिश्यायका भी वर्णन ऊपर हो चुका है। रसरत्नसमुच्चयकारने मलसंचयजनित प्रतिश्यायका उल्लेख किया है; किन्तु उसके लक्षण आदि नहीं लिखे। जिन मनुष्योंको अक्सर बाहर आना-जाना पड़ता है और इधर-उधर का पानी पीना पड़ता है उनके वात-पित्तादिक दोष दुर्जलजलके कारण दूषित हो जाते हैं। यही नहीं खानेकी गड़बड़ी, विषमासन आदिसे शरीरमें मलका संचय होता है, पायखाना साफ न होनेसे आँतोंमें मल संचित होता है, मन्दाग्निके कारण रस परिपाक न होनेसे आम दोष ऊर्ध्वगामी होकर घ्राणाश्रित और मस्तिष्कके आश्रित हो जाता है। घाणस्रोतस सट जाते हैं, माथा भारी रहता है। ऐसी दशामें उन्हें बारम्बार जुखाम हो जाया करता है। भीतर मलकी गर्मी रहती ही है, यदि बाहरसे भी दिमागमें गर्मी पहुँचे और वहाँके विकृत अंशको टिघलाकर मथे तो स्वभावतः वह विकार बाहर आनेका प्रयत्न करेगा। अतएव जुखाम होकर नाकके द्वारा या नजला होकर गलेके द्वारा बाहर होगा। अधिक गरम जलमें स्नान करने, हम्माममें अधिक देर तक नहाने या धूपमें अधिक देर तक फिरनेसे भी संचित मल परितप्त होकर बाहर निकलनेका प्रयत्न करता है। इस प्रकार विकार निकलने पर भी कोष्ठ परिष्कार न होनेके कारण फिर भी आम अंश ऊर्ध्वमामी हो वहाँ पहुँच जाता है। इसीलिये बारम्बर जुखाम होता है। ऐसी दशामें आँखोंमें कुछ लाली और जलन रहती

है, नाकमें भी खुजली और जलन मालूम पड़ती है। अधिक दानेसे ज्वर भी आजाता है।

मलसंचयजनित प्रतिश्यायमें यह आवश्यक है कि मुलायम स्निग्ध पदार्थों के द्वारा जुलाब देकर पेट साफ करे। (१) शतपत्रि विरेचन—दो तोला गुलकन्द और दो तोला अमिलतासका आध पाव गुलाब जल या मकोयके अर्कमें रातको भिगो दे और उसे मल छानकर पीवे। अच्छा हो कि इसके पहले दिन रातमें डालकर मूंगकी दालकी खिचड़ी खावे। बीच-बीचमें इसी प्रकार साफ करता रहे। अथवा दो तोला त्रिफला चूर्ण रातमें कुन पानीसे ले लिया करे। इससे विकृत दोषोंका ऊर्ध्वगामी होना होगा। साथ ही अग्निवर्धक उपाय भी करता रहे जिससे पाचनशक्ति कमी न रहे। जब अन्नका परिपाक ठीकसे होगा तब मलपरिष्कार अवश्य होगा। (२) जिन लोगोंको खुजली हो जाया करती है, उन भी पेट साफ नहीं रहता और उन्हें भी प्रायः जुखाम हो जाया कर है। मलकी गर्मीसे ऐसे लोगोंमें खुश्की भी रहती है। ऐसी खुश्की दूर करनेके लिये बनफशा बिन्दु—बनफशा, गुलनीरोफ़र और कद्दू का तेल नाकमें डाले। (३) कपूरधूनी—यदि नाक बहती हो अथ कफ आता हो और उसे बन्द करना चाहे तो एक कांचका आगकी चिनगारी पर रख दें और उस पर थोड़ा पिसा कपूर डा दें। कपूरका जो धुआँ उठे उसे नाकसे खींचकर ऊपर चढ़ावें। क शीतवीर्य है। वह उष्ण विकारोंको सुखाकर जमा देता है और जो दो टिघल कर बहा करते हैं वे जम जानेके कारण बन्द हो जाते हैं अथवा गेहूँके चोकरको सिरकेमें सानकर आग पर रख नाकसे धुआं खींचे। (४) यदि श्लेष्मा सूख गया हो तो उसे ढीला करना आवश्यक है। ऐसी दशामें ह्रीवेरक्काथ, उन्नाब, लसोढ़ा, बनफशा और खसखस दानोंका काढ़ा मिश्री डालकर पिलावे। इसी तरह इन्हीं औषधियों

डालकर यवागू बनावे और उसे खिलावे। खानेके लिये जौका दलिया दे। दलिया पकते समय उक्त औषधियोंकी पोटली उसमें छोड़ दे। तीन चार दिनों तक यही यवागू और दलिया खानेको दे। मूंगकी दाल पालकका साग अथवा पालकके सागमें मूंगकी दाल डालकर शाक बनावे और खिलावे। गेहूँका चोकर पानीमें भिगाकर मलकर छान ले। उसी सफेद छने पानीमें कतीरा और बादामका तेल तथा चीनी डाल पकाकर पिलावे। **बनफशा विरेचन**—(५) गुलबनफशा, उन्नाब, लसोढ़ा, खतमीकी जड़, खतमीके बीज और शीरखिस्तका काढ़ाकर उसमें गुलकन्द मिलाकर पीवे तो पायखाना साफ हो जाया करेगा। (६) गलेमें दोष उतरना रोकनेके लिये मसूर, अनारदाना, खसखसके बीज, पोस्ताके ढोढ़े पानीमें औटाकर उसीसे कुल्ले करावे। (७) घ्राणास्थित और मस्तिष्क जनितमल निकालनेके लिये एक तोला मुनक्का बीज निकालकर और एक तोला अंजीर, एक तोला आलू-बुखारा लेकर आध सेर पानीमें पकावे और उसमें अमिलतासका गूदा तथा हकीमी दवा तुरंजबीन मिलाकर पिलावे।

अपक्क प्रतिश्याय—प्रतिश्याय होते ही वह नया रहता है उसे अपक्क प्रतिश्याय कहते हैं। प्रतिश्यायकी अपक्कावस्थामें शिर भारी रहता है, भोजनकी इच्छा नहीं होती, नाक बहा करती है, स्वर पतला तथा छोटा हो जाता है, रोगी अपनेको दुर्बल समझता है, वह बार-बार थूकता है।

> शिरो गुरुत्व मरुचिर्नासा स्रावस्तनुस्वरः
> क्षामःष्ठीवनि चाभीक्ष्ण मामपीनस लक्षणम् ॥

जब प्रतिश्याय या पीनस अपक्कावस्थामें रहता है, तब खान-पान और औषधिमें बहुत सावधानी रखनी चाहिये। यदि उष्णोपचारसे उसे सुखानेका प्रयत्न किया जायगा तो वह सूखकर अधिक बेचैनी और शिर तथा कपालमें दर्द पैदा कर देगा। यदि शीतोपचार किया

जाय तो वह अधिक बढ़ जायगा। अतएव ऐसी अवस्थामें मूंगकी दाल, रोटी, यवागू आदि हल्का भोजन करे (१) द्राक्षादिकाथ—मुनक्का, गुलबनफशा, मुलेठी, उन्नाब, लसोढ़ा और कलीमिर्च तथा मिश्री या बताशा डाल कर दोनों समय काढ़ा पीवे। इससे जुखाम पक कर झड़ जावेगा और कष्ट नहीं होगा। (२) शिरमें तेलकी मालिश करे, पसीना निकालने के लिये ऊपर का काढ़ा पीकर कपड़े ओढ़ लेटा रहे, नस्य लेकर छींक आने दे, गरम ताजा स्निग्ध भोजन करे। स्निग्ध औषधि पीकर वमन करे। गरम पानीमें नमक और घी मिलाकर पीवे। (३) बनफशास्वेद—बनफशा, बाबूना, खतमी, काहूके पत्ते, और पोस्तेके ढोढ़े डाल पानी गरम करें; उसी गरम पानी वाले पात्रको रख इस प्रकार कपड़े ओढ़ कर बैठे कि उसकी भाफ खुले शरीर में लगे। जिससे चमड़ा नरम पड़ कर रोमरन्ध्र खुल जावेंगे और पसीना निकल कर शरीर हल्का हो जावेगा। इससे मल सूखने नहीं पाता। (४) तबियतको नरम और हल्की करनेके लिये मधुयष्ठी क्वाथ—मुलहठी, जूफा और अंजीर पानीमें पका कर काढ़ा करे और हकीमी दवा तुरञ्जबीन मिला कर पीवे। (५) खानेके लिये गेहूँ का चोकर और बादामकी गिरी डाल पकावे और उसीको मण्डके समान तैयार कर शहद मिलाकर देवे। (६) कच्चापानी न पीवे उबालकर ठण्डाकर पीवे। (७) शतपुष्पास्वेद—सोया, बाबूना, कैसून (हकीमी दवा) नाखूना (नख) और नींबूकीसी महक वाली घास (मूञ्जकीसी पत्ती वाला सुगन्ध तृण) पकाकर पिलावे और इसीका बफारा दे (८) शर्कराधूनी—लाल शक्कर, कागज, बालछड़, राई, चन्दरस और गूगल जलाकर धूनी देवे। इससे दोष पक कर निकल जाते और प्रतिश्याय आराम हो जाता है। त्र्यूषणलेह—(९) सोंठ, मिर्च, पीपल, नकछिकनी, सहिंजनके बीज, जाम्बीरी नींबूके रसके साथ खावे। इससे अपक्व प्रतिश्यायका तुरन्त परिपाक होता है। विशेषकर

कफात्मक प्रतिश्याय शीघ्र पकता है। प्रतिश्याय पक जाने पर शिरोविरेचन द्वारा उसे निकाल दे। नवीन प्रतिश्यायको पकानेके लिये स्वेदन करना हितकारी है। शीत वीर्य पदार्थ और अम्ल पदार्थोंका भोजन लाभदायक होता है। दूधमें सोंठ डालकर क्षीर पाक करे और इसमें गुड़ या मिश्री डाल कर पीवे अथवा दूधमें अदरखका रस डाल गुड़ या चीनी मिला कर पीवे। ग्राम्यजीवोंका मांस, दही, मद्य, उड़द, कुलफी, सेंधानमक, खट्टा अनार, कच्ची मूली प्रतिश्याय पकानेके लिये ले सकते हैं। किन्तु ग्राम्यजीवोंके मांससे लेकर इधरकी वस्तुएँ जहाँ तक बने न ले।

पक्व प्रतिश्याय—यदि प्रतिश्यायको छेड़ा न जाय और ऊपर लिखे उपायोंसे उसे उचित रीतिपर पका लिया जाय तो थोड़े उपचार और चिकित्सासे ही वह आराम हो जाता है। यदि उचित रीतिसे प्रतिश्याय पक जाय तो श्लेष्मा गाढ़ा होकर स्रोतसोंमें निमज्जति हो जाता है। गला साफ हो जाता, आवाज खुल जाती, शरीरकी रङ्गत साफ हो जाती है।

आम लिंगान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति।
स्वर वर्ण विशुद्धिश्च पक्वपीनस लक्षणम्॥

जब प्रतिश्याय पक जाय तब शिरोविरेचन, शिरमें तैल मर्दन, शिरस्वेद, नस्य आदि उपायसे उसे निकाले। ऐसे अवसर पर कटु और अम्लरस विशिष्ट पदार्थोंका भोजन करे। घृत पानकर वमन करे। **पिप्पल्यादि शिरो विरेचन**—शिरोविरेचनमें पिप्पली, वायविडंग, अपामार्ग, शिग्रुबीज, सरसों आदि तीक्ष्णद्रव्य रखे। फलादिछर्दन—मैनफल, मुलेठी, कड़ूलौकी, कड़ूनीम, कड़ूकुन्दरु, इन्द्रायण, कड़ुवा खीरा, कुरैयाकी छाल, मूर्वा, वन्दाल, वायविडंग, जलबेत, चीता, मूषाकानी, कड़ू तरोई, कड़ूनेनुआँ, करंज, पिप्पली, सैंन्धव, घोड़वच, इलायची और सरसों ये छर्दनवर्गकी औषधियाँ हैं। इनसे सिद्ध किया हुआ घी

निजानेसे अथवा गरम पानीसे इनमेंसे कोई वस्तु उतारनेसे कय होगी। भोजनके बाद तुरन्त गरम-गरम उड़दकी घुंगनी नमक मिलाकर खावे तो पका हुआ जुखाम झड़ता है। इससे पुराने प्रतिश्यायमें लाभ होता है। पीनस, प्रतिश्याय और नासारोगमें यथेच्छ दही खानेका विधान है।

गुड़ मरिच विमिश्रं पीतमाशु प्रकामम्
हरति दधि नराणां पीनसं दुर्निवारम् ॥
यदि च सघृत मन्नं क्षुण्ण गोधूमवल्लैः
कृत मपहृत दोषं तत्कृतोऽस्यावकाशः

दहीमें सोंठ, मिर्च, पीपर मिला ले। भोजनमें घीका अधिक उपयोग करे और गेहूँके आटेमें घी चीनी मिलाकर मालपुवा बनाकर खावे तो पीनस रोग ठहर नहीं सकता।

जब जाने कि प्रतिश्याय पक गया है और निकलनेकी इच्छा कर रहा है तब उसे शिरोविरेचन देकर निकाल दे। विरेचन दे, आस्थापनवस्ति दे, धूम्रपान करावे और दोषानुसार कवल ग्रहण करावे। सावधानी रखे।

निवात शैयासन चेष्टनानि, मूर्ध्नो गुरुष्णं च तथैव वासः
तीक्ष्णविरेकाः शिरसः स धूमा, रूक्षं पलान्नं विजया च सेव्या

निवातस्थानमें रहे, शिरमें मोटा गरम कपड़ा बाँधे रहे, तीक्ष्ण विरेचन, शिरोविरेचन, धूम्रपान, रूखा भोजन और रातमें हरीतकी सेवन करे। स्मरण रहे कि—

शीताम्बु योषिच्छिशिरावगाह चिन्तातिरूक्षाशन वेगरोधान्
शोकं च मद्यानि नवानि चैव, विवर्जयेत् पीनसरोग जुष्टः ॥

प्रतिश्याय और पीनस रोगी ठण्डे जलका उपयोग न करे। ठण्डे पानीमें न नहावे, खासकर डुबकी मारकर शिरसे न नहावे। मैथुन, चिन्ता, क्रोध, शोक न करे, अधिक रूक्ष भोजन, मूत्र-मलादि वेगोंका

धारण न करे, नवीन मदिरा या नवीन आसव-अरिष्ट न लेवे। अन्यथा ध्यान न देनेसे प्रतिश्यायके साथ कई उपद्रव खड़े हो जाते हैं—

छर्द्य ङ्गसाद ज्वर गौरवार्त मरोचकारत्यतिसार युक्तम्।
विलङ्घनैः पाचन दीपनीयै रुपाचरेत् पीनसिनं यथावत्॥

वान्ति, शरीरका टूटना, शरीर शिथिल होना, ज्वर, शरीरका भारी होना, भोजनमें इच्छा न होना, पतले दस्त आना आदि विकार हो जाते हैं। इसलिये इन उपद्रवोंको न होने देने के लिये पहलेसे ही रोगी लंघन करे, पाचन और दीपन औषधि तथा अन्न-पानकी योजना करे। उपद्रव होने पर भी इसी प्रकारके उपायसे उन्हें जीते। वात-कफ वाले रोगीके वान्तिमें बहुत द्रव निकलता है। उपद्रव शान्तकर प्रतिश्यायके यथादोष यथावश्यक चिकित्सा कर उन्हें जीते और स्वास्थ्य सम्पादन करें।

भ्रूकुटितोद—यदि प्रतिश्याय हो रहा हो अथवा हो गया हो और अपक्वावस्थामें हो, उस समय यदि चाय या काफी पीकर अथवा उष्ण आहार-विहार कर उसे रोक दिया जाय तो उठते हुए विकार वहीं सूखकर विकार उत्पन्न करते हैं। ऐसी दशामें ललाटके बीच दोनों भौहोंके मध्य कभी-कभी दोनों भौहोंके ऊपर और कभी एक ही भौंहके ऊपर चुभनेकी-सी पीड़ा होती है। जब दूषित परमाणु उष्णताके कारण ऊर्ध्वगामी हों और चमड़ेकी मोटाईके कारण अथवा रोमांच होनेके कारण पसीनेके द्वारा नहीं निकल पाते तब घ्राण तथा भ्रूकुटिके मध्य अवरुद्ध हो विकार उत्पन्न करते हैं। जुखामकी अवस्थामें ठण्डे पानीसे नहाने या ठण्डी हवामें घूमनेसे भी ऐसा हो जाता है। भ्रूकुटितोदमें चुभनेके साथ ऐसा दर्द होता है कि पलक उठाकर देखा नहीं जा सकता। रोगी औंधा पड़े रहनेका प्रयत्न करता है, आंखका घुमाना कठिन होता है। दर्दसे ऐसा मालूम पड़ता है कि माथा फटाजा रहा है।

ऐसी स्थितिमें इस बातका प्रयत्न करे कि नाकसे कुछ रक्त निकल जाय। किसी खुरदरी चोजसे नाक खुजलानेसे नकसीर फूट सकती है। छींक लानेका प्रयत्न करे। नरसारनस्य नौसादर और चूना अथवा केसर और घी सूंघे। सिरका और कपूर सूंघे। पिण्डलियों और तलुओंको मले, खाँड और सिरका खानेको देवे; और यवागू बनाकर पिलावे। यदि कड़ी धूपमें घूमनेके बाद बिना ठण्डा हुए सिर खोल दिया जाय और गर्मीसे आकर तुरन्त सिर पर पानी डालकर सिर धो डाले तो रोमरन्ध्र बन्द हो जानेसे जुकामकी-सी दशा उपस्थित होती है। यदि जुखाम हुआ तो सिरमें दर्द होने लगता है। यह दर्द सूर्यावर्तके समान होता है। सूर्योदयके पश्चात ज्यों-ज्यों सूर्य चढ़ता है त्यों-त्यों दर्द भी बढ़ता और सूर्यास्त होने पर बन्द हो जाता है। ऐसी दशामें तेलमें कपूर घिसकर नाकमें डाले। दूधमें घी डालकर पीवे। **प्रवालयोग**—प्रवालभस्म, यशदभस्म और शुक्तिभस्म एक-एक रत्ती लेकर ६ कालीमिर्च, एक तोला मिश्री और दो तोला गायका घी मिलाकर सबेरे चाटे। इससे दोनों प्रकारका भृकुटितोद आराम होता है।

मस्तिष्कतोद—प्रतिश्याय उत्पन्न होनेके कारण उपस्थित होने पर गरम, विदाही और वातकारक पदार्थ खानेसे ऊष्माके साथ विकृत दोष ऊर्ध्वगामी होकर मस्तिष्ककी ओर गमन करते हैं; वहाँ जलन और खुजली पैदा करते हैं। यदि दोष पतले हों और पसीना होकर निकल जावें तो तर और हल्की खुजली होती है। यदि दोष गाढ़े और शुष्क हों तो सूखी खुजली उत्पन्न करते हैं। जलन और खुजली के साथ ऐसा मालूम होता है मानों दिमागमें कोई काँटा चुभा रहा है अथवा चाबुकसे कांच रहा है। ऐसी दशामें प्रकृतिमें तरी लानेका प्रयत्न करे। दूधको फाड़कर वही पानी पीनेको देवे। अथवा दहीके तोड़ या मट्ठे-के पानीमें इसबगोलका लुआब तथा खसखसका शर्बत या बनफसेका शर्बत मिलाकर पिलावे। तरबूजका पानी अथवा लम्बे घियाका पानी

देवे। बकरीके दूधमें चीनी मिलाकर पिलावे। यवागूके साथ काहू और पालक पकाकर खिलावे। पर्पटहिम—पित्तपापड़ाके हिममें चीनी मिला कर पिलावे। ऐसा प्रयत्न करे कि दोष पेशाब और पसीनेके द्वारा निकल जावें। शिरमें चन्दनादि तैल या कद्दू का तेल लगावे। कुमारीलेह—घीकुआरका गूदा घी चीनीके साथ हलुआकी तरह तैयारकर खिलावे। इससे दर्द दूर हो जायगा।

पीनस

विवरण—नासागत रोगोंमें पीनस एक प्रधान रोग है। यह स्वतन्त्र रूपसे भी होता है और जुखाम बिगड़ कर दुष्ट प्रतिश्यायके बाद भी पीनस रोग हो जाता है। कहीं-कहीं प्रतिश्याय और पीनस समान अर्थमें भी व्यवहृत होते हैं। अर्थात नया जुखाम प्रतिश्याय है; किन्तु वही जब बार-बार होता है और दुष्ट प्रतिश्याय होने पर गन्ध ज्ञान नष्ट हो जाता है और नाकसे दुर्गन्धि आने लगती है तब उसे पीनस कहते हैं। किन्तु यह लक्षण भी सर्वत्र नहीं लगता। पीनसमें नासामें कृमिकी उत्पत्ति हो जाती है। जब अधिक दिनोंका सपूय नासाविकार होता है और उचित चिकित्सा नहीं होती तथा नाककी सफाई नहीं होती तब नाकमें कृमि पड़नेकी सम्भावना रहती है। किन्तु यदि औषधि होती रहे और नाककी सफाई भी रहे तो कृमि नहीं भी पड़ते। यदि नासिकामें कोई बाहरी वस्तु पड़ जाय और वह वहीं पड़ी रहे तो वह वहाँ सड़ने लगती है इससे भी नाकसे दुर्गन्धि आती है और वहाँ कृमि पड़ने की भी सम्भावना रहती है। इसी तरह नाकमें कोई अर्बुद उत्पन्न होनेसे भी नाकमें अवरोध होकर दुर्गन्धि आने लगेगी। किन्तु पीनसमें रसोंकी गन्धका ज्ञान न होना प्रधान रूपसे होता है। भावप्रकाशमें लिखा हुआ है।

आनह्यते शुष्यति यस्य नाशा प्रक्लेद मायाति तु धूप्यते च।
न वेत्ति यो गन्ध रसाँश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येदिह पीनसेन
तं चानिलश्लेष्म भवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्याय समान लिङ्गम् ॥

अर्थात श्वासके कारण कफ सूख जानेसे साँस रुकावटके साथ आवे; नाकके छिद्र बन्दसे हो जावें, कभी नासापुट गीले रहें और कभी गरम मालूम पड़ने लगें, पदार्थोंकी गन्ध जाननेकी घ्राणशक्ति और रस जाननेकी आस्वाद शक्ति नष्ट हो जाय क्योंकि पीनस उत्पन्न करनेवाले दोषोंके द्वारा जिह्वा भी दूषित हो जाती है, नाकमें कृमि पड़ जायँ, उसे पीनस रोग कहते हैं। पीनसकी अपक्वावस्थामें शिरमें भारीपन रहता है, भोजनमें अरुचि रहती है, नाकसे पतला पानी-सा बहता रहता है, स्वर क्षीण हो जाता है। किन्तु जब पीनस पक्वावस्थामें आजाता है तब कफ गाढ़ा हो जाता है, नासापुटसे वह विलीन हो जाता है, जिससे स्वर साफ हो जाता है तथापि अपक्वावस्थाके कुछ लक्षण मौजूद रहते हैं। पीनस रोगके लक्षण डाक्टरीके Atrophic Rhinitis से मिलते जुलते हैं।

पीनस और अपीनस शब्द पर शास्त्रकारोंमें मतभेद है। 'कोई रोग को पीनस कहता है कोई अपीनस। भाव प्रकाशने सुश्रुतके लक्षणको थोड़ा अन्तर कर ज्योंका त्यों उद्धृत कर दिया है और सुश्रुत जब उस लक्षणके रोगको अपीनस कहते हैं तब भावमिश्र उसे ही पीनस कहते हैं। अपीनस सम्बन्धी सुश्रुतका वचन नीचे लिखे अनुसार है।

आनह्यते यस्य विधूप्यते च पापच्यते क्लिद्यति चापिनासा
न वेत्ति यो गन्धा रसांश्च जन्तु र्जुष्टं व्यवस्येत्तमपीनसेन
तं चानिल श्लेष्म भवं विकारं ब्रूयात् प्रतिश्याय समानलिंगम् ॥

चरकाचार्य भी इसीसे मिलता जुलता वर्णन देते हैं। हमारी समझ

में पीनस और अपीनस में कुछ अन्तर होना चाहिये। नामसे ही मालूम पड़ता है कि जो पीनस नहीं है वह अपीनस है। अपीनस प्रतिश्यायका समान लक्षण वाला है और उसमें वात और कफका विकार मुख्य होता है। पीनसकी अपेक्षा अपीनस स्वतन्त्र होना चाहिये। बिगड़े हुए जुखामसे पीनस होता है और उसमें नाकसे मवाद आना और कृमि पड़ना सम्भव है। आचार्य कार्तिकने अपीनसका जो लक्षण दिया है वह हमें अधिक सयुक्तिक प्रतीत होता है—

> मस्तुलुङ्गोचितः श्लेष्मा यदा पित्ताद्विदह्यते।
> तदाऽसृक्पिच्छिलं नासा बहुसिंहाणकंस्रवेत्
> स कण्डू दाह पाके च तं तु विद्यादपीनसम्॥'

अर्थात मस्तिष्क स्थित श्लेष्मा जब पित्तसे विदग्ध हो जाता है तब रक्तमिश्रित पिच्छिल नाकका कफ अधिकतासे निकलता है। उससे नाकमें खुजली होती है, जलन होती है और नाक पक भी जाती है, उसे अपीनस कहते हैं। इसमें नाकसे मवाद आना अथवा कृमि पड़ना आवश्यक नहीं माना। जैनग्रन्थ "कल्याणकारक" भी हमारे इस विचारका समर्थन करता है।

> विदाह धूमायन शोषण द्रवै र्न वेत्ति नासागत गन्धजातकम्
> कफानिलोत्थोत्तम पीनसामयं विशोधये द्वात कफघ्न भेषजैः॥

इसमें नाकमें जलन और धुएँके समान निकलना, नाक सूख जाना, नाकसे द्रव निकलना, गन्ध-ज्ञान कम हो जाना माना है। वायु और कफविकार माना है और उन्हींको नष्ट करनेकी सलाह दी है। अपीनस-में प्रतिश्यायके समान लक्षण होते हैं। इसके विपरीत पीनस प्रतिश्याय-का ही विकृत रूप है। साधारणतः प्रतिश्याय और पीनस समानअर्थवाची एक पर्याय है। आचार्य गंगाधरने चरककी टीकामें लिखा है "प्रतिश्याय पीनसावेक पर्यायौ" आचार्य सुश्रुत और चरक दोनों अपीनसको

"अनिलश्लेष्म भवं विकारं" माना है। किन्तु पीनस प्रतिश्यायका बिगड़ा हुआ दुष्टप्रतिश्याय सम्भवरोग है, अतएव इसमें कुछ अधिक जटिलता होनी चाहिये। अपीनसके समान पीनसमें भी वातदोषसे स्रोतसोंका संकोच होकर आनाह होना चाहिये अर्थात् नासारन्ध्रमें रुकावट पड़नी चाहिये। पित्तके दोषसे उसमें सन्ताप (विधूप्यते) होना चाहिये। इसी तरह श्लेष्माके दोषसे नासामें क्लिन्नभाव होना चाहिये। प्रतिश्याय वातश्लैष्मिक है और अपीनस प्रतिश्याय समान लक्षण वाला है। इसीलिये वातश्लेष्म विकारका उल्लेख हुआ है।

वाग्भटाचार्य अपीनसको अवीनस लिखकर एक तीसरे मार्गका अनुसरण करते हैं। उनका तर्क है कि इस रोग में जिस प्रकार अवि अर्थात भेड़ीके नाक निकला करती है, नाक कफसे भरी रहती है और नाकमें गाढ़ा कफ लटकता रहता है, इसलिये इसे अवीनस कहना अधिक सयुक्तिक है। वे लिखते हैं।

कफः प्रवृद्धो नासायां रुध्वा स्रोतांस्यवीनसम्
कुर्यात् स घुर्घुरं श्वासं पीनसाधिक वेदनम्।
अवेरिव स्रवेत्यस्य प्रक्लिन्ना तेन नासिका।
अजस्रं पिच्छिलं शीतं पक्वं सिंघाणकं घनम्॥

अर्थात नाकमें कफ बढ़कर नासास्रोतको रोक देता है और अवीनस नामक रोग उत्पन्न करता है। श्वासमें घुरघुर शब्द सुनाई पड़ता और पीनसकी अपेक्षा इसमें अधिक वेदना या कष्ट होता है। नाक सदा कफसे भरी और भेड़ीकी नाककी तरह कफका भाग लटकता हुआ गिरनेकी तैयारीमें रहता है। वह कफ पिच्छिल, शीत और पका हुआ रहता है। भेड़ीके समान कफ जाता है इसलिये इस रोगको आचार्य वाग्भट अपीनसके बदले अवीनस कहना सयुक्तिक समझते हैं। जो हो, शास्त्रीय विचारमें अपीनस प्रतिश्यायके समान चिन्ह वाला है अवीनस स्पष्ट ही है और पीनस यद्यपि प्रतिश्यायका पर्यायवाची है तथापि

साधारण बोलचालमें प्रतिश्यायको जुखाम कहते हैं और पीनस उस परिस्थितिको कहते हैं, जब स्वरभेद होकर नाकसे मवाद जाने लगे और उसमें कृमिकी भी सम्भावना हो जाय। अर्थात दुष्टप्रतिश्यायके समान जब प्रतिश्यायकी विकृति हो जाती है तब उसे पीनस नामसे सम्बोधित करते हैं। भाव मिश्रने अपनी टीकामें लिखा है कि यद्यपि पीनस और अपीनस दोनों शब्द हैं तथापि 'अवाप्योस्तं सनद्धादिषुवेति' सूत्रसे विकल्प करके "अ" कार लोप हो जाता है। इस पीनस और अपीनसको उन्होंने एक ही माना है।

चिकित्सा—(१) सब प्रकारके पीनस रोगमें पहला आवश्यक कर्तव्य यह है कि ऐसे स्थानमें रहे जहाँ खुली झपाटेकी हवा न आती हो। स्नेहपान करना, स्वेदन कर पसीना निकलना, वमन, धूम्रपान, कवल धारण करना, कुल्ले करना, भारी और उष्णता उत्पन्न करने वाले कपड़े पहनना और विशेषकर शिर पर मोटा साफा बाँधना आवश्यक है। (२) **अग्निमन्थनस्य**—खुरासानी अजवाइन, अग्निमन्थ, वच, जीरा और कलौंजीकी पोटली बनाकर उसे गरम तवेपर सेंककर सूंघे (३) **व्योषादिवटीका**—सेवन करे। सोंठ, मिर्च, पीपल, तालीसपत्र, चव्य, तिन्तडीक, अम्लवेत, चित्रक, और जीरा आठ-आठ तोले तथा दालचीनी, इलायची और तेजपात दो-दो तोले लेकर सबका कपड़छान चूर्ण कर २०० तोले पुराने गुड़का पाक कर गोलियाँ बना ले। इन्हें मुँहमें रख कर चूसा करे। इससे सब प्रकारके जुखाम, श्वास, और खाँसीका नाश होता है तथा भोजनमें रुचि बढ़ती और स्वर खुल कर अच्छी आवाज आने लगती है। (४) **शताव्हानस्य**—सौंफ, दालचीनी, बरियारीकी जड़, श्योनाक, एरण्डकी जड़, बेलकी छाल और अमिलतासका गूदा पीसकर उसमें चरबी, घी और मोम सानकर एक मिट्टीकी परई पर रख आगमें उसे गरम कर उसीका धुआँ लेवे। परईके ऊपर एक और परई औंधा दे जिसके बीचमें छेद हो। उस छेदमें

एक सछिद्र नली लगाकर उसका एक सिरा नाकमें लगाकर धुआँ लेवे। (५) सभी प्रकारके पीनस रोगोंमें सदैव गुड़, मिर्च और दही खाना हितकारी होता है (६) कटफलादिचूर्ण—कायफल, पोहकर-मूल, ककड़ासिंगी, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवासाका जड़ और सोवा लेकर इसका चूर्ण अदरखके रससे चाटे अथवा इनका काढ़ाकर अदरखका रस मिलाकर पीवे। यह कटफलादि पीनस, स्वरभेद, तमकश्वास, हलीमक, सन्निपात, कफ, खाँसी, ज्वर और श्वास रोगमें लाभदायक है। (७) शक्रबीजनस्य—इन्द्रजव, हींग, कालीमिर्च, लाख, तुलसीके बीज या पत्ते, कायफल, कड़ुवाकूट, बच, सहिजन और वायविडगका चूर्णकर अवपीडकनस्य लेवे। यह पीनस विकारोंमें उत्तम है। जब नस्यकी दवाइयाँ सिलपर पीसकर उनका रस कपड़ेमें छान उस स्वरसको नासापुटोंमें डालते हैं तब उसे अवपीड़कनस्य कहते हैं। (८) व्याघ्रीतैल -भटकटैयाकी जड़, दन्ती, घोड़वच, सहिजन, तुलसी, सोंठ, मिर्च, पीपर और सेंधानमक सब एक-एक तोला लेकर आधसेर सरसोंके तेलमें पाक करले। इसे नासिकामें डालते रहनेसे पीनस रोग नष्ट होता है। (९) शिग्रुतैल—सहिजनके बीज, भटकटैयाके बीज और जमालगोटेके बीज, सोंठ, मिर्च, पीपल और बेलके पत्ते समान भाग लेकर चौगुने तेलमें तेल पाक कर ले। यदि केवल जलके बदले पानीमें बेलके पत्ते पीस उसीका चौगुना रस डालकर तेल सिद्ध किया जाय तो और भी अच्छा हो। इसका नस्य लेने से पीनस और नाककी दुर्गन्धि नष्ट होती है (१०) रामठ अवपीडन—हींग, सोंठ, मिर्च, पीपर, कुरैयाकी छाल, सफेद पुनर्नवा, सम्हालूके पत्ते, तुलसीके बीज, कायफल, घोड़वच, कड़ुवाकूट, सहिजनके बीज, करञ्ज और वायविडंग समान भाग लेकर सबको पानी डाल सिल पर पीसकर रस निचोड़ ले। इसी रसकी नस्य ले। (११) पञ्चमूल अर्थात् बेलकी छाल, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला और काश्मरीकी छाल

आधा आधा तोला लेकर कुचलकर आधा सेर दूधमें आधा सेर पानी मिला क्षीरपाक करले, इसे पिलानेसे पीनस नष्ट होता है, अथवा चीता और हर्रेका जवकुट चूर्ण डाल क्षीरपाक कर पिलावे। (१२) वल्लक्काथ—वायविडंगका काढ़ा कर उसमें घी और गुड़ मिलाकर पिलाया करे। (१३) दहीमें गुड़ और कालीमिर्चका चूर्ण यथेच्छ पिलावे। (१४) अपूप—गेहूँके आटेमें घी मिलाकर हलुवा, अपूप, मालपुवा बनाकर खानेसे पीनस नष्ट होता है। (१५) विडंगशष्कुली—गेहूँके आटेमें वायविडंगका चूर्ण मिला रोटी या पराठा या पूड़ी बनाकर खिलावे और सोनेके समय ठण्डा पानी पीवे तो रोगी पीनस रोगसे छुटकारा पाता है। (१६) पाठादि तैल—पाढ़ी, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, पीपली, चमेलीके पत्ते समान भाग लेकर चौगुने तेलमें तेलसे चौगुना चमेलीके पत्तोंका पीसकर छाना हुआ जल डाल तैलपाक कर ले, इसकी नस्य देनेसे पीनस शान्त होता है। विशेषकर कफात्मक पीनसमें विशेष लाभ होता है। (१७) षडविन्दु घृत—भांगरा, लौंग, मुलहठी, कूट, सोंठका कल्क कर गायके घीमें भांगरेका रस डाल घृत पाक करे। इसके सूँघनेसे पीनस और सैकड़ों शिरोगत रोग नष्ट होते हैं। (१८) प्राग्भक्त योग—सोंठ-मिर्च-पीपर पीसकर अदरख और जम्बीरी नींबूके रसमें मिला भोजनके पहले लिया करे। गुड़का सिरका भी इसी तरह लेनेसे लाभ होता है। (१९) यदि प्रतिश्याय नया हो तो कालीमिर्च और गुड़ खावे अथवा खट्टे दहीमें गुड़ और कालीमिर्च मिलाकर भोजन करे, इससे अच्छा होगा। (२०) त्रिकटु तैल—सोंठ-मिर्च-पीपल, वायविडंग, सेंधानमक, बड़ी भटकटैयाके बीज, सहिजनके बीज, तुलसीके बीज, संभालूके बीज, दन्ती बीज, सबको एक-एक तोला लेकर आधसेर कटुतैल अथवा तिल तैलमें दो सेर गोमूत्र डालकर तेल सिद्ध करे। इस तेलका नस्य लेनेसे नाककी दुर्गन्धि-पूतिनस्य नष्ट होता है। (२१) मधूच्छिष्टधूम—मोम और

गुग्गुल मिलाकर आगमें रख उसका धुआँ लेवें, इससे बिगड़ा हुआ कफ और जोरसे छींकोंका आना बन्द होता है।

1965

पूतिनस्य

गले और मुँहके तलुवोंके मूलमें स्थित दोष जब नासारोगकारक कारणोंसे तथा नासारोगकारक आहार-विहारसे दूषित हो जाते हैं, तब वे दोष वायुसे प्रेरित होकर नाक और मुखके द्वारा बाहर होते हैं। ऐसी दशामें मुँह और नाकसे जो वायु निकलता है, कफ निकलता है, वह दुर्गन्धित रहता है। ऐसी व्याधिको पूतिनास या पूतिनस्य कहते हैं।

तालु मूले मलैर्दुष्टै मारुतो मुख नासिकात्।
श्लेष्मा च पूतिर्निर्गच्छेत् पूतिनासं वदन्तितम्॥

दोषसे मतलब यहाँ पित्त-कफ और रक्तसे है। यद्यपि रक्त स्वयं दोष नहीं, द्रव्य है; तथापि पित्त कफके साथ रहनेसे साहचर्यके कारण यहाँ रक्तको भी दोषोंके साथ शामिल किया गया है। सुश्रुतने इसे और भी अधिक स्पष्ट किया है।

दोषै विदग्धै गलतालु मूले संमूर्छितो यस्य समीरणस्तु।
निरेति पूतिर्मुख नासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम्॥

इसमें तालु और गला दोनोंको पीड़ित स्थानमें लिया है। दोषोंका दूषित होना विदग्धताके साथ कहा गया है। पित्त-कफ और रक्त ऊष्मा पाकर विदग्ध हो जाते हैं; लवण और अम्ल रसके पाकसे दूषित हो उनमें पूतिभाव अर्थात् दुर्गन्ध आजाती है। यही उनका दूषित होना है। फिर वे दोष मूर्छित होकर दुर्गन्धित हो जाते हैं और बढ़े हुए प्रकुपित वायुसे प्रेरित हो गले और नाकके द्वारा बाहर निकलते हैं। निकलनेवाली दुर्गन्धित वायु और नाकको संस्कृतमें नस्य कहा गया है। नाकमें अर्थात् नासामें होता है, इसलिये उसे नस्य कहते हैं।

विदेहने इस विषयको और भी स्पष्ट किया है।

कफपित्तमसृङ्मिश्रे सञ्चितं मूर्ध्नि देहिनाम्।
विदग्धमूष्मणा गाढं रुजां कृत्वाऽक्षि शङ्खजाम्।
तेन प्रस्यन्दते घ्राणात्स्रक्तं पूति पीतकम्।
पूति नस्यं तु तं विद्यात् घ्राणकण्डू ज्वर प्रदम्॥

इससे मालूम पड़ता है कि रोगीके शङ्खदेश और आँखोंमें पीड़ा भी होती है, नाकमें खुरखुराहट और खुजली होती है, साथ ही ज्वर भी होता जाता है। नाकसे जो बलगम निकलता है, वह दुर्गन्धित होता है और उसका रंग पीला रहता तथा उसमें कुछ रक्तका अंश भी रहता है। कल्याणकारकके वचनसे यह भी मालूम पड़ता है कि वायु नासिका रन्ध्रोंको रोके रहता है, जिससे दोष बाहर निकलते हैं।

विदग्ध दोषैर्गलतालुकाश्रितैर्निरन्तरं नासिक वायु रुद्धतः।
सपूति नासां कुरुते तथागलं, विशोधयेत्तच्छिरसो विरेचनैः॥

चरकाचार्य कहते हैं कि प्रतिश्याय या परिस्रव की उपेक्षा करनेसे यह होता है। कफमें दुर्गन्धि और विवर्णता रहती है। इस रोगमें नाकके भीतर शोथ भी हो जाता है और शिरमें चक्कर भी आते हैं।

वैवर्ण्य दौर्गन्ध्य भुयेत्तया तु स्यात्पूति नस्यं श्वयथु भ्रमश्च॥

एलोपैथीमें पूतिनस्यको ओज़ीना Ozaena कह सकते हैं। नासिकासे दुर्गन्धित स्राव निकलना इसका प्रधान लक्षण है। इस प्रकार स्रावमें दुर्गन्धि होना दुष्ट प्रतिश्याय और पीनसमें भी सम्भव है। इसी तरह अन्य कारणोंसे भी स्रावमें दुर्गन्धि आ सकती है। रोग पुराना पड़ने और चिकित्सामें लापरवाही होनेसे स्रावमें दुर्गन्धि आना सम्भव रहता है। जिन्हें औपसर्गिक उपदंश या फिरङ्ग होता है, उनकी नाकमें जो फिरङ्गजन्य शोथ होता है, उसमें भी दुर्गन्धि आ जाती है। नाकमें अर्श या अर्बुद होने पर भी दुर्गन्धि आ जाती है। नाकमें मांसवृद्धि होने, नासिकासे सम्बन्धित अस्थियोंके सड़ने या कलाजन्य

क्षयसे भी इस प्रकार दुर्गन्धि आ जाती है। यदि कोई बाहरी पदार्थ नाकमें चला जाय और वह वहीं रुका रहे तो वह वहीं सड़ता है और अपने साथ ही नासाकी श्लैष्मिक कलामें भी व्रण पैदा कर देता है। इस व्रणके कारण भी नाकसे जो स्राव निकलेगा, दुर्गन्धित होगा। आमाशयमें क्षत हो जाने या दुष्ट दोष संचित होने पर वे ऊर्ध्वगामी हो, गले-तालू-और नाक तक पहुँचते हैं और फिर वहाँ भी विकार उत्पन्न कर दुर्गन्धि पैदा कर देते हैं। इसी तरह छाती और फेफड़ेमें विकार होनेसे श्वासनलिका द्वारा विकारी अंश ऊपर जाकर गले-तालु और नासामें विकार बढ़ाते हैं। ऊपर मस्तिष्क, तालु, गला, नाक, कानके भाग आपसमें छिद्रां द्वारा इस प्रकार मिले हुए हैं कि एक स्थानमें विकार होनेसे उसका असर दूसरी ओर भी पहुँच जाता है। यदि विकार मस्तिष्कमें हो या वहाँ दूषित दोष संचित हों तो वे नाक तक पहुँचते हैं और नाकके मलरूप कफ और नाकसे निकलनेवाले वायुको भी दुर्गन्धित कर देते हैं।

विशेष—डाक्टर लोग इसे **ओज़ीना** कहते हैं। पाश्चात्य चिकित्सक डाक्टर विलियम जानसन इसे स्वतन्त्रव्याधि नहीं मानते; किन्तु कई रोगोंके उपसर्ग रूपमें इसे गिनते हैं।

(१) क्षयजप्रतिश्याय (ऐट्रोफिकनेसेल कैटार)

(२) उपदंश अथवा अन्य किसी कारणसे अस्थिक्षय (कैरिज) हो जाय अथवा हड्डी सड़ जाय (निक्रोसिस)

(३) श्लैष्मिककलामें उपदंशजनित क्षय अथवा ल्यूपसके कारण प्रतिश्याय होने पर।

(४) नासारन्ध्रके भीतर आगन्तुक द्रव आ जानेसे अथवा नासाश्मरी (राइनोलिथ) के कारण।

(५) गण्डगाह्वर (एण्ट्रम) अथवा अन्य किसी नलिकामें पूय प्रतिश्याय (प्यूरियेलेण्ट कैटार) होने पर।

(६) अर्बुदके तुल्य कोई उठाव होने पर। इन सब कारणोंसे नाकसे दुर्गन्धि आने लगती है। कारणोंकी जांचकर चिकित्सा करनेसे मूल रोगके साथ पूतिनस्य भी नष्ट हो जावेगा।

चिकित्सा—पूतिनस्यकी चिकित्सा करते समय इस बातकी विवेचना करना आवश्यक है कि व्याधिका मूलस्थान कहाँ है। पूतिनस्यकी चिकित्सा करते हुए मूलस्थानके शोधन पर भी ध्यान देनेसे लाभ शीघ्र हो सकता है। पूतिनाशकी चिकित्सा अपीनसके समान तथा कफजप्रतिश्यायके समान करनी चाहिये। (१) **लाक्षादि नस्य**—पहले वमन और विरेचन देकर मस्तिष्क तथा आँतोंको साफ कर ले। इसके पश्चात लाक्षादिनस्य—अर्थात् लाख, करंजके बीज, मिर्च, वायविडंग, हींग, पिप्पली और गुड़ भेड़के मूत्रमें पीसकर नस्य देवे। (२) **शोभाञ्जन तैल**—सहिजनके बीज, बड़ी भटकटैयाके बीज, जमालगोटा, सोंठ-मिर्च-पीपर, सेंधानमक, वायविडंग, तुलसीका कल्क कर तेल सिद्ध कर ले। यह तेल पूतिनास और अपीनसमें नाकमें डालनेसे अच्छा लाभ दिखाता है। (३) **शक्र तैल**—इन्द्र जव, हींग, सफेद मिर्च, कायफल, सोंठ, मिर्च, पीपर, घोड़वच, सहिजनके बीज, बावविडंग सब चीजें एक-एक तोला लेकर लाखके पानीसे पीसे और आध सेर कड़ू तेलमें कल्क और दो सेर पानी डालकर तेल सिद्ध करे। इस तेलका नस्य लेनेसे पीनस और पूतिनस्यकी व्याधि मिटती है। (४) **शिग्रवादि तैल**—सहिजनके बीज, भटकटैयाके बीज, दन्तीके बीज, सोंठ-मिर्च-पीपर और सेंधा नमक सब तीन-तीन तोले लेकर बेलके पत्तोंके रससे पीसे और एक सेर तेलमें यह कल्क और बेलकी सेरभर पत्ती पीसकर चार सेर पानीमें उसे छान तेलमें डाल तैल पाक कर ले। इस तेलका नस्य लेनेसे पूतिनस्य रोग नष्ट होता है। (५) **सुरसादि तैल**—तुलसीके बीज अथवा पत्ती, सोंठ-मिर्च-पीपर, कड़ुवा कूट, लाख, कायफल और वायविडंग सब एक-एक तोला लेकर ३२

तोले सरसोंके तेलमें सवा तीन सेर पानी डाल तेल सिद्ध कर ले। इससे नाककी दुर्गन्धि दूर होती है ।(६) नासाधौत योग—नाकको नित्य पिचकारी लगाकर साफ किया करे, जिससे मवाद भीतर इकट्ठा न हो। पिचकारीके लिये ढाई तोले पानीमें (पानी यदि नीमकी पत्ती डालकर पकाया हुआ हो तो अच्छा) आधी रत्ती शुद्ध फिटकरी, आधी रत्ती जस्तेक फूल अथवा अँग्रेजीका क्लोराइड आफ जिंक डालकर पिचकारी दिया करे। (७) यदि नाकमें घाव हो तो जात्यादितैल टपकावे या पिचकारी द्वारा भीतर डाले। (८) ढाई तोले चीनीमें ३ माशे डाक्टरी दवा निस्मथ मिलाकर सूंघा करे। (९) एक माशा कारबोलिक एसिड आठ माशे गायके ताजे घीमें मिलाकर दिनभर सूंघे। (१०) अन्य औषधि करते समय रक्तशोधन और शोथ तथा क्षत मिटानेके लिये महामंजिष्ठादि क्वाथ कैशोर गुग्गुल, योगराज गुग्गुल आदि यथावश्यक देता रहे। (११) यदि दुर्गन्धि आमाशय या छाती या फेफड़ोंके पाससे ऊपर पहुँचनेके कारण हो तो पहले उस मूल अङ्गका निर्णय करे फिर वमन विरेचन कराकर निम्न कायका शोधन करे, इसके बाद नाककी दुर्गन्धि दूर करनेके लिये उपाय करे। गोस्तनादिपोटली—अंगूरके अर्क या अंगूरी शराबमें लौंग, जायफल, दालचीनी, जावित्री, अगरू, गावजबां, सुगन्धबाला, बादरंजबोयाकी पोटली बनाकर छोड़ दे, जब औषधियोंकी सुगन्धि पूरी तरह आ जाय तब पोटली अलग कर इसी शराबको नाकमें सुरके। इसके बाद बालछड़, नागरमोथा और अगरके बारीक चूर्णका प्रधमन नस्य दे। (१३) यदि दोषोंका स्थान संश्रय मस्तिष्क हो या नासारन्ध्र और मस्तिष्कके भाग में हो और वहांकी दुर्गन्धिसे नाकमें दुर्गन्धि आती हो तो मस्तिष्क शोधनका उपाय पहले करे। इसके लिये महालक्ष्मी विलास सारिवाद्यरिष्टके साथ दे। फिर सिकंजवीन विजूरी (यूनानी दवा) में जीरा और राई मिलाकर कुल्ले करावे। इससे दुर्गन्धित तरी निकल जाती है।

इसके बाद बालछड़, लौंग और गुलाबके फूल शराबमें उबाल कर कुल्ले करावे। इसके बाद ऊपर लिखे हुए बालछड़वाले नस्यका प्रधमन नस्य दे।

शिरोविरेचनके लिये जो नस्य दिये जाते हैं, वे दो प्रकारके होते हैं। १ अवपीड़न नस्य और २ प्रधमन नस्य। अवपीड़न नस्यमें औषधियोंको सिल पर पीसकर रस निचोड़ लिया जाता है और फिर वही रस नासापुटोंमें डालकर सुरका जाता है, जिससे वह रस नाकके सब भागोंमें पहुँच जावे। प्रधमनस्यके लिये पहले औषधियोंका खूब बारीक चूर्ण कर लिया जाता है; फिर एक छः अंगुल लम्बी नलीमें नीचे अंगूठेसे दबाकर उसे भर कर नलीका वह हिस्सा नाकमें डाले, ऊपरी हिस्सेसे नलीमें इस प्रकार फूंक दे कि नलीके भीतरका चूर्ण नाकमें चढ़ जावे। गुणके विचारसे भी नस्य दो प्रकारका होता है। १ रेचन नस्य २ बृंहण नस्य। रेचन नस्य ग्रीवा, गला, तालु, शिर, नाक आदिके रोगोंमें तथा कफ जनित स्वरभेद, अरुचि, प्रतिश्याय, शिरोव्यथा, पीनस, सूजन आदि दोष निकालनेके लिये दिया जाता है। बृंहण नस्य सुकुमार प्रकृति, भीरु, स्त्री तथा कृश रोगियोंको दिया जाता है। अवपीडन नस्य गलरोग, सन्निपात, निद्राधिक्य, मनोविकार, मद-मूर्छा, सन्यास, उन्माद में तथा शिर, नाक आदिके कृमियोंको दूर करनेके लिये देते हैं। जब ऊपरी अंगके विकार बहुत बढ़े हुए होते हैं, तब बेहोशी मूर्छा अपस्मार दूर करने तथा हृदयसे आनेवाली चेतनाके मस्तिष्कमें काम न कर सकनेकी स्थिति मिटानेके लिये तीक्ष्ण द्रव्योंसे शिरोविरेचन करनेके लिये प्रधमन नस्य दिया जाता है। बृंहण नस्य मस्तिष्कके क्षीण अंश सबल बनानेके लिये और वहाँ चिकनाई पहुँचानेके लिये देते हैं। रेचन नस्य बढ़े हुए और भीतर समाये हुए दोषोंको खींचकर बाहर निकालता है। कफ दोषमें प्रातःकाल, पित्त दोषमें मध्यान्ह समयमें और वायुदोषमें सायंकाल नस्यका

प्रयोग करना चाहिये। यदि दोष बढ़े हों तो कफ दोषमें रातके प्रथम पहरमें, पित्त दोषमें रातके दूसरे पहरमें और वायु दोषमें रातके तीसरे चौथे पहरमें भी नस्य दे सकते हैं। भोजनके पश्चात तुरन्त तथा दुर्दिनमें, स्नानके पश्चात, मल मूत्रादि वेगोंके रहते, स्नेहपानके पश्चात नस्य प्रयोग नहीं करना चाहिये। नस्य देनेके लिये आठ वर्षकी उमरसे ८० वर्ष तककी उमर ठीक समझी जाती है। शिरोविरेचनकी आठ-आठ बूंदे प्रत्येक नासापुटमें डालनी चाहिये। प्रधमन नस्यमें एक बारमें एक माशा दवा सूंघनी चाहिये।

(१४) व्याघ्रीबिन्दु—भटकटैयाके फल आगमें सेंक रस निचोड़ ले अथवा पुटपाक विधिसे भटकटैयाके पंचाङ्गका रस निकाल ले। इससे नाकमें पिचकारी लगावे। इसके पश्चात पीली हर्र और आमकी अमकली पानी डाल पत्थर पर घिसे और उसीकी बूंद नाकमें टपकावे। (१५) पीनस गरम नजलेसे और उपदंशके विकारसे होता है। जिसमें सुगन्धि-दुर्गन्धिका भेद नहीं मालूम पड़ता और बोलीमें भी अन्तर आ जाता है। इसलिये ऐसे रोगीकी चिकित्सा पहले शरीर शुद्ध कर ले तब करे, विरेचन देवे और आवश्यकता हो तो फस्द खोले। (१६) पलाश नस्य—पलाशके बीज, करंज बीजकी मींगी, लाल फिटकरी, नकछिकनी, सूखी तमाखू सबको बराबर ले, पीस-छान कर सुंघावे। यदि इससे छींकें आवें तो रोग अच्छा हो जायगा। अन्यथा नाकके बीचकी हड्डी निकल जानेका भय रहता है। (१७) हड्डीकी रक्षाके लिये देवदारुका तेल और तारपीनका तेल लगाया करे। अथवा कद्दूका तेल, काहूका तेल और पेठेका तेल मिलाकर लगावे। यदि हड्डी निकल जाय तो इन औषधियोंसे घाव भी अच्छा हो जाता है। (१८) यदि पीनस उपदंशके कारण हो तो पहले जमालगोटेका जुलाब देवे और फिर कालीमिर्च, बड़ी पीपल, सूखे आँवला सब एक-एक तोला लेकर कूट छानकर सात वर्षके पुराने गुड़में मिला, बेर बराबर गोलियाँ

बनावे। नित्य एक गोली सवेरे मलाईमें लपेट कर खिलावे और ऊपरसे दहीका तोड़ पिलावे। मूंगकी दाल और रोटी खानेको दे और पानी औटाया हुआ पिलावे। इन गोलियोंके सेवनसे अन्य सब रोग भी आराम होते हैं।

नासापाक

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे वलवांश्च पाकः।
तं नासिकापाकमिति व्यवस्ये द्विक्लेद कोथावपि यत्र दृष्टौ॥

अर्थात नासिका गत पित्त जब नाकमें बहुतसे व्रण, पाक, विक्लेद अर्थात गीलापन और कोथ अर्थात सड़न पैदा कर देता है, तब उसे नासापाक कहते हैं। इस पाकमें फुंसी भी हो जाती हैं। चरकके मतसे केवल पित्त नहीं बल्कि रक्त और पित्त दोनों की विकृति नासापाकके कारणमें होती है। इस पाकके व्रण लाली लिये रहते हैं और उनमें दाह भी होता है। पहले ललाई और दाहके साथ शोथ होता है, फिर वह शोथ पक जाता है।

स दाह रागः श्वयथुः स पाकः स्याद् घ्राणपाकोऽपि च रक्तपित्तात्॥

किन्तु सुश्रुतके कथनसे मालूम पड़ता है कि यदि पहले व्रण न हो तो भी विक्लेद और कोथके पश्चात क्षत होना सम्भव है। आचार्य वाग्भटके मतसे पित्त ही नासापुटके चमड़े और मांसको पका देता है, जिससे वहाँ दाह और शूल वेदना होती है।

एलोपैथीके विचारसे नासापाकको अलसरेशन आफ दी नोज या पुश्चुल इन दी नोज कह सकते हैं। यूनानीमें 'बशूर उल अनफ़' कहते हैं। नाकमें इस प्रकारका पाक अनेक कारणोंसे हो सकता है। फिरंग रोगवालोंके शरीरमें प्रायः चत हो जाते हैं। ऐसे चत नाकमें भी होते हैं, वे प्रारम्भिक दशामें तो गहरे नहीं होते और उनमें दुर्गन्धि भी नहीं होती, उनसे जो स्राव होता है, वह रक्त-मिश्रित होता है; किन्तु आगे

चलकर घाव, गहरे हो जाते हैं और उनसे दुर्गन्धित स्राव भी होता है। ऐसे व्रण पीनस रोगके भी कारण हो जाते हैं। फिरंग जनित पाकका प्रभाव नासास्थि पर भी पड़ता है, जिससे नासाकी मध्यप्राचीर (Septum) सेपटमको सड़ाकर तालुको भी नष्ट कर देता है। जिससे नाक बैठ जाती है, स्वरभेद हो जाता है। फिरंग जनित क्षत बहुत शीघ्रता और बहुत तीव्रतासे बढ़ते हैं। कभी-कभी २० वर्षसे कम उम्रके लड़कों और स्त्रियोंमें क्षय रोगके जीवाणुओंके उपसर्गसे नाकमें अल्पीनके मुण्डके आकारकी ग्रन्थियां लाल रंगकी पड़ जाती हैं। ये पारदर्शक होती हैं और मछलीके छिलकेके समान छिलकेसे ढकी रहती हैं। इनमें दुर्गन्धित मवाद भरा रहता है। इन ग्रन्थियोंके प्रभावसे नासाकी मध्य प्राचीर गल जाती है। नासिकाकी श्लैष्मिककलाके क्षयसे भी नासा-पाक हो जाता है। ऐसा होनेसे नाकसे गाढ़ा और दुर्गन्धित स्राव कभी कम कभी अधिक निकला करता है। नासिकाकी श्लैष्मिककला पतली, पीली, कड़ी, सूखे छिलकेदार रचनासे ढकी हुई और सड़नयुक्त हो जाती है। इसके प्रभावसे नासागुहा बड़ी और उसकी छत चौड़ी तथा कभी-कभी दबी हुई हो जाती है। इसका असर ग्रसनिकाशोथके रूपमें भी होता है। भीतरसे जो सांस आती है, वह दुर्गन्धित होती है; किन्तु घ्राणशक्ति क्षीण पड़ जानेके कारण उस दुर्गन्धिको स्वयं रोगी नहीं समझ पाता। इस नासापाकका प्रभाव केवल नासापर्यन्त ही नहीं रहता, आगे चलकर नासागुहासे नासास्थि तक सड़न पहुँच जाती है।

शिरमें सर्दी लगने, तीव्रज्वर, इनफ्लुएञ्जा तथा नासिकाके आघात और नाकमें शस्त्र कर्म होनेसे भी इस प्रकारका शोथ हो जाता है। आयुर्वेदमें उपरी दांत उखड़वानेका निषेध है। ऊपरी दांत उखाड़नेसे कभी-कभी ऊर्ध्वहन्वस्थि गत कोटरमें शोथ हो जाता है। ऐसी दशाओं-में नासारन्ध्रसे दुर्गन्धित मवाद या मवाद मिला हुआ कफ निकला करता है। तीव्रशोथ होने पर पूर्विकास्थि कोटर (Frontal Sinuses)

झर्झरास्थिकोटर और जतूकास्थिकोटरमें भी विकार पहुँचता है। प्रायः युवापुरुषोंमें श्लैष्मिक कलाजन्य शोथ—म्यूकस पालिपस—एक या दोनों नासागुहाओंमें हो जाता है। इसमें जो फुंसी होती है वह छोटी भी होती और कभी इतनी बड़ी भी होती है कि उससे नासागुहा बन्द हो जाय। जो श्वासके रोगी बहुत खींचकर सांस लेते हैं, उनकी नासा-गुहामें इस प्रकारका शोथ कारणीभूत होता है। श्लैष्मिक कलाकी फुंसियां लम्बी डण्ठलदार होती हैं। इस प्रकारकी फुंसियां नासार्श भी मानी जा सकती हैं। इस प्रकारका शोथ पुराना होने पर श्लैष्मिक कला मोटी पड़ जाती है, उससे गन्धरहित नासास्राव भी होता है। चिरकालीन नासाशोथ एक तो साधारण होता है जिसमें नासाकी श्लैष्मिककलामें रक्ताधिक्य रहता है। इसमें जो स्राव होता है उसमें कफ रहता और कभी कफके साथ मवाद भी आता है। जब इसमें नासाप्रतीनाह या नासाका अवरोध होता है तब आवाज बदल जाती है। नींदमें खर्राटा भी होता है। हृदयविकार और फुफ्फुसविकार वालोंको, अधिक शराब पीनेवालोंको यह विकार होनेका भय रहता है। जिन्हें बारम्बार जुखाम होता है और उसकी चिकित्सा-में उपेक्षा होती है उन्हें भी ऐसा नासाशोथ होता है। जिनके टांसिल बढ़े रहते हैं उनमें भी ऐसा साधारण चिरकालीन नासापाक हो जाता है। ऐसा शोथ श्रुतिसुरंगा तक भी पहुँच सकता है। नासिकाकी श्लैष्मिककलाके बढ़ जानेसे भी चिरकालीन नासाशोथ होता है। यह वृद्धि अधःशुक्तिकास्थिके अगले और पिछले सिरोंपर होती है। इसमें भी कफ या पूययुक्त कफ आता है। इसमें शिर में दर्द और मानसिक दुर्बलता हो जाती है। यह कृच्छ्रसाध्य होता है।

पित्तज्वर, इनल्फुएञ्जा, तीव्रज्वर आदिके कारण जो शोथ और पाक होता है उसमें पित्तकी गर्मीसे हृदय और यकृतके दोष ऊपर पहुँच जाने से होता है। अधिक खुश्की होने पर नासागुहाकी तरी

९

नष्ट होती है, जिससे शोथ और क्षत होनेका अन्देशा रहता है। क्षयके ज्वरमें जब स्वर भङ्ग होता है तब ज्वरकी उष्णतासे दिल दिमाग और यकृतकी तरी कम हो जानेसे नासागुहामें खुश्की बढ़ती है और खरास पैदा हो जाती है। तरी सूख जानेसे नासागत मार्ग बन्द या विकृत हो जाता है। इससे मस्तिष्कसे जो तरी उतरकर नाक को तर रखती है वह नहीं आ पाती। इससे वहां शोथ हो जाता है। चिकित्सा करते समय इन सब विषयोंका सूक्ष्म विचारकर लेना चाहिये। जिससे मूल कारणका भी उपाय हो और रोग निवारण सहज हो जाय।

नासापिडिका

नासिकाके छिद्रोंमें जहाँ बाल होते हैं, वहाँ केशिक नलिकाओंमें लालमुँहकी जो पीडिका हो जाती हैं, उन्हें नासापिडिका (एक निरोजेसिया) कहते हैं। जब केशिक नलिकाओंमें अधिक रक्त हो जाता है अथवा अधिक रक्त फैल जाता है, ऐसी मुखपिडिका मुंहासोंके समान निकल आती हैं। जिससे सिवेशस फलिकल उपकोष-ग्रन्थियोंकी वृद्धि हो जाती है। यह रोग पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें अधिक होता है। अधिक टण्डक, अजीर्ण, जननेन्द्रियमें अधिक दोष वृद्धि होने अथवा अधिक मद्यपानसे यह व्याधि प्रायः होती है।

इसकी चिकित्सा करनेमें पहले रोगका कारण जानकर उसे दूर करनेका प्रयत्न करे। हल्का भोजन देवे और नासापाक चिकित्साकी औषधियोंका प्रयोग करे। डाक्टर लोग सलफर आइण्टमेंट अथवा परक्लोराइड आफ मर्करीका लोशन लगवाते हैं।

चिकित्सा—नासापाककी चिकित्सामें सबसे पहले पित्तकी शान्ति का प्रयत्न करना चाहिये। आवश्यकता समझे तो रक्तमोक्षण भी करावे। **पंचक्षीरीशोधन**—(२) पीपर, बरगद, पाकर, गूलर और वेतस

छाल एक-एक तोले लेकर आध सेर जलमें पकावे, जब एक पाव रहे तब उतार छानकर इसमें एक रत्ती फिटकरी डालकर पिचकारीसे नित्य नाक धोया करे। इससे भीतरी व्रण, शोथ तथा उपदंशजव्रण भी अच्छे होंगे। नाकके रोगोंमें जो कृमि पड़नेकी सम्भावना रहती है वह भी इससे दूर होगी। (३) रक्तशोधनके लिये कैशोरगुग्गुल खाकर ऊपरसे महामंजिष्ठादि क्वाथ या सारिवाद्यरिष्ट पीवें। (४) शतधौतघृत एक फुरेहरीमें लगाकर भीतर घावमें लगानेका प्रयत्न करे। अथवा पिचकारी द्वारा जात्यादि तेल भीतर पहुँचावे। (५) बाहरी भागमें दशांग लेप—लगाते रहें। सिरस वृक्षकी छाल, मुलेठी, तगर, लालचन्दन, बड़ी इलायची, जटामासी, हल्दी, दारुहल्दी, कडुवाकूट, और सुगन्धबाला, इन दशों औषधियोंको समान भाग लेकर कूट कपड़छान कर रखे और फिर आवश्यकतानुसार ठण्डे या उबाले हुए पानीके साथ पीसकर औषधियोंका पांचवां भाग घी मिलावे। अच्छा हो कि घी दवा पानीसे पीसनेसे पहले मिला ले। इसे नाकके ऊपर लेप किया करे। (६) प्रवालपिष्टी ३ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती अथवा शुक्तिपिष्टी २ रत्ती, मधु आधा तोला और मक्खन २ तोला, सबको एकमें मिलाकर नित्य सबेरे चटाया करे। (७) कैशोर गुग्गुल १ माशा और रसपर्पटी २ रत्ती एकमें मिला दूधके साथ या पानीसे उतारें। (८) जोंक लगवावें और पंचक्षीरी वृक्षका ऊपरसे लेप करें। पित्तनाशक घृतपान करावें। औषधिशीतवीर्य हो, लेप आदि भी कच्चे शीत हों, नाकमें जो तेल डाले जावें वे भी तरी लानेवाले हों। ठण्डे और तर भोजन आहारमें देवे। (९) यदि रोगका कारण खुश्की हो तो स्निग्ध आहार दे। जो औषधि दे वह घृत अथवा मक्खनके साथ दें। नाकमें तेल डाले। मस्तक पर किसी स्त्रीके दूधकी धार दुहते हुए छोड़ी जाय। (१०) यदि दोष नासा मार्गकी रुकावटके कारण अवरुद्ध हो अथवा भीतरी भागमें लिपटे हों

तो तेल डालकर तथा लुआबदार वस्तुओंका अवपीड़न नस्य देकर भीतर तरी पहुँचावे। जब दोष नरम पड़ें और उनमें निकलनेकी शक्ति आजाय तब कुल्ले कराकर, तरेरा देकर निकालनेका प्रयत्न करे। मक्खन और लौकीके तेलका तरेरा दे और शिर पर भी लगावे। (११) कभी-कभी नाकके भीतरका कफ या मवाद वायुके कारण अथवा भीतरी उष्णताके कारण सूख जाता है और खुश्कीसे फुन्सियां निकल आती हैं। भीतरी कफ और मवाद उष्णतासे सूखकर कुछ नष्ट हो जाता और कुछ गाढ़ा होकर पथरा जाता है। उससे नासारन्ध्रमें रुकावट आजाती है और सांस लेने और छोड़नेमें भी कष्ट होता है। ऐसी दशामें नाकसे मल नहीं निकल पाता। ऐसी दशामें शिरोविरेचन कर दिमाग साफ करें और फुंसियोंको नरम करनेके लिये उन पर मोमका तेल लगावे। नाकमें गरम पानी डाले जिससे मवाद ढीला पड़े। यदि इससे लाभ न हो तो नश्तर लगाकर फुंसियोंको खरोंच दे और सूखे मवादको भी फोड़ दे। आवश्यकता हो तो मांस नष्ट करनेवाले क्षारका प्रयोग करे। जब फुंसिया ठीक हो जायँ तब घाव भरनेके लिये सफेदाका मल्हम लगावें। इस व्याधिकी चिकित्सामें आलस्य न करे अन्यथा वहाँ नाड़ीव्रण होनेका डर रहता है। (१२) कभी-कभी मस्तिष्कसे ऐसी तरी नीचे नासागुहामें उतरती है जिससे नासिकागत मांस विकृत हो जाता है और वहाँ घाव हो जाता है। ऐसी दशामें दिमागमें वैसा दोष न संचित हो और वह नीचे न आवे इसका उपाय करे। संचित मल शिरोविरेचन द्वारा निकाल दे। इसके बाद **पुष्पादिमल्हम**—सफेदा, मुर्दासंख, चाँदीका मैल, जला हुआ सीसा, पीसकर गुलरोगनमें सानकर मल्हम बनावे और लगावे। (१३) यदि मस्तिष्कगत अथवा नासिकागत विदग्ध दोषों के कारण क्षत हो तो खुश्की दूर करनेके लिये नीलोफरका तेल तथा मुर्गी और बतखकी चर्बी मलें। **वातसमल्हम**—कड़ुवे बादामका

तेल और बनफसाका तेल तथा पीला मोम टिघलाकर उक्त तेल मिलाकर पकावे और मल्हम तैयार कर ले। इस मल्हममें बिहीदानेका लुआब मिलाकर लगावे। बिहीदानेका लुआब पीनेको भी दे। (१४) यदि घाव पुराना पड़ गया हो और सड़कर दुर्गन्धि आती हो तो यूनानी दवा **खरबन्दप्रधमन**—खरबन्द और हालूम बराबर-बराबर ले पीसकर प्रधमन नस्य दे। इसके बाद घावको अंगूरके सिरकेसे धोया करें। घाव धोनेके बाद उसमें मुरेमक्की बारीक पीसकर नाकमें फूँक दे। जब तक सब मल साफ न हो जाय ऐसा ही किया करे। इसके बाद घाव सुखानेवाली दवा करे। (१५) उपदंश जनित नासापाकमें पंचक्षीरी क्वाथसे धोवे और रोगी को इस प्रकार लिटावे कि पीड़ित भाग पर सूर्यप्रकाश अधिक लगे। डाक्टर लोग ऐसे क्षतको कारबोलिक एसिड या सेलिसिलिक एसिडसे जला देते हैं। किसी आयुर्वैदिक क्षारसे भी जला सकते हैं। इसमें व्याधिहरणरस लाभदायक है।

पूयशोणित

दोषैर्विदग्धै रथवाऽपि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः
नासास्रवेत् पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्तिरोगम् ॥

दोषोंकी विकृतिसे रक्त से विदग्ध होकर दूषित होना है अथवा ललाटमें किसी तरह चोट लग जानेसे नासामार्गसे जब रक्त मिश्रित पूय निकलने लगती हैं तब उस रोगको पूयरक्त या पूयशोणित कहते हैं। दोषोंके विदग्ध होनेसे यह दोषजव्याधि है और आघात लगनेके कारण जो पूयरक्तनिर्गमन होता है वह आगन्तुक व्याधि है। इस प्रकार इसे दोषागन्तुज पूयरक्त कह सकते हैं। दोषजमें पित्त रक्तको विदग्ध कर देता है, जिससे उसकी विरुद्ध परिणति होती है। आघात वालेमें चोट लगनेसे वह स्थान पक जाता है, जिससे रक्त मिला पूय निकलता है। सुश्रुतके बहुवचन प्रयोगसे और आचार्य वाग्भटके

विचारसे प्रकट होता है कि इसमें सभी दोषोंकी विकृति होती है। आघात चाहे ललाटमें लगे और चाहे नाकमें लगे। दोनों स्थानोंके आघातसे जो शोथ और पाक होगा उससे रक्त और पूय आसकेगा। साथ ही वाग्भटके लिखनेसे यह भी स्पष्ट होता है कि इस व्याधिके होने पर शिरमें दाह और पीड़ा भी होती है।

निचया दभिघाताद्वा पूयासृङ् नासिका स्रवेत्
तत् पूयरक्त माख्यातं शिरोदाह रुजाकरम् ॥

चरकाचार्यके मतसे जो रक्त और पूय आता है वह नासिकासे तो आवेगा ही किन्तु कान और मुखसे भी इस प्रकार पूय रक्तका निर्गमन हो सकता है।

घ्राणात्स्रवेद्वा श्रवणान्मुखाद्वा
पूयाक्रमस्त्वं त्वपि पूयरक्तम् ॥

किसी-किसीके मतमें "पूयाक्रमस्त्वं"की जगह "पित्ताक्रमस" होना चाहिये। ऐसी दशामें रक्तमें पूय मिला रहनेके बदले रक्तमें पित्त मिला रहना मानना पड़ेगा। किन्तु जब व्याधिका नाम ही पूय-रक्त है तब पूयके साथ रक्तका आना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। कल्याणकारकमें जो वर्णन दिया है, उससे यह प्रकट होता है कि शिरोगत कृमियोंके द्वारा ललाटमें क्षत होता है, उससे दोषोंका प्रकोप होता है। उसके पश्चात् क्षतसे रक्त मिला पूय निकलता है। अभिघातके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है।

ललाटदेशेकृमि भक्षितक्षतैः, विदग्धदोषै रभिघाततोपि वा
सपूयरक्तं स्रवतीह नासिका, ततश्च दुष्टव्रण नाडिका विधिः

इसकी चिकित्सा भी दुष्टव्रण और नाड़ीव्रणके समान करनेके लिये लिखा है। एलोपैथीमें घातक पालिपस (Malignant polypus) का जो वर्णन है वह पूयरक्तके समीप पहुँचता है। किन्तु यह विद्रधिके

ढङ्गका है। इससे चेहरा बिगड़ जाता है, जिसे एलोपैथीमें मेडकका सा मुख (Frogface) कहते हैं। रक्तमिश्रित पूयका स्राव होनेके लक्षण इसे इस श्रेणीमें हम रख रहे हैं। क्योंकि ऐसे क्षत होने पर वहांसे पूयरक्त निस्सरण होता है।

चिकित्सा—(१) पूयमिश्रित रक्तका आना विना क्षतकी उपस्थितिके नहीं हो सकता। क्योंकि मूलमें विना क्षत हुए पूयनिस्सरण होगा कहांसे? इसलिये आवश्यक है कि पूय रक्तकी चिकित्सा क्षतके अनुसार करे। इसीलिये कल्याणकारकने आदेश दिया है कि दूषित व्रण और नाड़ीव्रणमें कही हुई चिकित्साका इसमें अनुसरण करना चाहिये। (२) पंचक्षीरी वृक्षके कषायसे पिचकारी द्वारा नित्य नाक साफ की जाय। नीमकी पत्ती पकाकर अथवा त्रिफलाका काढ़ा बनाकर भी नाक साफ कर सकते हैं। (३) नाक साफ करनेके बाद षड्विन्दुतेल अथवा आंवलेका तेल पिचकारी द्वारा या फुरहरी द्वारा नाकके भीतर लगाया जाय। अथवा रोगीको सिर लटकाकर उताना लिटा तेल की बूँदें छोड़ दी जायँ। नाकके ऊपर दशांग लेप लगाया जाय। अथवा दशांग लेप और घीमें तला हुआ आंवला समान भाग ले मट्ठेमें पीसकर नाकके ऊपर लगावे। (४) यदि उपदंश जनित व्याधिके कारण क्षतमें से पूयरक्त आता हो तो व्याधिहरण रसका प्रयोग मधुके साथ करना चाहिये। रससिन्दूरयोग—(५) रससिन्दूर एक रत्ती और महा चन्द्रकलाबटी ३ मिलाकर मक्खन मिश्रीके साथ चाटें। (६) सुश्रुताचार्यका कहना है कि पूयरक्तमें नाड़ीव्रणकी-सी चिकित्सा करे, विसर्प नाड़ी स्तनरोगमें जैसी चिकित्सा वर्णित है उसका प्रयोग करे। इसके साथ ही रोगीको वमन कराकर अवपीडक नस्य देवे, तीक्ष्ण धूम्रपान करावे और शिरोविरेचन कर ऊर्ध्वाङ्गकी सफाई करे, जिससे चिकित्सा शीघ्र फलदायिनी हो। (७) रक्तपित्त नाशक कषाय पीनेको दे और नस्य तथा कवल धारण करावे।

(८) **अर्जुनशोधन**—नाक धोनेके लिये अर्जुनकी छाल, चीड़ वृक्षकी छाल, गूलरकी छाल, कुरैयाकी छाल, लेकर सबका काढ़ा बनावे और उसीसे नाक धोवे। इन्हीं औषधियोंकी छाल एक-एक छटांक लेकर कल्क करे और एक सेर घीमें यह कल्क तथा इन्हीं दवाइयोंको सेर भर लेकर १६ सेर पानीमें पकावें जब चार सेर रहे तब उसी घीमें डाल घृत सिद्ध करलें। इस घीको नाकके ऊपर तथा फुरहरीसे भीतर चुपड़ा करे; इसे सर्जकादि कषाय तथा सर्जकादि घृत कहते हैं। (९) वाग्भटका कहना है कि पूयरक्त रोग जब तक नया है तब तक उसकी चिकित्सा रक्तजन्य पीनसके समान करे। जब वह पुराना पड़ जाय और अधिक बढ़ जाय तब उसकी चिकित्सा नाड़ीव्रणके समान करे। (१०) पण्डित हरिप्रसाद पाण्डेयकी सम्मतिमें पूयरक्त निस्सरणके स्थान को आधुनिक डाक्टरोंके स्नेपर या पञ्चकारसेप्स शस्त्रसे काट देना चाहिये। किन्तु यदि फिर भी हो जाय तो उक्त स्थानको रेडियमसे या एक्स किरणोंसे दग्ध करा देना चाहिये।

क्षवथु

तीक्ष्णोपयोगा दभिजिघ्रतो वा भावान् कटूनर्क निरीक्षणाद्वा।
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थि मर्मण्युद्धाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति॥

जो स्वाभाविक छींक होती है, वह शरीरगत एक वेग है। अतः एव उसे रोग नहीं समझा जा सकता। किन्तु जो छींक आगन्तुक कारणसे या दोषविकृतिसे होती है उसे ही रोगके अन्तर्गत क्षवथु कहते हैं। माधवकर आगन्तुज कारणोंसे उत्पन्न क्षवथुके सम्बन्धमें कहते हैं कि तीक्ष्ण पदार्थोंका अधिक उपयोग करनेसे अर्थात् राई, मिर्चा, कालीमिर्च आदि अधिक खानेसे सिरसबीज, छिक्का, कालीमिर्च आदि कटुरस प्रधान पदार्थोंको अधिक सूंघनेसे अथवा सूर्यकी ओर अधिक देर तक देखते रहनेसे, अथवा सूत या कपड़ेकी बत्ती बनाकर

नाक सहलानेसे नासाकी मध्यदीवार तरुणास्थिमें सुरसुराहट पैदा होती है, बत्तीकी रगड़ या स्पर्श शृंगाटक नामक मर्ममें होनेसे भी सुरसुराहट होती है, अतएव उनका उद्घाटन होता है वे ऊपरको उठते हैं और छींक आने लगती है। ऐसी छींकको आगन्तुज क्षवथु कहते हैं। तीक्ष्ण पदार्थों के सेवनसे, सूर्यकी ओर निहारनेसे और कटु पदार्थ सूंघनेसे नासास्थित श्लेष्मा पतला पड़ जाता है और उसका स्पर्श तरुणास्थिसे होने पर सुरसुरी पैदा होकर छींक आने लगती है। इसी तरह कपड़ेकी बत्ती नाकमें डालनेसे शृंगाटक मर्ममें उसकी रगड़ लगती है जिससे छींक आती है। किसी अभिघातसे भी मर्ममें व्यथा होकर छींक आ सकती है। अभिघातसे तरुणास्थि और शृंगाटक दोनोंमें हलचल होती है अतएव जबरदस्ती छींक आने लगती है। यह स्वाभाविक नहीं अतएव इसे आगन्तुज कहते हैं। इस आगन्तुज छिक्काके अतिरिक्त दूसरी दोषज क्षवथुका भी भेद है। उसमें नासाश्रित दोषोंमें विकृति और हलचल होने से छींककी उत्पत्ति होती है। उसके लक्षण यों हैं—

घ्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति।
कफानुजातो बहुशोऽति शब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञः॥

अर्थात् घ्राणाश्रित मर्म शृंगाटकमें और नाशापुटमें रहनेवाला वायु जब आहार-विहार या आगन्तुक कारणसे दूषित हो जाता है तब कफको अनुगामी बनाकर वह बारम्बार शब्द करता हुआ नाकसे बाहर निकलता है, इसे दोषज क्षवथु या दोषजन्य छींक कहते हैं। चरकाचार्य क्षवथुके आगन्तुज और दोषज भेद अलग-अलग नहीं कहते।

संस्पृश्यमर्मा ण्यनिलस्तु मूर्ध्नि विष्वक् पथस्थः क्षवथुं करोति

चरक कहते हैं मूर्धामें रहनेवाला अर्थात् शिरोगतवायु सर्वतः मार्गों में आश्रित हो भ्रमण करता है। जब वह प्रकुपित हो जाता है

तब नासास्थित मर्म शृंगाटकोंको जोरसे स्पर्श करता है। जिससे सुरसुरी लगकर छींकें आने लगती हैं। यहाँ मुख्य कारण वायुको माना है, कफका अनुगामी होना स्पष्ट नहीं किया गया। 'संस्पृष्ट मर्माणि' शब्द से आगन्तुक कारणोंका भी समावेश हो जाता है। अर्थात् आगन्तुक कर्मोंसे अर्क किरण, तीक्ष्ण औषधि, सूत्र आदिका मर्ममें स्पर्श होता है तब वायु प्रकुपित हो छींक पैदा कर सकता है। आचार्य वाग्भटने भी दो अलग-अलग छींकके कारण नहीं दिखलाये। उन्होंने भृशक्षव नाम देकर दोनोंका समावेश एकमें कर दिया है। अर्थात् आगन्तुज या दोषज किसी कारणसे जब अस्वाभाविक रूपसे अधिक छींकें आतीं हैं तब वह रोग रूप हो जाती हैं। उसे भृशक्षव नामसे अभिहित किया गया है।

> तीक्ष्णघ्राणोपयोगार्क रश्मि सूत्र तृणादिभिः
> वातकोपिभिरन्यैर्वा नासिका तरुणास्थिनि
> विघट्टितेऽनिलः क्रुद्धो रुद्धः शृंगाटकं व्रजेत्
> निवृत्तः कुरुतेऽत्यर्थं क्षवथुं स भृशक्षवः

इसमें निदानके साथ सम्प्राप्तिका अच्छा स्वरूप दिखलाया गया है। अर्थात् तीक्ष्णपदार्थ सूंघने, सूर्यकिरणोंकी ओर अधिक देर तक देखते रहने, सूत या लकड़ीसे नाक खोदने अथवा अन्य वात-प्रकोप कारक कारणोंसे नाककी कोमल हड्डी में घर्षण होनेसे वायु कुपित होकर उसका मार्ग बन्द हो जाता है, जिससे वह पलटा खाया हुआ वायु शृङ्गाटक मर्ममें जाकर टकराता है और वहाँसे फिर पलट कर बहुत सी छींकें लाता है, अतएव इसे भृशक्षव कहते हैं। इसमें तृणादि तक आगन्तुक कारण कह कर "वातकोपिभिरन्यैर्वा" में दोषज छिक्काके कारणोंका उल्लेख कर दिया है। वायुका प्रकोप दोनों स्थितियोंमें होता है और मर्मस्पर्श भी दोनों कारणोंमें आवश्यक है। कफका अनुगामी

होना इन्होंने नहीं दिखलाया किन्तु वायु अपने स्वाभाविक गुणसे भी कफमें गति करता ही है, फिर विकृत वायु कफको अनुगामी करले इसमें आश्चर्य ही क्या है।

एलोपैथीवाले तीव्र नाशाशोथमें जो अधिक छींकोंका आना एक प्रधान लक्षण होता है, उसका जिक्र किया गया है। तीव्र नाशाशोथ होने के लिये तीव्र प्रतिश्याय, नासाकी श्लेष्मिक कलाका प्रसेक Batarrh या शिरमें ठण्डक लगना कारण होता है। इस प्रकारकी छींकको दोषज क्षवथु कहना चाहिये। इसे अँग्रेजी में Sheezing कहते हैं। यूनानी वालोंके मतमें अधिक छींक मस्तिष्कके लिये उसी प्रकार हानिकारक है जिस प्रकार खाँसी फेफड़ेके लिये हानिकारक है। "प्रतिश्यायादतः कासः कासात्संजायते क्षयः ॥" छींकके होनेमें वे भी आगन्तुज और दोषज दोनों कारण मानते हैं। जो छींक स्वाभाविक अवस्थामें दिमागसे कष्ट-दायक दोषको निकालती है और इस प्रकार मस्तिष्कके लिये सहायक होती है, वही जब अधिकतासे आती है तब बहुत-सी विपत्तियोंको उत्पन्न करने वाली हो जाती है। बारम्बार छींक आनेसे रक्तमें उष्णता उत्पन्न होती है, जिससे कभी-कभी क्षीणता बढ़ती है। जुखामके आरम्भमें जो अधिक छींकें आती हैं, उनसे भी रोगीको परेशानी होती है। जिनके दिमागमें उष्णताका उत्पन्न होना हानिकारक होता है अथवा जिनकी छातीमें बहुत दोष सञ्चित हों अथवा जिनकी नाकसे रक्त आता है, उन सबके लिये अधिक छींकों का होना हानिकारक है। किन्तु जिनके सिरमें वाष्पजनित परमाणु कम हो, वायु या कफका दोष थोड़ा हो उन्हें छींकोंसे हानि नहीं बल्कि लाभ ही होता है। इसी तरह जिनके दिमागमें पका हुआ दोष हो उनके लिये भी छींक लाभदायक है। पके हुए जुखाममें छींकें आवें तो उससे बलगम झड़ जाता है। स्वाभाविक छींकोंका आना मस्तिष्कके बलवान होनेका परिचय देता है। मृत्युके समय जब मस्तिष्क हीनबल हो जाता है तब छींकें नहीं

आतीं। स्त्रीके प्रसूता होते समय यदि छींकें आवें तो उससे गर्भ निकलनेमें सहायता मिलती है। क्योंकि छींकके वेगके साथ गर्भस्थ बालक और वह झिलमीं जिसमें बालक लिपटा रहता है बाहरकी ओर प्रेरित होती है।

चिकित्सा—(१) अधिक छींकोंके आने पर शिरोविरेचनके लिये तीक्ष्ण शिरोविरेचनीय द्रव्य नलिकामें भरकर प्रधमन नस्य फूँके। जिससे चलित और मर्म उद्घाटिन करने वाले दोष बाहर निकल आवें। जब प्रधमन नस्यसे कफ क्षीण पड़ जाय तब स्वेदन कराकर पसीनेके द्वारा उसे भी निकाल दे। इसमें वातकी वृद्धि भी होती है और वात ही छिक्काकी प्रेरणा करता है, अतएव वातशान्तिके लिये वायुनाशक स्निग्ध द्रव्य नाकमें डाले या कोई तेल सुरकावे। वायुकी शुद्धि और मस्तिष्ककी बल-वृद्धिके लिये शिरोवस्ति देवे।*

* चमड़ेकी पट्टी उड़दके आटेसे शिरके चारों ओर भौंहोंसे कुछ ऊपर चारों ओर दो-तीन अंगुल मोटी दीवाल सी बना दे फिर उसमें घी या कोई वातनाशक तेल गरम कर भर दें। उसे तबतक रहने दे जबतक नाकसे पानी, आँखसे आँसू और मुँहसे लार न बहने लगे और निश्चित रोगकी शान्ति न हो जावे। साधारणतः शिरोवस्तिके धारणका काल एक हजार मात्रा पर्यन्त है। पैरको घुटनेके बल डटाकर उसके चारों ओर घुमाते हुए चुटकी बजानेमें जितना समय लगता है उसे एक मात्रा कहते हैं। कमसे कम डेढ़ घण्टे तक रखनेसे काम चल जाता है। जिस दिन शिरोवस्तिका प्रयोग करना हो उस दिन भोजन न करे उसके पश्चात् हलका ताजा भोजन दे। जब शिरोवस्तिका समय हो चुके तब दीवालका एक सिरा खोलकर स्नेहको किसी पात्रमें सावधानीसे ले ले। इसके बाद पट्टी खोल दे या दीवालका आटा निकाल ले। तेलसे भरे शिरको साधारण कुनकुने जलसे अच्छी तरह धो डाले। यदि आवश्यकता पड़े तो पाँचवें अथवा सातवें दिन फिर शिरोवस्ति ले सकते हैं।

यों भी सिरमें वातनाशक तेलकी मालिश करे। वातनाशक स्निग्ध पदार्थ युक्त धूम्रपान करावे। इनके सिवाय अन्य भी जो हितकारी उपाय हैं उनका अवलम्बन करे। शुण्ठीतेल—(२) सोंठ, कडुवा-कूट, पिप्पली, वायविडंग और मुनक्का पीसकर कल्क बना तेल या घृत पाक कर ले। तैल या घृत पाकमें जो चौगुना जल डाला जाता है उसके बदले ऊपरके द्रव्योंका चौगुना काढ़ा छोड़े। इस तेल या घृतको नाकमें टपकानेसे अधिक छींकोंका आना बन्द होता है। साथ ही नासा पुटक रोग भी शान्त होता है। इस पाठमें बायविडंगका मूलपाठ "वेल्ल" है जिसे कई ग्रन्थकारोंने "विल्व" लिखकर वेल लेनेकी सलाह दी है। किन्तु वेलकी अपेक्षा हम वायविरंगको अच्छा समझते हैं। अष्टांग हृदयमें "वेल्ल" ही पाठ है। (३) घृतादिधूनी—घी, गुग्गुल और मोमको मिलाकर धूनी दे और उठे हुए धुएँको नाकसे ग्रहण करे अथवा इन वस्तुओंको चिलम या सिगरेटकी तरह बनाकर नाकके द्वारा धूम्रपान करे। (४) वातनाशक औषधियोंको पीस उनका रस निचोड़कर नाकमें छोड़े। (५) वातविध्वंस २ रत्ती और सर्वेश्वर पर्पटी २ रत्ती पीसकर २ पुड़िया बनावे। एक पुड़िया सबेरे, एक शामको भृगुहरीतकी या चित्रक हरीतकी के साथ लेव। (६) यदि छींकें अधिक आती हों और उनकी आवश्यकता न हो, अथवा उनसे कष्ट बोध होता हो और उन्हें बन्द करनेकी इच्छा हो तो सुगन्धित गुलरोगन और वेदका तेल नाकमें सुरके, साथ ही मीठे कुएँके पानीको कुनकुनाकर उससे शिर और माथे पर तरेरा दें। कानोंकी जड़ पर नारायण तेल गरमकर मलें और कानमें भी नारायण तेल छोड़ें। चोकरकाहरीरा—गेहूँके चोकरको पानीमें भिगा दें। जब अधिक देर तक भीगा रहे तब उसे मलकर कपड़ेसे छान लें। फिर अधिक घीकी छौंक देकर उसे पकावें। पकते समय उसमें थोड़ी हल्दी और मिश्री छोड़ दें। उसीको हरीराकी तरह बनाकर पिलावें।

तकिया गरमकर गुद्दीके नीचे रखें। चुपचाप पड़कर आराम करे कोई चिन्ता न करे। साथ ही साथ, पाँव, आँख, कान और तालू मलवावे। सेवका फल सूंघता रहे। धुआँ, धूल, धूप आदिसे बचे। यदि बच्चे को अधिक छींकें आती हों तो बकरीका वृक्क लेकर आगमें भूने; उससे जो पानी टपके उसे लेकर बच्चेकी नाकके भीतर मले अथवा नाकमें टपकावे। छींकोंका आना बन्द होगा।

भ्रंशथु 1965

प्रभ्रश्यते नासिकयातु यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु।
प्राक् संचितो मूर्धनि सूर्यतप्तस्तं भ्रंशथुं रोग मुदाहरन्ति॥

शिर और नासिकामें पहलेसे ही संचित गाढ़ा, विदग्ध, नमकीन कफ जब सूर्यकी धूपसे शिर गरम हो जाता है तब वह गल उठता है और नासिकासे गिरने लगता है तब उस रोगको भ्रंशथु कहते हैं। ऊपरके पाठमें सूर्यसे माथा तप्त होनेको लिखा है, किन्तु सुश्रुतने पित्तसे तप्त होनेकी बात कही है। सूर्य से तप्त होकर विगलित होना बाह्य कारण हुआ। पित्तकी ऊष्मासे भी कफ उत्तप्त हो सकता है और पित्तकी ऊष्मासे कफमें विदग्धता और विदग्धतासे लवणत्व आ सकता है। कफमें लवणत्व विदग्ध होने पर ही आता है। "प्राक्-संचित" शब्दसे यह प्रकट किया गया है कि कफ पहलेसे संचित रहता है, फिर पित्त या सूर्यकी ऊष्मासे वह प्रकुपित होता है और फिर प्रकुपित कफ भ्रंशथु रोगकी उत्पत्ति करता है। संचयके पश्चात प्रकोप क्रमप्राप्त साधारण मार्ग है; किन्तु कभी-कभी बिना संचयके भी प्रकोपकारक प्रबल कारण होनेसे प्रकोप हो सकता है। प्रमाणके लिये "न केवलं चयं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम्। अन्यतोऽपिहि कुप्यन्ति हेतुबाहुल्यतो बलात" श्लोक दिया जाता है। जैसे शिशिर ऋतुका संचित कफ बसन्तमें सूर्यकी प्रखर किरणोंसे उत्तप्त हो विगलित

होता और प्रकोपको प्राप्त होता है, उसी तरह शिरस्थ संचित कफ बाहरी या भीतरी उष्णता पाकर इस रोगमें भी पतला पड़कर प्रकुपित हो बाहर निकलता है। सुश्रुतकी डल्लन टीकामें स्पष्ट किया गया है कि प्रभ्रश्यते अर्थात् अधिकताके साथ नासिकाके द्वारा नीचे गिरता है अर्थात् मुखके द्वारा नहीं निकलता। अर्थात पहले तो वह गाढ़ा रहता फिर गर्मी पाकर टिघलता और नासिका द्वारा बाहर होता है। इस कफमें विदग्धताके अतिरिक्त दुर्गन्धि नहीं रहती। चरकने भ्रंशथु रोग अलग नहीं लिखा। मालूम पड़ता है परिस्रवमें ही उन्होंने इसका अन्तर्भाव कर लिया है। किन्तु चरक और सुश्रुतके वर्णनसे परिस्रव भी विवादग्रस्त हो जाता है। भ्रंशथुमें सान्द्र कफ उत्तप्त होकर विगलित होता है। चरक परिस्रवमें पीला गाढ़ा कफ निकलनेकी बात कहते हैं किन्तु सुश्रुत पानीके समान श्लेष्मा परिस्रवमें निकलनेकी बात कहते हैं। चरकका परिस्रव भ्रंशथुके लक्षणोंसे मिलता जुलता है।

योमस्तुलुंगाद्घन पीतपक्वः कफः स्रवेदेष परिस्रवस्तु।

अर्थात मस्तिष्कसे जब गाढ़ा पीला और पका हुआ कफ बाहर निकलता है तब उसे परिस्रव कहते हैं। गाढ़ा पीला पका कफ भ्रंशथुमें ही होता है। हाँ भ्रंशथुके विदग्ध और लवणाक्तका चिन्ह चरकने इसमें नहीं शामिल किया। वाग्भटने भी इसका अलग उल्लेख नहीं किया।

एलोपैथीमें चिरकालीन निर्गन्ध नासास्राव (Chronic Nasal discharge or Chronic Rhinorrhoea) का वर्णन है। इसका जिक्र पं० हरिहरप्रसाद पाण्डेने किया है। इसका भ्रंशथुमें समावेश हो सकता है। भ्रंशथुके समान इसमें भी कफ गाढ़ा और निर्गन्ध रहता है। भ्रंशथुका-सा नासास्राव कई अवस्थाओंमें हो सकता है। जब नासिकाकी श्लैष्मिककलामें पुराना शोथ उत्पन्न हो

जाता है और श्लैष्मिककला मोटी हो जाती है तब भी उससे स्राव होता है। साधारण चिरकालीन नासाशोथमें नासाकी श्लैष्मिककलामें रक्ताधिक्य युक्त पुराना शोथ होता है। कभी-कभी इसके बाद श्लैष्मिककलाकी वृद्धि भी हो जाती है। इसमें जो स्राव होता है वह पूयहीन कफ भी होता है और कभी-कभी पूययुक्त कफ भी होता है। जब इसमें नासिकाका अवरोध होता है तब स्वर भी बदल जाता है। उस समय नींदमें खर्राटेकी आवाज भी आने लगती है। इसका शोथ श्रुतिसुरंगा तक भी पहुँच सकता है। छोटी उमरके लड़कोंमें जब यह होता है तब श्वास कार्यमें भी कठिनाई मालूम पड़ती है। बार-बार जुखाम होने, हृदय और फुफ्फुसके रोगियों तथा प्रतिश्यायकी उपेक्षा करनेवालोंमें यह हो जाता है। नासामें क्षोभ उत्पन्न होते और चोट लगनेसे भी ऐसी परिस्थिति आसकती है। जिनके टांसिल या गलग्रन्थि बढ़ी रहती हैं, उनमें भी यह रोग हो सकता है। मद्यपान करनेवाले भी इस रोगके शिकार हो जाया करते हैं। जब नासिकाकी श्लैष्मिककलाकी अधिक वृद्धि हो जाती है और वह वृद्धि अधःशुक्तिकास्थिके अगले और पिछले सिरों पर हो जाती है तब चिरकालीन नासाशोथके लक्षण हो जाते हैं, मानसिक दुर्बलता प्रतीत होने लगती है और सिरमें भी दर्द होने लगता है। ऐसी दशामें भी भ्रंशथुके समान स्राव होता है।

चिकित्सा--भ्रंशथु रोग नष्ट करनेके लिये मणिपर्पटी रस २ रत्ती, चित्रक हरीतकी ३ माशा मिलाकर लिया करे। (२) केसरको गौ-घृतके साथ खूब खरलकर नस्य लिया करे। (३) दोनों समय भोजनके उपरान्त द्राक्षासव पिया करे। (४) क्षवथु रोगमें वर्णित नास्य, शिरोविरेचन, प्रधमननस्य और शिरोवस्तिका प्रयोग करे। (५) भोजन करनेके बाद तुरन्त उबाले हुए उड़दकी गरम-गरम घुघरी सेंधानमक मिलाकर चबावे, इससे चिरकालीन प्रतिश्याय और भ्रंशथु

नष्ट होता है। (६) **मागधी अवपीडन**—छोटी पीपर, सहिजनके बीज, वायविरंग और मिर्चको पानीके साथ पीसकर कपड़ेसे छान ले। इसी पानीको नाकमें टपकावे अथवा सुरके। इससे चिरकालीन प्रतिश्याय और अ'शथु नष्ट होता है। (७) घी, गुग्गुल और मोमका धूम्रपान करे। (८) ढाई तोले जलमें ५ रत्ती नमक या २॥ रत्ती बोरिकएसिड या ५ रत्ती खानेवाला सोडा अथवा ३ बूंद कार्बोलिक एसिड मिलाकर नाकको पिचकारीसे धोवे। इसके बाद २॥ तोले जलमें ५ रत्ती मेंथाल और ५ रत्ती युकेलिपटस मिलाकर लगावे। नौसादरकी भाफ सांसके द्वारा लेवे।

1965

दीप्ति

घ्राणेभृशं दाह समन्वितेतु विनिःसरेद्धूम दूवेह वायुः
नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तो व्यांधितु तेतं दीप्त सुदाहरेत्तम् ॥

जिस नासिका रोगमें जलनेके समान तीव्र दाह हो और नाकसे जो वायु निकले वह धुएँके समान हो, नाक जलती हुई सी प्रतीत हो उस रोगको नासाके प्रदीप्त होनेके कारण दीप्त कहते हैं। विदेह ने इसके लक्षण यों लिखे हैं--

धूमायते यदा नासा चलत्कृष्यति दीप्यते।
निश्चरेत्तम उच्छ्वासं तं व्याधिं दीप्तमादिशेत ॥

इसमें वायुसे नाकके सूखने और उच्छ्वासके समय आँखोंके सामने अंधेरा मालूम होनेकी बात अधिक है। चरकने—

"नासा प्रदीप्त व नरस्य यस्य दीप्त तु तं रोगमुदाहरन्ति" कहकर ही सन्तोष किया है। वाग्भट ने इसे अधिक स्पष्ट कर लिखा है।

रक्तेन नासा दग्धेन वाह्यान्तः स्पर्शनासहा
भवेद्धूमोपमोच्छ्वासा दीप्ति दहतीव च ॥

यह जलन क्यों होती है, इसे समझाते हुए वाग्भट कहते हैं कि नासाश्रित रक्तका विदाह होनेके कारण नाकमें जलन होती है और भीतर या बाहरसे नाकमें किसी प्रकारका स्पर्श सहन नहीं होता। इस जलनका परिणाम यह होता है कि नाकसे जो सांस भीतरसे बाहरको उच्छ्वास रूप छोड़ी जाती है वह धुएंके समान रहती है। अतएव ऐसा मालूम होता है कि नाकमें दहकती हुई आग जल रही है। ऐसे रोगको दीप्ति कहते हैं। इसमें मुख्य दोष पित्त है, जो रक्तको विदग्ध करता है। पित्त और रक्तकी इस उष्णताके कारण योगवाही होनेके कारण वायु भी सन्तप्त हो भाफके समान धुएंके समान उठता है। कफके जलांशके कारण इस धुएंकी उत्पत्ति सम्भव होती है। नासाश्रित पित्त अग्निका काम करता है, लकड़ी इन्धनके समान जलनेवाला रक्त है, उस जलनसे अदहनके समान कफसे भाफ निकलती है जो वायु रूप है और भाफके कारण धुआं-सा प्रतीत होता है। एलोपैथीके तीव्रनासा शोथके (Acute Rhinitis) में दीप्तिके लक्षण मिलते हैं। नासिकाकी श्लैष्मिक कला शोथके कारण रक्ताधिक्य हो जाता है, अतः उसमें जलन होती और नाकसे गरम सांस निकलती है।

चिकित्सा—(१) दीप्तरोगमें पित्तका प्रकोप होता है और रक्त पर उसका प्रभाव पड़ता है; अतएव इसकी चिकित्सा रक्तपित्त नाशक और पित्तशामक होनी चाहिये। (२) अरिष्टनस्य—शिरमें हलका स्वेदन कर नीमकी पत्तीका रस और रसवत घोलकर नस्य देनेके बाद नाक पर दूध और पानीका तरेरा देवे और भोजनके लिये मूंगका जूस देवे। मधुर और शीतल अन्य आहार भी दे सकते हैं। (३) नाक का दाह मिटानेके लिये स्नेह पान करें, स्निग्ध धूम्रपान और शिरोवस्ति देवे। (४) शिरपर नीमके पत्ते पानीमें उबालकर बफारा दें। नाकमें षडबिन्दु तेल छोड़ें। नाकके ऊपरी भागमें दशांग लेपमें घी मिलाकर पानीमें पीस लेप करें। (५) सुधापर्पटीयोग—सुधा-

पर्पटी ३ रत्ती, महापित्तान्तकरस २ रत्ती मिला मिश्री और शहदके साथ सवेरे शाम चटावे। (६) दिनमें दो बार प्रवालपिष्टी शहद इलायचीसे या दूध मिश्रीसे देवे।

प्रतिनाह

उच्छ्वास मार्गं तु कफः सवातो रून्ध्यात् प्रतीनाह मुदाहरेत्तम् ॥ ५॥

कफ वायुको साथ लेकर जब उच्छ्वास मार्ग श्वास छोड़नेके मार्गको रूंध कर बन्द कर देता है तब उस व्याधिको प्रतिनाह कहते हैं। वाग्भट कहते हैं।

नद्धत्व मिव नासायाः श्लेष्मरुद्धे न वायुना।
निःश्वासोच्छ्वास संरोधात् स्रोतसी संवृते इव॥

वाग्भट इसे **नासानाह** नाम देते हैं। इस रोगमें कफके द्वारा वायु रोक दिया जाता है, जिससे नाक भर जाती है। इससे न तो बाहरकी सांस भीतर खींची जा सकती और न भीतरकी सांस बाहर छोड़ी जा सकती। ऐसा मालूम पड़ता है मानों नाकके छिद्र बन्द हो गये हैं। सुश्रुत और भी साफ करते हुए कहते हैं—

कफावृतो वायुरुदान संज्ञो, यदा स्वमार्गे विगुणः स्थितः स्यात्।
घ्राणं वृणोतीव तदा स रोगो, नासाप्रतीनाह इति प्रदिष्टः।

यहां जिस वायुका अवरोध होता है, वह उदान वायु है। कफके द्वारा स्रोतस भर जानेसे उदान वायुको आने जानेका मार्ग नहीं मिलता इससे वह अपने मार्गसे विरुद्ध विगुणित हो जाता है। नाक बिल्कुल सट जाती है इसलिये नाकमें आनाह होनेके कारण इसे नासानाह रोग कहते हैं। आनाह या नाकका सट जाना यहाँ स्वतन्त्र रोगके रूपमें कहा गया है। किन्तु उपद्रव रूपमें यह प्रायः नाकके सभी रोगोंमें पाया जाता है। जुखाममें जो आनाह होता है वह अल्पकालीन होता है। नाक निकल जाने पर कम हो जाता है और जुखाम अच्छा होने पर बि

कुल जाता रहता है। जब आनाह चिरकालीन होता है तब रोगीको साँस लेने और छोड़ने पर जोर लगाना पड़ता है और सोते समय उसके गलेसे खर्राटे की आवाज निकला करती है। नाकसे सांस लेने या छोड़ने में कष्ट होता है इसलिये रोगी मुँह खोलकर साँस लेने और छोड़नेका प्रयत्न करता है। इस प्रकारका अवरोध कई कारणोंसे हुआ करता है। यदि नासान्तर्गत श्लैष्मिककला बढ़ जाय तो नाक सटी-सी रहती है नाकके भीतर फुंसी होने या नासार्श होने या नासान्तर्गत अर्बुद होने पर नाकमें रुकावट रहा करती है। नासाकी मध्यप्राचीरमें विद्रधि होने पर भी ऐसा आनाह होता है। कोई बाहरी पदार्थ नाकमें चला जाय और अटका रहे तब भी नाकमें रुकावट आ जाती है। नाकमें कोई अभिघात होनेसे शोथ या गाँठ पड़ जाय या नासामध्यप्राचीर ठीक रेखामें न हो किसी ओर खिसकी रहे या नासामध्यप्राचीर का एक तरफ या दोनों ओरका हिस्सा नासागुहाकी ओर लटक आवे और उसके एक पृष्ठमें कोना सा बन जाय। इसी प्रकार शुक्तिकास्थिकी वृद्धि होने पर भी ऐसा आनाह सम्भव है। इस प्रकारका आनाह अधिक दिन रहना भयानक होता है। रुकावटके कारण क्लेद भीतर बना रहता है, ग्रसनिकामें शोथ होनेका भय रहता है। यही बात नहीं इस आनाह के कारण रुके हुए दोषों की प्रवृत्ति दूसरे मार्गों की ओर होती है। जिससे विकारका प्रकार गले और जीभमें उतरता है और गलेमें दाने और क्षत तथा जीभमें निनावाँ होनेकी सम्भावना रहती है। इससे क्लोमशाखाकी श्लैष्मिककलामें भी प्रसेकयुक्त शोथ हो जाता है। यही नहीं दोषों की प्रवृत्ति श्वासनलिका द्वारा फुफ्फुसों तक पहुँच सकती है जिससे श्वास लेने और छोड़ने में कष्ट तो होता ही है, नाकका शब्द बदल जाता है, मिनमिनाहट और सानुनासिक स्वर निकलने लगते हैं। दोषकी प्रवृत्ति ग्रसनिका (Pharynx) की ओर होनेसे यहाँ छोटे-छोटे या खसखसके-से दाने पड़ जाते हैं। मुख-

निका एवं नासागुहामें विकार होनेसे इन दोनोंमें शोथ होनेका भय रहता है। ऐसा भय लसीका ग्रन्थियों के उपसर्गके कारण भी रहता है। जिससे मुख और मध्यकर्णमें शोथ हो जाया करता है। इन शोथयुक्त ग्रन्थियोंको डाक्टरीमें (Adenioid) कहते हैं। इसके कारण मुखसे साँस लेने और सोनेमें गला घुरघुरानेकी शिकायत होती है। कानका मध्यकर्ण शोथ यदि अधिक दिनों तक बना रहे तो वधिरता आनेका भय रहता है। गलेमें उतरने से मुख पाक, जिह्वापाक और मलशोथ हो जाता है, श्वासमार्गमें जानेसे श्वासकार्यमें बाधा पड़ती है और मूलकारण की परख न होने से श्वास की दवा करने पर भी लाभ नहीं होता।

नासावरोध

नासानाह का भेद नासावरोध है। नासावरोधमें भी मुख्य दोष-विकृति कफकी होती है। आनाहके समान ही नाकके छेद रुक जाते हैं और साँस लेनेमें कठिनाई मालूम पड़ती है। नासानाह में "स्रोतसी संवृते इव" का जो उल्लेख है। उसीके अन्तर्गत यह अवरोध मालूम पड़ता है। यह अवरोध चार प्रकारका देखा जाता है। (१) **नासा-गुहावरोध**—इसमें नासागुहा का अवरोध होता है। मस्तिष्कसे एक गाढ़ा चेपदार मवाद या विकृति कफ नासागुहामें उतर आता है और मार्ग को इस प्रकार बन्दकर देता है कि मस्तिष्कके अगले भाग तक वायु नहीं पहुँच पाता। वह दोष नासागुहामें स्थिर होकर इस प्रकार जम जाता है कि गाढ़ा और कड़ा पड़कर मांसके टुकड़ेके समान मालूम पड़ता है। इस दशामें सिरके अगले भागमें नाकके छेदोंमें बोझा-सा मालूम पड़ता है। **वरुणादि गण्डूष**—इसमें वरुण की छाल, अर्जुनकी छाल, सहिजनकी छाल, अग्निमन्थकी छाल, ककड़ासिंगी, चिलबिल्लकी छाल, करञ्ज, कटसरैयाकी जड़, पुनर्नवा, चीता, सतावर,

बेलकी छाल, कुशकी जड़, बड़ी भटकटैया, छोटी भटकटैया इनमें से जितनी मिलें, या सबको मिला काढा कर पिलावे और अञ्जीरको पानी में औटाकर उसमें शहद और कांजी मिलाकर कुल्ले करावे। तीक्ष्ण प्रधमननस्य दे। शिरोवस्ति देकर दोषों का प्रकोप शान्त करे। शिरोविरेचन देकर अटके हुए लोथड़ेको निकालनेका प्रयत्न करे अथवा समीप आ जाय तो चिमटीसे निकाल ले। **सुरसादिक्वाथ**—सफेदतुलसी, काली तुलसी, बनतुलसी, देवमंजरी, मरुवा, सुगन्धतृण, हरिद्वारीकुशा, कांसेकी जड़, नकछिकनी, वायविडंग, निर्गुण्डी, मकोयका काढ़ा देवे। इन्हीं औषधियोंके काढ़ेसे अथवा ऊपरवाले काढ़ेकी औषधियों के काढ़ेसे अवपीडक नस्य दे। जब रास्ता खुल जाय और दोष बहने लगे तब ताजा चुकन्दर और तितली नामक जड़ी का स्वरस नाक में डाले। बाबूना और दोनामरुवा औटाकर वफारा लें। **(२) सूक्ष्मरन्ध्रावरोध**—किसी-किसी मनुष्य के नासारन्ध्र स्वभावतः जन्मसे ही सकरे होते हैं। उनके नाकमें यदि थोड़ी भी दिमागी तरी नीचे उतर आवे तो नासारन्ध्र बन्द हो जाता है। जिससे नाकके दोनों छेद भर जाते हैं। ऐसी दशा होने पर शिरोवस्ति देकर शिरोविरेचन देवे। यूनानीदवा इतरीफल देता रहे जिससे दोषसंचित न होने पावें। **(३) झर्झरास्थि अवरोध**—नाककी टूँट पर झर्झरास्थि रखी हुई रहती है। यह स्पञ्जके समान सछिद्र होती है। इससे छनकर वायु भीतर ज्ञानशक्तिके केन्द्र तक पहुँचता है। यदि इस अस्थिके छिद्रोंमें गाढ़ा चेपदार मवाद या विकृत कफ चिपट जाय तो उसके छिद्र बन्द हो जाते हैं और वायु भीतर प्रवेश नहीं कर पाता। और नासिका का मल निकल जाता है। इसके बन्द होनेसे मस्तिष्क को वायु नहीं मिलता, गन्धज्ञान नहीं होता, नाकसे मिनमिनाहटकी आवाज निकलती है। दोषों को मुलायम करने के लिये और दिमागसे दोष निकालनेके लिये नासाध्मान के कथित उपायोंका अवलम्बन करे।

शिरोवस्ति और शिरोविरेचन दे। **कुंचिका अवपीडक**—कलौंजी पोदीना और इन्द्रायनका गूदा कूटके पेशाबमें पीसकर नाकमें टपकावे। इनमेंसे जितनी दवा मिलें उन्हींका उपयोग करे। कफ पतला करनेवाली औषधियोंके काढ़ासे तरेरा दे। अवपीडन नस्य दे। नस्य देते समय रोगी अपने मुंहमें पानीका कुल्ला भर ले और गर्दन पीछेकी ओर झुकाकर जोरसे सांस खींचे। (४) **स्रोतसावरोध**—नासावरोधका एक और भेद स्रोतसावरोध है। दिमागके अगले भाग और दोनों पर्दोंमें जो दाहिनी बायीं ओर स्रोतस हैं उनमें दुष्ट प्रकृति उत्पन्न हो अथवा नाकके दोनों घ्राणस्तम्भोंमें दुष्ट प्रकृति उत्पन्न हो जानेसे बातचीत करनेमें तो अन्तर नहीं आता परन्तु दोषानुसार उपद्रव होते हैं। यदि दुष्ट प्रकृति पित्त प्रकोप या उष्णताके कारण हो तो सिरके अगले भागमें और माथेमें गर्मी मालूम पड़ती है। यदि कफ प्रकोपके कारण विकृत कफ या मवाद उतरा हो तो वह दुष्ट प्रकृति दिमागकी तरीसे आयी हुई होगी। यदि यह दुष्ट प्रकृति कच्ची हो तो नाकमें से निकलनेका कोई चिन्ह नहीं मिलेगा। यदि दुष्ट प्रकृतिके साथ मवाद भी हो तो सिरके अगले भागमें भारीपन मालूम होगा। दिमाग कमजोर हो जाता है और वह तरीको नहीं खींच सकता। जिससे वह मलशोधन नहीं कर पाता। यदि वायु दोष से रूक्ष या खुश्क दुष्ट प्रकृति होगी तो दिमागमें तरी नहीं उत्पन्न हो सकेगी। प्रायः सान्निपातिक ज्वरोंके बाद भी ऐसी अवस्था आ जाती है। दिमागकी इस लाचारीसे स्रोतसोंमें अवरोध हो जायगा। सांस लेनेमें कठिनाई होगी और गन्ध ज्ञानमें भी अन्तर आ जायगा।

यदि दुष्ट प्रकृति साधारण हो तो आवश्यक संयम द्वारा साधारण उपायोंसे दोष निकालनेका प्रयत्न करे। सुगन्धित वस्तु सूंघें, सिर पर तरेरा दे, नस्य दें। यदि दोष कुछ प्रबल हो तो आवश्यक काढ़े, नस्य, अवपीडन, शिरोविरेचन आदि उपाय काममें लावें।

इस अवरोधके कारण यदि दोष मस्तिष्ककी ओर बढ़ते हैं तो मस्तिष्क शक्तिमें भी बाधा पड़ती है और बुद्धि मन्द पड़ जाती है। अतएव इसकी चिकित्सामें बहुत सावधानीकी आवश्यकता है।

चिकित्सा—(१) नासानाहकी चिकित्सा करते समय इस बातका प्रयत्न करे कि घनीभूत दोष पतले पड़कर निकलने लगें। नाकके बाहरी भागमें घृतयुक्त दशांगलेप लगावे, जिससे भीतरके दोष पतले पड़ें। नाकमें नारायण तेल अथवा कफ प्रतिश्यायमें कहा हुआ बलादितेल गरम कर नाकमें छोड़े, विदार्यादि गणकी औषधियोंका काढ़ा पिलाया करे। अतिबलालेह—कंघीके बीजकी मींगी, खीराके बीजकी मींगी, बादामकी मींगी और बादामका तेल, मक्खन, मिश्रीके साथ खिलावे। गरम दूधमें घृत या बादामका तेल मिलाकर पिलावे। (२) वातराक्षस २ रत्ती तथा श्वासकुठार २ रत्ती लेकर दो पुड़िया बनावे। सवेरे-शाम इसे कण्टकारी अवलेह अथवा चित्रकहरीतकी अथवा च्यवनप्राशके साथ खिलावे। (३) सुवर्णमालती वसन्त अथवा स्वर्णमाक्षिक मधु पीपल अथवा घीके साथ चटावे। (४) व्योषादिवटी मुखमें रख चूसा करे। (५) अग्निमंथके पत्तोंको गीले कपड़ेमें लपेट ऊपरसे गीली मिट्टी लपेट गोला बना पुटपाक कर उसीके रसमें नमक और तेल मिलाकर पिलावे। तथा पिप्पली, सहिंजनके बीज; वायविडङ्ग और मिर्चको पीस अवपीडन नस्य दे और शिरोवस्ति भी दे। (६) सुश्रुतका कहना है कि नासानाहमें प्रधानतासे स्नेह पान करावे, स्निग्ध धूम्रपानका प्रयोग करे, शिरोवस्ति दे, नित्य बला तैलका उपयोग करे अर्थात नाकमें टपकावे तथा अन्य वातव्याधि नाशक उपाय करे। (७) वाग्भट कहते हैं कि बला तैल पिलावे, स्निग्ध धूम्रपान और स्निग्ध स्वेद करावे तथा भोजन मांसरसके साथ देवे। मांसरस जो न लेंवे तरकारीके रसेसे भोजन करें या दूध लें। (८) गौका घी नित्य पिलावे। (९) कभी-कभी ऐसी परिस्थिति होती है कि गाढ़े कफके कारण वायु रुककर

उसमें भी गाढ़ापन आ जाता है, इससे नाकका छेद बन्द हो जाता है। यदि झर्झरास्थिके छिद्र बन्द न हों तो भीतरकी सांस वाहर निकालनेमें कठिनाई होगी, किन्तु नाकका एक छिद्र सांस लेनेके लिये खुला हुआ-सा मालूम पड़ेगा और एक बन्द रहेगा। ऐसी दशामें भी मस्तिष्क परिशोधनकी आवश्यकता है। दिमाग साफ करनेसे रुका हुआ वायु निकलनेका अवकाश पावेगा। रुके दोष निकालनेके लिये कालीमिर्च और जुन्दबेस्तर (यूनानी औषधि) मिलाकर नस्य ले। इससे छींकें आकर दिमाग और नाककी सफाई होगी। इसी प्रकार अजमोदा, राई, जीरा, पोदीना पानीमें पकाकर उसकी भापका वफारा लें। कड़ू बादामके तेलमें राई और और कालीमिर्च मिलाकर नाकमें टपकावें।

परिस्रव

अजस्रमच्छं सलिल प्रकाशं, यस्याविवर्णं स्रवतीह नासा।
रात्रौ विशेषेण हितं विकारं, नासापरिस्राव मिति व्यवस्येत्॥

सुश्रुत कहते हैं कि शृङ्गाटक स्रोतसमें कफ पिघलकर पतला पड़ जाता है, वही कफ निरन्तर, साफ सफेद अविवर्ण, पानीके समान चमकता हुआ नाकसे टपकता रहता है—बहता रहता है। इसका जोर रातमें कुछ विशेषताके साथ अधिकताके साथ होता है परिस्राव होते रहनेके कारण इसे नासापरिस्राव कहते हैं। वाग्भट भी इसीका समर्थन करते हैं।

······स्रावस्तु, तत्संज्ञः श्लेष्म सम्भवः।
अच्छो जलोपमोऽजस्रं विशेषान्निशिजायते।

सुश्रुतने दोषविकृतिका विषय स्पष्ट नहीं किया; किन्तु वाग्भट कहते हैं कि श्लेष्म सम्भव विकार स्वच्छ जलके समान निरन्तर बहता रहता है। अतएव इसे नासास्राव या घ्राणस्राव कहते हैं। यह विकार विशेषकर रातमें अधिक होता है। इसमें पित्त या वायुकी विकृति

सम्मिलित नहीं रहती, इसलिये बहनेवाला जलांश भी पतला और साफ सफेद प्रतीत होता है। कफ दोषकी प्रधानताको "कल्याणकारक" भी मानता है।

अहर्निशं यत्कफदोषकोपतः स्रावत्यजस्रं सलिलं स्वनासिकाम्।
ततः परिस्रावि विकारि मूर्जिताम्, जयेत्कफघ्नौषध चूर्ण पीडनैः॥

केवल कफ दोष होनेसे ही स्रावका जल सफेद और पतला रह सकता है। चरकने परिस्रवका जो लक्षण दिया है, वह दूसरे ढंगका मालूम पड़ता है।

यो मस्तुलुङ्गाद् घन पीत पक्वः कफः स्रवेदेष परिस्रवस्तु।

अर्थात मस्तुलुंग मस्तिष्कसे जो घन अर्थात गाढ़ा पीला पका हुआ कफ निकलता है, उसे परिस्रव कहते हैं। अधिकांश मत सफेद और पतले स्रावका है। इसमें गाढ़ा और पीला कहा गया है। कफ दोषसे स्रावमें गाढ़ापन तो आ सकता है; परन्तु पीलापन बिना पित्त संसर्गके सहज ही नहीं होगा। चरकके मतसे यह स्रावजल मस्तुलुंग मस्तिष्कसे आता है, किन्तु सुश्रुतके टीकाकार डल्लनका मत है कि वह स्राव शृङ्गाटक स्रोतससे आता है। यह भी उचित प्रतीत होता है। भ्रंशथुमें गाढ़े कफका आना कहा ही गया है। अतः परिस्रावमें गाढ़ापन कहना समुचित नहीं प्रतीत होता। माधवनिदान, भावप्रकाश, आयुर्वेदविज्ञान, योगरत्नाकर, गदनिग्रह आदिमें निम्न पाठ है—

घ्राणाद् घनः पीत सितस्तनुर्वा,
दोषः स्रवेत् स्राव सुदाहरेत्तम्॥

इस पाठका समर्थन पं० जीवराम कालिदास तथा कविराज नगेन्द्रनाथ सेन भी करते हैं। इसके अनुसार नासास्रावमें नाकसे कभी घना अर्थात गाढ़ा और कभी तनु अर्थात पतला तथा रंगमें कभी पीला और कभी सफेद दोषका स्राव होता है। मालूम पड़ता है, घनास्राव होने पर पीलेपनकी और पतला होने पर सफेदकी कल्पना की गयी है।

क्वचित प्रसंगमें ऐसा सम्भव है। किन्तु गाढ़ा स्राव निरन्तर नहीं होता और टपकता नहीं रहता, वह प्रायः छिनकने पर निकलता है। अतएव परिस्राव वर्णित दोषका पतला होना ही अधिक संगत प्रतीत होता है। कभी-कभी नाक या सिर पर चोट लगनेसे जल जैसा द्रव पदार्थ नाकसे टपकता है। कभी किसी ऐसे रोगमें भी नासिकासे जलके समान पतला द्रव पदार्थ बूंद-बूंद टपक सकता है, जिसमें नासागुहाका सम्बन्ध मस्तिष्क-सुषुम्ना जलसे हो जाता है। ऐसा जल चालनी पटलके द्वारा नासागुहामें आता है। यह मस्तिष्क-सुषुम्ना द्रव (Cerebro-Spinal fliud) होता है। सम्भव है चरकका अभिप्राय मस्तुलुंगजनित इसी स्रावसे हो; किन्तु इसमें भी स्राव पतला ही रहता है, गाढ़ा नहीं। सुश्रुतोक्त नासास्रावके लक्षण एलोपैथीके (Acute Rhinorrhoea) से मिलते-जुलते हैं। जिन बच्चोंके माता-पिताको फिरंग होता है और जिनमें माता-पिताके फिरंग दोष जन्मजात रूपमें आ जाते हैं, उन बच्चोंकी नाकसे भी इस प्रकार पानी बहा करता है। जिन लड़कोंको डिफथीरिया या गलरोहिणी होती है, उनकी नाकसे भी पतला पानी बहा करता है। सयाने लोगोंकी नाकसे इस प्रकार पानी कच्चे जुखामके समय बहा करता है। अथवा नासागत अस्थिकोटरोंमें तीव्रशोथ होने पर भी इस प्रकारका स्राव हुआ करता है।

तीव्रनासाशोथमें जो परिस्राव होता है वह नासिकाकी श्लेष्मकलामें तीव्रशोथ होनेसे होता है। नासागत श्लेष्मलकलामें क्षोभ होनेसे धूल या कोई बाहरी पदार्थ पहुँचनेसे, चोट लगने या सिरमें जबरदस्त ठंडक लगनेसे ऐसी अवस्था आती है। कभी-कभी जनपदोध्वंस रूपमें इनफ्लुएञ्जाके समान रोग फैलने पर श्लेष्मलकलामें शोथ हो जाता है। चिरकालीन नासाशोथ होने पर अथवा नासागुहा या नासाकोटरके उपसर्गयुक्त (Septic) होने पर तीव्र नासाशोथ हो सकता है। यद्यपि यह रोगघातक नहीं है तथापि अधिक दिनों तक बना रहे अथवा बार-बार

होता रहे तो मध्यकर्णशोथ तथा क्लोमशाखाकी श्लेष्मलकलामें शोथ (Bronchitis) उत्पन्न कर कष्ट देनेका कारण हो सकता है। तीव्र प्रतिश्यायमें जो पानी बहता है वह कुछ मवादके समान कफके रूपमें रहता है। ऐसे प्रतिश्यायकी नवीनावस्थामें आँखोंसे पानी बहता और छींकें भी आती हैं। जिन्हें जल्दी-जल्दी जुकाम होता है, उनके प्रत्येक आक्रमणमें पानी बहने और छींकें आनेकी शिकायत रहती है। कभी-कभी सिरके अगले भागमें दर्द भी होता है। हल्की हरारत रहती है और मनमें उदासी बनी रहती है। उपदंशजनित नासिकास्राव नासिकाकी श्लेष्मिककलामें शोथ (Snuffles) हो जाने पर कुछ हफ़्तोंके बच्चोंमें भी हो जाता है। उपदंशका प्रभाव अधिक होने पर साँसमें आवाज़ आती है, स्रावमें कभी-कभी रक्तका मिश्रण भी रहता है। डिपथीरिया या गलरोहिणी वाले बच्चोंके स्रावमें भी रक्तका मिश्रण हो सकता है। गलेमें जैसी मलाई लिपटी-सी भूरी सफेद झिल्ली रहती है वैसी ही नासामध्यप्राचीर और अध:शुक्तिकास्थि तक पहुँच जाती है। नासिकागुहा और ऊपरी ओंठ छिल जाते हैं तथा नासिकामें अवरोध हो जाता है। कभी-कभी एकदम जोश या आवेशकी अवस्था उपस्थित होने पर अथवा कोई तीव्रगन्धयुक्त पदार्थ सूँघने पर भी नाकसे पानी बहने लगता है किन्तु यह क्षणस्थायी होता है। ग्लएडर्स (Glonders) रोगमें नाकसे पानी बहना एक प्रधान लक्षण होता है। चिकित्सा करते समय इन बातों पर विचार कर लेना और रोगके मूलकारण का पता लगा लेना आवश्यक है।

चिकित्सा (१)—नासापरिस्रावमें कफनाशक तीक्ष्ण नस्यकी योजना कर दूषितजल और क्लेद निकाल दे। **मन:सिलादिनस्य**—बायविडङ्ग, सेंधानमक, हींग, गुग्गुल, मैनसिल और घोड़वचका चूर्ण कर नस्य देवे। अच्छा हो कि इस चूर्णको किसी नलीमें भर मुँहसे फूँक प्रधमन नस्य विधिसे भीतर पहुँचावे। (२) **कलिङ्गादि अवपीड़न**

का प्रयोग करे, कलिंग अर्थात् इन्द्रजव, हींग, मिर्च, लाख, तुलसीके बीज या पत्ते, कायफल, कड़ुवाकूट, घोड़वच, सहिजनके बीज और बायविडङ्ग समभाग लेकर गौमूत्रमें पीस छानकर इसका सरस नाकमें सुरके या टपकावे। इन्हीं औषधियोंको दो-दो तोले लेकर कल्क करे और एकसेर घीमें यह कल्क और चारसेर पानी मिलाकर घृत तैयार करे। इस घृतको पीनेके लिये भी देवे। अवपीड़न प्रयोग स्वरसके नस्यद्वारा भी होता है और भोजनके पहले घृतपानके रूपमें भी होता है। प्रमाण वाग्भट सूत्रस्थान चतुर्थ अध्याय "मूत्रजेषु च पाने च प्राग्भक्तं शस्यते घृतम्। जीर्णान्तिकं चोत्तमया मात्रया योजना द्वयम्। अवपीडक मेतच्च संज्ञितं......" अतएव इस घृतको भोजनके पहले दो तोले पी ले तब भोजन करे। यह एक योजना हुई। दूसरी योजना यह है कि शौच मुखशुद्धिके पश्चात् इतना घी पीवे कि एक दिन रातमें जितना पच सके। (३) देवदारुधूम्रपान—देवदारु और चित्रकमूल कुचलकर चिलममें अथवा चुरुटके समान किसी नली या पत्ते या कागजकी नलीमें रख अग्निरख नाकके द्वारा धूम्रपान करे। इंगुदीवर्ती (४)—इंगुदीवृक्षके फलका गूदा अथवा वृक्षकी छाल, दारुहल्दी, दन्ती मूल, अपामार्गके बीज अथवा जड़, तुलसीके बीज अथवा पत्ते समान भाग लेकर सिल पर पानीसे खूब बारीक पीस ले। फिर इसमें कुछ व्याघ्रीतैल अथवा शुंठ्यादि तैल मिला सान ले। फिर इस कल्कको एक पतले १२ अंगुल लम्बे सरकण्डेमें आठ अंगुल तक मोटा लपेट कर बत्ती बना ले। इसके बाद छायामें सुखा ले। जब सूख जाय तब उसमेंसे सरकण्डेको सावधानीसे निकाल ले। अच्छा हो कि औषधि लपेटनेके पहले सरण्डेमें थोड़ा तेल चुपड़ ले। फिर एक १६ अंगुल लम्बी पोली नलीमें उक्त बत्तीको फाँसकर बत्तीके ऊपरी सिरे पर आग लगा दे। नलीके द्वारा धुआँ कभी मुख द्वारा और कभी नाक द्वारा खींचकर धूम्रपान करे। अथवा हींग, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, कुरैयाकी छाल, निगुण्डीके बीज

अथवा पत्ती, लाख, तुलसीके बीज, कायफल, घोड़बच, कूट, सहिजनके बीज, बायविडङ्ग इन्हें पीसकर स्वरस निकाल अवपीड़न नस्य दे। (५) रोहिषपोटली—रोहिषतृण, सफेदजीरा, वच, अग्निमन्थके पत्ते और चोरकका चूर्णकर एक कपड़ेमें बाँध पोटली बना ले और उसे दिनभर रोगी सूंघा करे अथवा दालचीनी, तेजपत्र, कलीमिर्च, इलायची, स्याहजीराका चूर्णकर पोटली बना सूँघा करे। वाग्भटने इन दोनों प्रकारके चूर्णोंको एकमें कर पोटली बनानेकी सलाह दी है। इस उपायसे छींक और प्रतीनाहमें भी लाभ होता है। (६) नाकके ऊपर दशाङ्गलेप लगावे। (७) सुवर्णवसन्तमालती २ माशे, लौहपर्वटी आधातोला, चौंसठपहरी पीपर ३ माशे सबको मिलाकर ३० भाग करे सवेरे शाम एक-एक भाग दवा मधु अथवा वासावलेह से चाटें। (८) डाक्टर लोगोंका कहना है ऐसे रोगीकी खाँसी, छींक और स्रावसे रोगके जीवाणु वायुमण्डलमें मिल जाते हैं। इसलिये दूसरोंमें उसका संक्रमण न होने पावें इसकी सावधानी रखनी चाहिये। रोगी एक रुमाल रखे, उसीमें छींके और उसीमें स्राव गिराये। नाकमें कपूर सूंघे और कपूर एवं भुना सोहागा नाकमें लगाये। रोगी आराम करे, धूलधक्कड़ बचे, गर्मी-सर्दी, नमीसे बचाव करे। पका हुआ पानी पीवे। यदि किसी अन्य रोग के कारण यह उपद्रव हो तो उसकी भी दवा करे।

नासाशोष

घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन गाढं प्रतप्ते परिशोषिते च।
कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन् स नासापरिशोष उक्तः॥

घ्राणाश्रित स्रोतसोंमें जो वायु रहता है वह जब अपने रूक्ष स्वभाव के कारण उस स्रोतसको सुखा देता है और प्रतप्त करनेवाले अपने स्वभावसे पित्त भी वहाँ जाकर उसकी सहायता करता है तब परिशोषित स्रोतस श्वासोच्छ्वास क्रियाका सम्पादन समुचित रूपसे नहीं कर पाता।

श्वास लेते समय वह रोगी ऊपर सिर उठाकर साँस खींचनेका प्रयत्न करता है। भीतरकी साँस बाहर छोड़ते समय नीचे सिर झुका देता है। उसे इस श्वासोच्छ्वास क्रिया सम्पादन करनेमें कठिनाई होती है। इस प्रकारके रोगको नासाशोष या नासापरिशोष कहते हैं। मूल पाठसे मालूम पड़ता है, वायु स्रोतसको ही सुखाता है नासाश्रित श्लेष्माको नहीं। श्लेष्माका काम अपने क्लेद और श्लक्ष्णगुणसे तरी बनाये रखता है परन्तु वह वायु और पित्त दोनोंके प्रकोपके कारण मालूम पड़ता है, स्नेहन और श्लक्ष्ण क्रिया नहीं कर पाता। किन्तु माधव निदानके इस पाठको भावप्रकाशने प्रथम दो पाद इस प्रकार संशोधन कर लिखे हैं "घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषितेच"। ऐसी दशामें यों अर्थ होगा कि घ्राणाश्रित श्लेष्माको वायु सुखा देता है और पित्त उसे अच्छी तरह जला देता है तब वह आशय रूक्ष होकर अपनी क्रिया सम्पादन करनेमें असमर्थ होता है, जिससे रोगी कठिनाईके साथ ऊपर नीचे मुंह कर श्वासोच्छ्वास सम्पादन करनेका प्रयत्न करता है। यह पाठ कुछ समुचित भी मालूम पड़ता है; क्योंकि आचार्य विदेह इसके लक्षण लिखते हुए कहते हैं—

वात-पित्तौ यदा घ्राण कफरक्तं विशोषयेत्।
तदा स्यादुच्छ्वसेन्नासा तस्य शुष्कं विधीयते॥

अर्थात जब वात और पित्त घ्राणाश्रित कफ और रक्तको सुखा देते हैं तब रोगी कठिनाईसे सांस छोड़ता है; क्योंकि उसकी नाक सूखी रहती है। अपने क्लेदसे कफ स्रोतसको नरम बनाये रखता है वह काम उसके सूख जानेसे नहीं हो पाता अतएव नाक भी सूखी रहती है। सुश्रुतका पाठ ऊपरके पाठान्तर भेदके अनुसार है।

घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च
समुच्छ्वसित्यूर्ध्व मधश्च कृच्छ्राद्यस्तस्य नासापरिशोषउक्तः

इसके अर्थमें कोई अन्तर नहीं है। चरकने नासाशोषका लक्षण यों दिया है—

क्रुद्धः स संशोष्य कफं तु नासा श्रृंगाटकघ्राण विशोषणं च॥

अर्थात स वह वायु क्रुद्ध होकर प्रकुपित होकर कफको सुखा देता है जिसके कारण नासा-श्रृंगाटक और घ्राण भी सूख जाते हैं। अतएव इस रोगको घ्राणविशोषणके कारण नासाशोष कहते हैं। माधव निदानने जिस स्रोतसका उल्लेख किया है चरकने उसका नाम निर्देशकर स्पष्ट कर दिया है। अर्थात वह सूखनेकी क्रिया नाशामें तो होती ही है साथ ही श्रृंगाटकमें भी होती है। श्रृंगाटक नामके चार मर्म सिरासन्निपात रूपमें घ्राण-श्रोत्र-अक्षि और जिह्वाका सन्तर्पण करनेवाली सिराओंके बीचमें रहते हैं। जब इनका सन्तर्पण नहीं हो पाता तब उनके द्वारा नासिकाको कार्य सम्पादन करनेमें सहायता भी नहीं मिल पाती। नासिकामें गन्ध ज्ञानकी शक्ति इन श्रृंगाटकोंके ही कारण आती है। आचार्य वाग्भट नासाशोषका लक्षण यों देते हैं—

शोषयन्नासिका स्रोतः कफञ्च कुरुतेऽनिलः
शूक पूर्णाभ नासात्वं कृच्छ्रादुच्छ्वसनं ततः
स्मृतोऽसौ नासिकाशोषो··············॥

यह वर्णन अधिक स्पष्ट है। अर्थात् वायु नासिकास्रोतका शोष कर देता है और साथ ही कफको भी सुखा देता है। इससे रोगीको ऐसा मालूम होता है मानों नाकमें जौकी वालीके शूक-शूगर भरे हुए हैं। फलस्वरूप रोगी कठिनाईके साथ सांस छोड़ पाता है।

चिकित्सा—नासाशोषमें बलातैल पीनेको दे और नाकमें भी लगावे। **बलातैल**—पहले दो सेर काले तिलका तेल लेकर मजीठ, हल्दी, नागरमोथा, आदि शास्त्रोक्त द्रव्योंसे मूर्छन संस्कार करे। इसके बाद बरियारीकी जड़ दो सेर लेकर ३२ सेर पानीमें पकावें जब आठ

सेर रहे तब उतार छान लें। पहले तेलको कड़ाहीमें चढ़ाकर गरम करें जब उसमें स्थिरता आवे जब बरियारीका काढ़ा छोड़कर पकावें। जब काढ़ेका कुछ अंश शेष रहे तब उसमें दशमूलका काढ़ा डाले। बेल, अग्निमंथ, श्योनाक, पाटला, काश्मरी, सालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी भटकटैया, छोटी भटकटैया, और गोखरू इनसे पहले पांच वृक्षोंकी छाल और पिछले ५ द्रव्योंका पंचाग सब मिलाकर दो सेर लें और उसे भी ३२ सेर पानीमें पकावें जब ८ सेर रहे तब छानकर उसी तेलमें डालें। फिर यव, सूखे बेरका चूर्ण और कुलथी, तीनों मिलकर दो सेर लेवें और ३२ सेर जलमें पकाकर ८ सेर शेष रहने पर छानकर उसी तेलमें पकानेके लिये छोड़ें। फिर गोदुग्ध ८ सेर लेकर छोड़ें। इसके बाद काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, मुलेठी, जीवन्ती, बनमूंग, बनउड़द, सतावर, देवदारु, मजीठ, कूट, छरीला, तगर, अगरु, सेंधानमक, वच, पुनर्नवा, जटामांसी, अनन्तमूल, प्रियंगु, तेजपात, सौंफ, असगन्ध, इलायची सब दवाइयाँ मिलाकर एक पाव लेकर पीसकर दो सेर जल मिला उसी तेलमें छोड़ पाक कर लें। सिद्ध होने पर छान कर रखें। इसे **बलातैल** कहते हैं। यह समस्त वात विकारोंको दूर करनेवाला, गर्भ स्थिर करानेवाला, प्रसूता स्त्रियोंके लिये हितकारक, दुर्बलोंको बल देनेवाला, शोष रोगियोंको तरोताजा बनानेवाला है। (२) स्निग्ध धूम्रपान तथा स्निग्धस्वेद, और शिरोवस्ति करे, इसमें मांसभक्षण हितकारी है। (३) अणुतैलकी नस्य दे। **अणुतैल**—चार सेर काले तिल साफ कर लेवे, उसमें चार सेर बकरीका दूध डाल रात भर रहने दे। सबेरे बकरीके दूधके साथ उन तिलोंको सिल पर पीसे। फिर एक चौड़े मुंहकी हण्डीमें बकरीका दूध डाल आग पर चढ़ा दे। हण्डीके मुख पर एक साफ कपड़ा बांध उसी पर पिसे हुए तिल डाल दे और एक बड़ी परईसे हण्डीका मुंह ढांक दे। जब तिलोंकी पीठी अच्छी तरह स्वेदित हो जाय तब नीचे उतार

कर उसमें मुलहठी चूर्ण मिलावे। इसके बाद बकरीके दूधके छींटे देकर तिलकी पीठीको मलकर उसमेंसे तेल निचोड़े उसी तेलको रास्ना मुलेठी और सेंधानमकके कल्कसे (तेलका चौथाई कल्क हो) तैल पाक करे। तैल पाकमें कल्कके साथ तेलका चौगुना पानी छोड़े। इसी प्रकार इन वस्तुओंके कल्कसे १० बार तेल पाक करे। यह सूक्ष्म स्रोतसोंमें प्रविष्ट हो जाता है, इसीसे इसे अणु तेल कहते हैं। वातविकार जनित सभी नासा विकारमें नस्यके लिये इसका उपयोग करना चाहिये। (४) दूधमें घी मिलाकर पीवे। भोजनके पहले घृत पान करे। जांगल्य जीवोंके मांसका आहारमें व्यवहार करे। स्नेहन-स्वेदन और स्नैहिक धूम्रपान करे।

नासापुटक

पित्तश्लेष्मावरुद्धोऽन्तर्नासायां शोषयेन्मरुत्
कफं स शुष्कपुटतां प्राप्नोति पुटकन्तु तत्।

अर्थात् पित्त और श्लेष्माके द्वारा जब वायु नासिकाके भीतर रोक लिया जाता है तब वह अवरुद्ध हुआ वायु भीतर ही भीतर कफ और उसके श्लक्ष्ण अंशको सुखा देता है। इस प्रकार सूखनेसे कफकी परत-परत पपड़ी जम जाती है। इस रोगको नासापुटक कहते हैं। चरक, सुश्रुत, माधवनिदान या भावप्रकाश आदिमें इसका वर्णन नहीं हुआ। इसे आचार्य वाग्भटने अपने ग्रन्थमें दिया है। मालूम पड़ता है यह नासाशोषका एक विरुद्ध स्वरूप है। नासाशोषमें प्रकुपित वायु स्रोतस और कफको सुखाता है। इसमें अवरुद्ध वायु कफको सुखाता है। इसमें मुख्य दोषत्व कफ और पित्तको प्राप्त है। किन्तु कफ वायुको रोकता है, उसकी उसे यह सजा मिलती है कि वह स्वयं सूख जाता है। क्योंकि भीतर अवरुद्ध होने पर भी वायु अपने रुक्ष स्वभावका प्रभाव तो प्रकट करेगा ही।

चिकित्सा—नासापुटककी चिकित्सा क्षवथुके समान करनी चाहिये। तीक्ष्ण चूर्णका प्रधमन नस्य दे, जिससे कफ और पित्तका अवरोध दूर हो और वायु बाहर निकलनेके लिये स्वतन्त्र होजाय। इसके बाद नासाशोषके ढङ्ग पर चिकित्सा कर कफकी चैलियां निकालनेका प्रयत्न करे। शुण्ठ्यादि तेलकी नस्य लेकर कफके पुटक ढीले करे। **शुंठ्यादितैल**—सोंठ, कडुवाकूट, पिप्पली, वायविडंग, और मुनक्का दो-दो तोले लेकर पीसे और दो सेर पानीमें घोलकर आधसेर तेल सिद्ध करले। इसीकी नास दिया करे। इन्हीं औषधियोंके कल्कसे, **शुंठ्यादिघृत**—भी तैयार कर ले। सब विधि यही रहेगी। केवल घृतमें कडुवाकूटके बदले मीठा कूट डाले। घृतको नस्य और पानमें काम लावे।

गन्धविकृति

भिन्न-भिन्न रोगोंमें जो गन्ध विकृति होती है, उसका वर्णन यथा स्थान हो चुका है। पाठक यह भी जान चुके हैं कि शृंगाटिका मर्म और गन्धग्राही नाड़ीमें तथा श्लैष्मिककलामें दोष संचय या प्रकोप होनेसे गन्ध ज्ञानमें अन्तर आ जाता है; परन्तु गन्ध ज्ञान विकृतिके भिन्न-भिन्न स्वरूपोंका अलग वर्णन कर देनेसे इसका अच्छा परिचय हो जावेगा। गन्धग्राही अवयवोंमें जब दोष विकृति एकत्र होती है तब सूंघनेवाली शक्तिका प्राकृतिक मार्ग अवरुद्ध हो जाता है या फिर जाता है। इस विकृतिके कारण गन्ध ग्रहण शक्तिमें तीन प्रकारके विकार देखे जाते हैं।

समगन्धप्रकृति—पहली विकृति मस्तिष्कसे सम्बन्धसे रखती है। जब मस्तिष्कके प्रथम भागमें दूषित प्रकृति उत्पन्न हो जाती है तब सूंघनेवाली शक्ति केवल एक प्रकारकी गन्धका ही अनुभव कर पाती है। अर्थात उस मनुष्यको सब प्रकारकी गंध-एक प्रकार की ही मालूम पड़ती है और वह भिन्न पदार्थों की भिन्न-भिन्न गन्धका विश्लेषण नहीं कर पाता। इसमें वात

और पित्तकी रूक्षता और उष्णताके कारण घ्राणशक्तिकी क्रियामें विकृति आ जाती है, जिसके कारण गन्धवहानाड़ी निकम्मी पड़ जाती है। ऐसी दशामें रोगीको एक किसी गन्धका भ्रमपूर्ण आग्रह हो जाता है। यदि सुगन्धिका आग्रह हो तो वह सभी पदार्थोंमें सुगन्धि ही बतावेगा, यदि दुर्गन्धिका भ्रमपूर्ण आग्रह हो तो सभी पदार्थोंको वह दुर्गन्धिपूर्ण ही कहेगा। कभी-कभी अधिक चिन्ता और अधिक मननसे मस्तिष्कमें ऐसा जोर पड़ जाता है कि वात नाड़ियोंका क्षोभ होकर गन्धवहा नाड़ीमें विकृति और निर्बलता आ जाती है।

गन्ध ज्ञान अक्षमता—इस विकृतिका एक दूसरा स्वरूप होता है जिसमें रोगीको सुगन्ध या दुर्गन्धमें से किसी भी गन्धका ज्ञान नहीं होता। जब तक वायुका प्रभाव कफ पर पूरा नहीं पड़ता और जब तक कफकी अल्प विकृति रहने पर भी सर्दी और तरी किसी रूपमें पहुँचती रहती है तब तक वह सुगन्धि या दुर्गन्धियोंसे किसी एककी बात कह सकता है; किन्तु जब कफ भी पूर्णरूपसे विकृत हो जायगा, तब सूँघनेवाली शक्तिका बिलकुल ह्रास हो जायगा। उस समय किसी भी गन्धके विषयमें कुछ न कह सकेगा। वात-पित्त-कफ और रक्त सभीकी विकृति हो जायगी।

मस्तिष्कगतगन्ध—कभी-कभी ऐसा होता है कि मस्तिष्कके अगले भागमें कोई ऐसी विकृति भर जाती है कि फिर मस्तिष्कमें किसी अन्य गन्धका प्रवेश नहीं हो पाता। उस विकृतिकी जैसी गन्ध होगी, उसी प्रकारकी गन्ध रोगी बतला देगा। अन्य गन्धका वर्णन वह नहीं कर सकेगा। मस्तिष्क उसी गन्धको ग्रहण करता है जो भरी हुई है। रोगी ऐसी दशामें बार-बार भिन्न-भिन्न वस्तुको उठाकर सूँघता है; किन्तु उसे सब पदार्थोंमें वही गन्ध मिलती है जो उसके दिमागमें भरी है। सामीप्यके कारण उसी गन्धका प्रभाव उस पर रहेगा।

चिकित्सकका कर्तव्य है कि वह रोगीके उस गन्धाग्रहसे दोषका पता लगावे। जैसे वह सब पदार्थोंमें कालीमिर्च या सोंठ या बालछड़की गन्ध बतलावे तो समझ ले कि रोगीके मस्तिष्कमें जो दोष है, वह उष्णाधिक्यसे है। यदि वह सभी वस्तुओंमें सड़ेपन या दुर्गन्धित होनेका आरोप करे तो समझ ले कि दोषोंमें पूतिभाव आगया है और उसके भीतर दुर्गन्धि भर रही है। यदि चमेली, खस आदि शीत प्रकृति और तरीवाली गन्ध रोगी बतलावे तो समझे कि विकृतिकी प्रकृति शीत है। यदि उसे सब पदार्थोंमें खट्टी गन्ध आवे तो वादी प्रकृति है। विसैंधेपन या लोहकी-सी गन्ध बतलाने पर रक्तदोषका पता लगेगा।

ऊपरकी तीनों दशाओंको दूर करनेके लिये आवश्यक है कि रोगीको वमन और विरेचन दे। फिर तीक्ष्णनस्य देकर स्रोतसोंका अवरोध दूर करे, फिर स्नेहपान और स्नेहनस्य देकर भीतरी आशयोंको स्निग्ध करे? शिरोविरेचन और शिरोवस्ति भी दे। चित्रक हरीतकी खिलावे और एक रत्ती मणिपर्पटी मधुके साथ देता रहे।

चित्रगन्धि—कभी-कभी ऐसा चमत्कार होता है कि रोगी एक ही वस्तुमें अनेक गन्धका अनुभव या आरोप करता है। मस्तिष्कके अगले भागमें जब कई प्रकारकी विरुद्ध विकृतियोंका समावेश हो जाता है, तब ऐसी दशा उपस्थित होती है। इस दशाको दूर करनेके लिये भी पहले मस्तिष्कगत दोषोंका शोधन करे फिर वातनाड़ियोंको सचेष्ट करनेका प्रबन्ध करे। मस्तिष्क शुद्ध होने पर बृहत वातचिन्तामणि या वातराक्षस खानेको देवे।

एकाङ्गीगन्धग्रहण—कभी-कभी ऐसा होता है कि गन्धग्राहिणी नाड़ी किसी प्रकार की गन्धको तो ठीक-ठीक ग्रहण कर ले और किसीको न कर पावे। जब गन्धग्राहिणी नाड़ी सुगन्धित वस्तुओंकी गन्ध ग्रहण कर सके; किन्तु दुर्गन्धित वस्तुओंकी गन्ध न पहचान सके तब समझे कि मस्तिष्कके अग्रभागमें और गन्ध ग्रहण करने और गन्धज्ञान प्राप्त

करने वाले अवयवोंमें दुर्गन्धित विकृति भर गयी है; यदि बहुत दिनों के बाद सूँघने वाली शक्ति उसे सह जाय (इसी सह जाने की प्रकृति के कारण रोगी अपनी नाककी दुर्गन्धिको स्वयं नहीं समझ पाता; किन्तु दूसरे लोग उससे घृणा करते और बचना चाहते हैं।) उससे वह घृणा न करे। किन्तु जो वस्तु दुर्गन्धितके विरुद्ध है, सुगन्धित है उसे घ्राणशक्ति ग्रहण कर ले। इस परिस्थितिको दूर करने के लिये भी पहले शरीर और मस्तिष्कका शोधन करे। फिर यदि भीतर क्षत हो तो उसकी चिकित्सा करे। इसके पश्चात् सुगन्धित तेज वस्तु लौंग, कस्तूरी, कपूर आदि सूंघा करे।

इस एकाङ्गी गन्ध ग्रहणका दूसरा स्वरूप यह है कि रोगीको दुर्गन्धित वस्तुओंकी गन्धका ज्ञान तो हो परन्तु सुगन्धित वस्तुओंका ज्ञान न हो। इसका कारण यह है कि मस्तिष्कके अग्रभागमें और गन्धग्राहिणी नाड़ीमें निर्बल रक्त या विकृत श्लेष्मा भर जाय और सूँघनेवाली शक्ति उसकी आदी हो जाय। उसके विपरीत दुर्गन्धित वस्तुओंकी गन्धका ज्ञान हुआ करे। क्योंकि सही हुई गन्धके वह विरुद्ध गन्धवाली है। इसके लिये भी पहले शरीर और मस्तिष्कका शोधन करे फिर उष्णवीर्य पदार्थोंका नस्य दे। नकछिकनी या कायफल अथवा श्वासकुठाररस या कल्पतरु रस सुँघाकर दोष निकलवावे। अणु तैलकी नस्य दे। हकीम लोग ऐसी दशामें नाकमें जुन्देवेदस्तर टपकानेकी सलाह देते हैं। यदि दुर्गन्धित वस्तु मालूम हो और सुगन्धित न मालूम हो तो कस्तूरी घोलकर टपकावे।

नासाक्रिमि

सर्वएव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः
दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥
मूर्च्छन्ति चात्र क्रिमयः श्वेताः स्निग्धा स्तथाऽणवः
क्रिमितो यः शिरोरोग स्तुल्यं तेनास्य लक्षणम् ॥

वाधिर्यमान्ध्य मघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान् ।
शोथाग्निसाद कासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥

यदि प्रतिश्याय रोगी ठीकसे प्रतिश्यायकी चिकित्सा न करे तो पुराना पड़ जानेपर सभी प्रतिश्याय दुष्ट प्रतिश्यायके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार दूषित अवस्थामें पहुँच जानेपर फिर वे असाध्य हो जाते हैं अर्थात फिर अच्छे नहीं होते। विशेषकर पीनस और रक्तज प्रतिश्यायमें दूषण शीघ्र आता है। जिन प्रतिश्यायोंमें कफकी अधिकता रहती है उनमें कफके कारण नासिकामें क्लेदाधिक्य रहता है। क्लेदके कारण वहां सड़न पैदा होती है, सड़नसे क्षत होता है और क्षतसे पूयनिस्सरण होता है। जहाँ सड़न बराबर बनी रहती है वहाँ क्रिमियोंका उत्पन्न होना क्रम प्राप्त है। अतएव वहाँ क्रिमि हो जाते हैं। ये क्रिमि प्रायः चिकने सफेद और छोटे अणु प्रमाण होते हैं। अधिकांशमें कफमें क्रिमि होते हैं। अतएव कफके स्वभावके अनुसार वे सफेद चिकने रहते हैं। पहले तो कफज क्रिमि स्थानिक होते हैं; किन्तु धीरे-धीरे उनका विस्तार श्लेष्मिककलासे बढ़ते हुए शिर तक होता है। शिरोरोगमें भी क्रिमि होनेका वर्णन मिलता है। अतएव कहा गया है कि नासिका क्रिमि रोगके लक्षण भी शिरोरोगस्थ क्रिमियोंके समान होते हैं। रक्तज प्रतिश्यायमें भी क्रिमियोंकी सम्भावना रहती है। रक्तमें कीटाणुकी उत्पत्ति होती ही है जैसा कि कुष्टि रोगमें होता है। उरःक्षत-रोगमें भी कफ और रक्तके कारण ही क्रिमियोंकी सम्भावना होती है। इसकी भी सम्भावना है कि रक्तज अन्य क्रिमियोंके समान इनके आकार-प्रकार और स्वरूप हों। शिरोरोगमें क्रिमिजन्यशिरोरोगका लक्षण इस प्रकार है—

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः
घ्राणाच्च गच्छेत्सलिलं सरक्तं, शिरोऽभितापः क्रिमिभिः स घोरः।

शिरोरोगमें भी इसे घोर व्याधि माना गया है। क्योंकि वे क्रिमि

श्लेष्मलकला, शृङ्गाटक मर्म तथा रक्तवाहिनी सिराओंमें पहुँचते हैं, उनके चलनेसे उन अंगोंमें घर्षण होता है और उनके काटनेसे चुभन होती है, जिससे शिरमें और नाकमें दर्द होता है। सिहरन होती है। वे कृमि नाकके रास्ते खून मिले हुए पानीके साथ बाहर आते हैं। रोगीका शिर गरम रहता है। कफज कृमि कफ और जल समान नासास्रावके साथ निकलते हैं, कृमिके कारण कफमें कुछ रक्तकी भी लालिमा रह सकती है। ऊपर रक्तमिश्रित जलके साथ कृमियोंके निकलनेका जिक्र है यह रक्तज हो सकते हैं। क्षय जन्य शिरोरोगमें भी कृमि होनेकी सम्भावना रहती है। नासाकृमिके कारण रोगी बहरा और कभी-कभी अन्धा भी हो जाता है। क्योंकि कृमि कर्ण-नाड़ी और दृष्टि नाड़ीको भी दूषित कर बेकाम कर देते हैं। यदि मनुष्य अन्धा न हो तो कई प्रकारकी आँखकी बीमारियाँ अवश्य होती हैं। ऐसा रोगी गन्ध ज्ञान-शून्य हो जाता है। नासाशोथ, मन्दाग्नि, खाँसी आदि विकार भी हो जाते हैं। इन उपद्रवोंकी चिकित्सा कृमिनष्ट करनेके बाद उन रोगोंके अनुसार करनी चाहिये।

चिकित्सा (१)—नासागत कृमियोंकी चिकित्सा भी कृमिरोगके समान होनी चाहिये। कफज और रक्तज नासिका रोगमें जिन नस्योंका वर्णन है उन्हें गोमूत्रके साथ पीसकर अवपीड़न नस्य दे। ऐसे नस्योंमें कृमिनाशक बायविडङ्ग आदि औषधियाँ भी मिला दी जाया करें। अन्य प्रतिश्यायोंमें भी कृमि आजायँ तो उन रोगोंकी चिकित्सामें भी कृमि-नाशक प्रयोग बढ़ा दिये जायँ। (२) नासा कृमियोंका विस्तार शृङ्गाट-कादि मर्मोंसे बढ़कर शिर तक हो जाता है अतएव स्थानिक-चिकित्सासे सभी कृमियोंका विनाश कठिनाईसे हो सकता है। अतएव उन दूरस्थ कृमियोंको नासा प्रदेशमें ले आनेके लिये रक्तबस्ति या रक्तकी पिचकारी दी जाय। जब रोगी उताना सिर लटकाकर लेट रहे तब उसके नासिका रन्ध्रोंमें रक्तकी क्लेद टपकाई जाय। उस रक्तको खानेके लिये चारों-

ओरसे कृमि दौड़ेंगे और नासाप्रदेशमें आ जावेंगे। रक्त पीकर मदमत्त हो जायँगे अर्थात शीघ्रतासे ऊपर नहीं जायँगे। इसी समय कृमिनाशक औषधियोंका नस्य या पिचकारी देकर उन्हें मारनेका प्रयत्न करना चाहिये। अथवा बालोंकी पतली कूँचीसे नाकका क्लेद निकाल लिया जाय उसके साथ कृमि भी आ जायँगे। जो कृमि कूर्चिका प्रयोगसे न निकल सकें उन्हें निकालनेके लिये तीक्ष्ण शिरोविरेचन दे। **विडङ्गादिअवपीडक—** वायविडङ्ग, कालीमिर्च, सहिजनके बीज, सिरसके बीज, अपामार्गके बीज या जड़का बकला लेकर गोमूत्रमें पीस अवपीड़क नस्य दे अथवा सड़ी मछली, वायविडङ्ग, वरुणकी छाल, सहिजनके बीज, चिलबिलके बीज या छाल इन सबको आगमें जला धुआँ नाकमें सूंघा जाय अथवा धूम्रपान विधिसे नाकके द्वारा धुआँ लिया जाय। (३) **अर्कादिनस्य—** लालफूलके मन्दारकी जड़का बकला, पूतिकरंज, लताकरंज, अपामार्ग, भारंगी, कलिहारीके बीज और इंगुदीके फलका गूदा गोमूत्रके साथ पीसकर अवपीड़न नस्य दे और इन्हीं वस्तुओंको पीस धूम्रपानकी बत्ती बना धूम्रनस्य दे। आहार-विहार और पान सब कृमिनाशक रखे। (४) कृष्णावपीड़न दे। अर्थात पिप्पली, सहिजनके बीज, बायविडङ्ग और कालीमिर्च गोमूत्रके साथ पीसकर अवपीड़न नस्य दे। (५) सुरसादिगणकी औषधियोंका काढ़ा कर उसीसे नित्य पिचकारी लगाकर नाक धोया करे, जिससे कृमिविनाश और स्थान शुद्धि दोनों हों। सुरसादिगण—सफेद तुलसी, कालीतुलसी, बनतुलसी (बबई या बर्बरी-मेमरी) दोनामरुवा, द्रोणपुष्पी, रोहिषतृण, राई, कसौंदीके बीज, नकछिकनी, देवमंजरी, बायविडङ्ग, कायफल, निर्गुण्डी, सफेद निर्गुण्डी, मूषाकर्णी, दन्तीकी जड़, मत्स्याक्षी, काकजंघा-मसी, जलपिप्पली भारंगी, मकोयकी पत्ती, नीमकी पत्ती, बकायनकी पत्ती। यही सुरसादिगण है। (६) नीमकी निबोलीका तेल नाकमें डाले, यह कृमिनाशक और क्षत पूरक दोनों है, दुर्गन्धिको भी नष्ट करता है (७) एक छटाँक गरम

पानीमें ४ माशेके अन्दाज तारपीनका तेल मिलाकर पिचकारी देवे। (८) तारपीनका तेल और कपूर रूईके फाहेमें लपेट नाकमें दबाये रखे। (९) लौहद्रव (आयरनटिंकचर) २ माशे, पानी दो तोला, तारपीनका तेल अन्दाज ८ दश बूंद मिला पिचकारी देवे।

नासार्बुद

घूँसा-थप्पड़-पत्थर या अन्य किसी प्रकारके प्रहारसे पीड़ित अंगमें वायुके प्रकोपसे तत्रस्थ माँस और रक्त दूषित होकर वहां जो वेदना रहित अथवा अल्पवेदना युक्त चिकना, गोल, स्थिर, कम घेरेवाला मांसमें शोथ होता है, उसे अर्बुद कहते हैं। यह अर्बुद पकता नहीं, यदि पके भी तो अल्प पाकवाला होता है, पत्थरके समान कड़ा और अचल अर्थात एक स्थानमें ही रहनेवाला होता है। जो लोग अधिक माँस खाने वाले होते हैं उन्हें बिना प्रहारके भी अर्वुद हो सकता है। क्योंकि दूषित मांस खानेसे उनका मांस दूषित हो जाता है। ऐसे लोगों का अर्बुद अधिक कड़ा होता है। अर्बुदको साधारण बोलीमें रसोली कहते हैं।

नासारोगमें अर्बुद सात प्रकारके कहे गये हैं १ वातार्बुद २ पित्तार्बुद ३ कफार्बुद ४ त्रिदोष अर्बुद ५ रक्तार्बुद ६ मांसार्बुद और ७ मेदार्बुद। **वातार्बुदमें** खींचनेके समान तनाव रहता है, छेदनेके समान चुभन होती है, नरम तथा फैली हुई वस्तिके समान कलौंस लिये हो, पकती नहीं किन्तु यदि कुछ पके तो साफ रक्त निकलता है। **पित्तार्बुदमें** जलन होती है औरोंकी अपेक्षा इसमें पाक अधिक होता है। पकने पर जो रक्त निकलता है वह दूषित और पीला या काला होता है। **कफजअर्बुदका** शोथ शीतल, स्थानिक त्वचाके रंगका, बिना पीड़ावाला, किन्तु कभी-कभी खुजली देने वाला होता है। यह कड़ा, न बढ़ने वाला होता है। यदि कभी पके तो मवाद सफेद और गाढ़ा निकलता है।

त्रिदोषजअर्बुद—में सभी दोषोंके लक्षण मिलते हैं। रङ्ग अनेक प्रकारका मिश्रित रहता है। वह कभी-कभी पकता है, जिसमेंसे काला-पीला दुर्गन्धित स्राव निकलता है। **रक्तार्बुद**में दूषित पित्त रक्त और सिराओंको संकुचित कर और पीड़ितकर स्राव युक्त कुछ पकनेवाला मांसके अंकुरोंके समान गोल और शीघ्र बढ़नेवाला मांस पिण्ड-सा शोथ होता है। अन्य अर्बुदोंमें मांस और रक्त दूषित होते हैं किन्तु रक्तार्बुदमें विशेषकर रक्तमें ही विकृति होती है। **मांसार्बुद** प्रायः मांस खानेवालोंको अथवा आघात और प्रहारसे होता है। रक्तार्बुदमें बराबर स्राव होते रहनेसे रक्त क्षय होता है, अतः रोगी फीका पीला-सा हो जाता है। मांसज अर्बुदमें विशेषकर मांस दूषित होता है। अतः मेदार्बुद मोटे शरीरवालोंमें प्रायः होता है। अर्बुद होने पर मोटापेमें कमी होने लगती है। **मेदार्बुद** स्निग्ध, कुछ उठा हुआ बड़ा दर्द न करनेवाला अथवा बहुत थोड़ा दर्द करने-वाला होता है। उस शोथमें खुजली होती है। यदि इसका पाक हो तो घोली हुई खलीके समान उसमें स्राव होता है। त्रिदोषज अर्बुदके होनेका विषय विवादग्रस्त है। मधुकोष टीकामें इसका संकेत तो है किन्तु अन्यत्र अर्बुद रोग में भी इसका उल्लेख नहीं है। किसी-किसीके मतमें **सिराजअर्बुद** होता है। जब निर्बल मनुष्य अधिक व्यायाम या परिश्रम करते हैं तब उनकी सिराओंका विस्तार होता है, इससे दोष वृद्धि होकर वहां शोथ होता है। यह अर्बुद प्रायः शृंगाटिकाके पास उस स्थल पर होता है जहां घ्राणसन्तर्पिणी, श्रोत्रतर्पिणी, अक्षितर्पिणी और जिह्वासन्तर्पिणी सिराओंका मेल होता है। यह मर्म स्थानसे होनेके कारण कृच्छ्रसाध्य होता है। यदि उसके कारण शृंगाटिकामें भी दोष आजाय तो वह असाध्य है और वैद्यको उसकी चिकित्सा करनेके फेरमें नहीं पड़ना चाहिये। मांसार्बुद भी असाध्य होता है। कोई भी अर्बुद हो यदि वह मर्मके पास हो या स्रोतसके मुख पर

अचल होगया हो तो उसे भी असाध्य समझना चाहिये। रक्तजन्य अर्बुदसे रक्त क्षय होता है। अतएव वह भी असाध्य होता है। यदि पहले अर्बुदके बाद वहीं दूसरा अर्बुद भी उत्पन्न होजाय तो उसे अध्यार्बुद कहते हैं। यदि अर्बुदमें दो दोषोंकी संकरता हो और वह एक दो या क्रमशः और भी होगया हो तो उसे द्विरर्बुद कहते हैं। सब प्रकारके अर्बुद कफ तथा मेदकी अधिकतासे होते हैं और उनके कड़े होनेसे दोष वहीं स्थिर रहते हैं और ग्रन्थि रूप होते हैं। अतएव ये प्रायः पकते नहीं हैं। यद्यपि अपचीमें भी कफ तथा मेदकी अधिकता होती है; किन्तु उसमें पाक होता है, किन्तु अर्बुद स्वभावतः अपाकी होता है। अतएव उसमें प्रायः पाक नहीं होता, यदि होता भी है तो एक स्थानमें थोड़ा-सा होता है। सभी प्रकारके अर्बुदोंमें रोगीको सांस लेनेमें कष्ट हुआ करता है। भिन्न-भिन्न दोषोंके अनुसार अर्बुदोंमें जो लक्षण होते हैं वे ऊपर लिखे गये हैं; किन्तु सभी अर्बुदोंमें यह सामान्य लक्षण होते हैं। शिर, ललाट और तालूमें भारीपन मालूम हो, सांस लेनेमें कठिनाईके कारण सोनेमें कष्ट हो। अर्बुदोंका आकार अधिक से अधिक झड़वेरी बेरके फलके समान होता है।

विशेष—डाक्टरीमें नासार्बुद (पलियाई) तीन प्रकारके माने जाते हैं। १ जलीयअर्बुद (जिलाटिनस) २ सौत्रिक अर्बुद (फाइब्रस) और ३ द्वेषी (मैलिगनेण्ट) जिलाटिनसको तो कफार्बुदके अन्तर्गत समझना चाहिये। इसे म्यूकसपलियाई भी कहते हैं। नासामध्यसुरंगाकी आच्छादक श्लेष्मिककलाके ऊपर पुञ्जाकार उत्पन्न होता है। ये भी कई प्रकारके होते हैं। इनसे नासारन्ध्र बन्दसा हो जाता है। शीतल वायु और आर्द्रतासे यह बढ़ता है। जिससे स्वर क्षीण पड़ जाता है और नासारन्ध्रसे श्लेष्मा निकला करता है। श्वासकासके भी उपद्रव रहते हैं। इसकी चिकित्सा कफजअर्बुदके समान करनी चाहिये। गेलवनोकटारीसे शस्त्रक्रिया कर इसे काट दे। डाक्टर लोग शस्त्रक्रियाके

पहले २० प्रतिशत कोकेनके द्रवसे उस स्थानको स्पर्श ज्ञान शून्य कर देते हैं। शस्त्रक्रियाके पश्चात टानिकएसिडकी नस्य लेनेसे फिर यह नहीं होता। **सौत्रिकतन्तुजन्य अर्बुद**—नासिका और तालुके मध्यमें उत्पन्न होते हैं। इनका आयतन धीरे-धीरे इतना बढ़ता है कि नासारन्ध्रके भीतर तालुके ऊपर आकर झूलने लगता है। कभी-कभी करोटिके मध्यमें प्रवेश कर जाता है। नासामें होनेसे बार-बार रक्तस्राव होता है। श्वास-प्रश्वासमें कष्ट और वधिरता होती है। इससे मुखकी अस्थियोंमें एक प्रकारकी विकृति उत्पन्न हो जाती है। इसका आकार मेढकके मुखका-सा रहता है, इसलिये इसे फ्रोगफेश भी कहते हैं। इसे काटनेसे रक्तस्राव अधिक होता है। इसलिये पहले इन्हें बाहर कर शस्त्रप्रयोग करना चाहिये। इसे रक्तार्बुदके अन्तर्गत समझना चाहिये। और शस्त्रसे काटकर निकाल देना चाहिये। इसके बाद गैलवनोकटारी अर्थात विद्युत द्वारा दाहकर्म कर इसे जड़मूलसे नष्ट करदे। **द्वेषी अर्शोर्बुद**—नासारन्ध्र-नासा और तालुके मध्यमें उत्पन्न होता है। इसमें भी सौत्रिकतन्तुजन्य अर्शोर्बुदके लक्षण उपस्थित रहते हैं। इसे पित्तज अर्बुद मान सकते हैं। चिकित्सा सौत्रिकतन्तुज अर्बुदके समान ही करनी चाहिये।

(१) दोषानुसार अर्बुदकी चिकित्सा सुश्रुत चिकित्सा स्थान अध्याय १८ में लिखी है। वातार्बुदमें **कर्कारु उपनाह**—ककड़ी, खीरा, नारियल, चिरौंजी और एरण्डके बीज पानीमें पीस उसमें दूध और घी मिला पुल्टिशकी तरह बनाकर सेंके। (२) **मांसादिस्वेद**—मांस पकाकर और उसमें बेसवार मिलाकर स्वेदन करावे और नाड़ीयन्त्र अथवा सींगी लगाकर रक्त निकलवावे। अथवा घृतमें वातनाशक औषधियोंका काढ़ा और दुग्ध तथा अम्ल पदार्थ डालकर शताख्य घृत बनाकर पिलावे अथवा तेल, बसा, मज्जा मिला त्रिवृत घृत पान करे।

(२) पित्तार्बुदमें—स्वेद, उपनाह और मृदु वस्तुओंका पथ्य करावे। विरेचन भी दे। यदि रसोली दिखती हो और अंगुलीकी पहुँचमें हो तो औदुम्बरादि घर्षण द्वारा रगड़े। अर्थात गूलरके पत्ते, या सागोनके पत्ते या गावजवां (गोजिह्वा)के पत्तोंसे रगड़कर प्रियंगु लेप करे। प्रियंगु, रालाधूप, पतङ्ग लोध, रसवत और मुलेठी पीसकर मधु मिला प्रियंगु लेप तैयारकर लगावे। यदि कुछ स्राव हो तो उसे साफ कर आरग्वधादि लेप करे। अर्थात अमिलतासका गूदा, गोजिह्वा, सोमलता या वाकुची और निशोथ या प्रियंगुका लेप करे। अथवा निशोथ, शोभांजन, सबको अंगूरके रसमें पीस-कर लेप करे। अथवा निशोथ अपराजिता, शोभांजन, अंगूरका रस, सतवन, शिला रस, और रसवन्तीके रससे सिद्ध किया हुआ घृतपान मुलेठी मिलाकर करे। यह प्रयोग पित्तोदरमें भी लाभदायक है।

(३) कफार्बुदमें—पहले वमन विरेचन देकर रोगीको शुद्ध करे। इसके बाद रक्त निकलवावे। इसके पश्चात ऊर्ध्वगामी और अधोगामी दोषोंको नष्ट करनेवाले द्रव्योंके कल्कका लेप करे। अथवा पारावत लेप करे अर्थात पारावत कबूतर और साधारण कबूतर की विष्ठा, तूतिया, ग्रन्थिपर्णी और कलिहारीका लेप मूत्रमें पीसकर करे। अथवा क्षारसे जला दे।

(४) मेदजन्य अबुंदको पहले स्वेदनकर फिर शस्त्रकर्म द्वारा चीरकर निकाल दे और रजनी लेप करे—हल्दी, गृहधूम, लोध, पतङ्ग-लकड़ी मैनसिल, हरताल पीसकर घावमें भर दे अथवा मधुसे सानकर उक्त दवा लगा दे। फिर घाव भरने के लिये करञ्ज तैल लगाया करे। शस्त्र-कर्म करते समय ध्यान रखे, अबुंद बिलकुल निकाल दिया जाय अन्यथा वह फिर हो सकता है। (५) नित्य कांचनार गुग्गुल खाकर खैरसारका काढ़ा अथवा कुनकुना अभयाक्वाथ पिया करे। काँचनार-गुग्गुल—कचनारकी छाल पावभर, सोंठ-मिर्च-पीपल चार चार

तोला, हर्रा, बहेरा और आँवला दो दो तोला, वरुणकी छाल एक तोला, पत्रज, इलायची और दालचीनी तीन-तीन माशा लेकर सबको पीसकर चूर्ण करे। सब चूर्ण के बराबर शुद्ध गुग्गुल लेवे। फिर चूर्ण को एक साथ मिलाकर कूटे, पानी का छींटा दे देकर उसका पिण्ड सा बना ले। फिर दो दो माशेकी गोली बना कर रखे। उमर और रोग तथा शारीरिक शक्तिके अनुसार नित्य सवेरे एक या दो गोली लिया करे। ऊपर से मुण्डीका अर्क या काढ़ा, खदिरसार का काढ़ा या हर्रेका काढ़ा पीवे। इसके सेवनसे अर्बुद, गलगण्ड; अपची, ग्रन्थि, व्रण, सब प्रकारके गुल्म, सब प्रकारके कुष्ठ और भगन्दर अच्छे होते हैं।

(६) क्षारादिलेप—सज्जीखार, मूलीकाक्षार और शंखचूर्ण बराबर बराबर लेकर पीसकर लेप करे। इससे ग्रन्थि और अर्बुद नष्ट होते हैं।

(७) यदि औषधियों से अर्बुद अच्छा न हो तो शस्त्रसे निकालकर घाव भरनेके लिये जात्यादिघृत लगावे। जात्यादिघृत—चमेली के पत्ते, नीमके पत्ते, परवरके पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलेठी, मोम, कञ्जे के पत्ते, खस, अनन्तमूल, तूतिया सब दवाइयोंको पीसकर दवाइयों का चौगुना घी लेवे और घीसे चौगुना पानी डालकर घृतपाक सिद्ध करे। सिद्ध होनेपर बोतलमें भर रखे। इसके लगानेसे सूक्ष्ममुख वाले नाड़ीव्रण भर जाते हैं। मर्मस्थानोंमें उत्पन्न व्रण तथा बहनेवाले व्रण, गम्भीरव्रण एवं सभी कष्टदायक व्रण अच्छे होते हैं। उपदंश जनित और विसर्पजनित व्रण भी अच्छे होते हैं। तैलपाक भी इसी तरह कर सकते हैं। जात्यादिघृत या तैलका पाक एक दिनमें ही जल्दी जल्दी न कर ले। बल्कि अच्छा हो कि सब दवाइयाँ दो दो तोले लेवें। इस प्रकार पावभर दवा और एक सेर घी लें। कल्कके साथ एक सेर पानी डालकर पाक करें। जब आधा पानी रहे तब एक पाव चमेलीके पत्ते सिलपर पीसकर एक सेर पानीमें घोल कपड़ेसे छान उसी पकते घीमें छोड़ दें। पहले दिन इतना ही पाक करें। घृतमें कुछ पानी

रहने दे। दूसरे दिन एक पाव नीमकी पत्ती खूब सिलपर पीसकर एक सेर जलमें घोल छानकर उसीमें डाले और मन्द आँचसे पाक होने दें। तीसरे दिन परवरके पत्ते एक पाव लेकर पीसकर एक सेर जलमें घोलछान घी में डाले और पूर्ण पाक सिद्ध कर लें। (८) **मूलिकाक्षार लेप**—मूलिकाक्षार, हल्दी और शंखचूर्ण पीसकर लेप करे। यह अर्बुदका सिद्ध और अनुभूत लेप है। (९) **न्यग्रोधादिलेप**—बरगदका दूध, कडुवाकूट, साँभरनमक सबको एक साथ पीसकर अर्बुद पर लेप करे और ऊपरसे बरगदके पत्ते रख बाँध देनेसे अस्थिके ऊपर उत्पन्न अर्बुद भी नष्ट होता है। (१०) **तक्रादिलेप**—सहिजनके बीज, मूलीके बीज, सरसों, तुलसीके बीज (अभावमें बबंरी बीज या तुख्म वालम्बा), जव (भाव प्रकाशकी व्याख्यामें यवके लिये इन्द्रजव लेना लिखा है) और सफेद कनेरकी जड़ सबको मट्ठेमें पीसकर अर्बुद पर लगावे।

नासार्श

विवरण—नासारोगमें अर्श चार प्रकारका माना गया है। अर्थात् (१) वातार्श (२) पित्तार्श (३) कफार्श और (४) त्रिदोषार्श। साधारण अर्शों में सहज और रक्तज अर्श भी लिखे हैं। नाकमें ये नहीं होते। चार दोषजनित अर्शोंमें ही सबका अन्तर्भाव हो जाता है। जो व्याधि अरिवत अर्थात् शत्रुके समान शरीरको शृणाति कष्टदायक हो उसे अर्श कहते हैं। अर्शोंका यथार्थ स्थान गुदाकी बलि हैं। गुदाके अर्शमें जिस प्रकार अंकुर निकलते हैं उसी प्रकारके अंकुर नाकमें भी निकल आते हैं इसलिये इन्हें भी आचार्योंने अर्श नामसे सम्बोधन किया है। नाकके अर्शोंके अंकुर भी गोस्तनाकार होते हैं। जो लोग इन्द्रिय संयम नहीं करते और दोषोंको प्रकुपित करनेवाले आहार-विहारमें लिप्त रहते हैं, प्रकृति विरुद्ध और ऋतु विरुद्ध आहार

करते हैं। बढ़िया भोजन करते किन्तु शारीरिक परिश्रम नहीं करते, उत्कट-विषम और कठोर आसनमें बैठनेकी जिन्हें आदत है, घोड़े आदिकी सवारीमें अधिक रहते हैं, पायखाने पेशाब आदि वेगोंको रोकनेकी जिन्हें आदत है, अधिक मैथुनमें आसक्त और मद्यपान करते हैं, उनके शरीरस्थ दोष प्रकुपित हो जाते हैं, और वे फैलकर प्रधान-धमनीमें पहुँच अधोगामी हो गुदामें और ऊर्ध्वगामी हो कान या नाक में अंकुर उत्पन्न करते हैं, उसीको अर्श कहते हैं। मन्दाग्निवालोंके और जिन्हें कोष्ठवद्ध रहता है, मल साफ नहीं उतरता उन्हींके मल-दोषके कारण प्रायः अर्श होते हैं। धमनीसे दोष सिराओंमें पहुँचते हैं। यदि यकृतमें विकार हो या अन्य कारणसे रक्तसंचारमें दोष आजाय तो सिराओंमें भी प्रकोप हो जाता है। लकड़ीसे या कड़ी बत्ती से नाक खुजलानेकी आदत होनेसे भी अर्श हो जाता है। अर्शाङ्कुर रक्तसे भरकर फूल जाते हैं, जिससे प्रत्येक सिराका अन्तिम भाग छोटे अंकुर या गाँठकी तरह मालूम पड़ता है। इनके बीचमें प्रकुपित सिरा होती है। कुछ सौत्रिकधातु भी रहती है। जब सिराएँ प्रकुपित नहीं होतीं तब उनमें कुछ खुजली रहती है; किन्तु जब उनमें प्रकोप होता है तब छोटा उभाड़ हो आता है। प्रत्येक अर्श श्लैष्मिककलासे ढका रहता है। यद्यपि अर्श होनेमें तीनों दोषों का प्रकोप कारण होता है तथापि जिस अर्शमें जिस दोषकी अधिक प्रवृत्ति पायी जाती है उसे उस दोषके नामसे पहचानते हैं। **वातार्श** जो लोग कषाय-कटु-तिक्त तथा रूक्ष आहार करते हैं तथा ठण्डे और हल्के भोजन करते हैं, थोड़ा या अधिक भोजन करते हैं, तीक्ष्ण मद्य पीनेकी जिन्हें आदत है, जो अधिक मैथुनमें आसक्त रहते हैं, उपवास अधिक करते हैं या शीत देशमें या शीत स्थानमें रहते हैं, शरीरशक्तिसे अधिक व्यायाम करते हैं, धूप तथा वायुके झोकोंमें रहनेका जिन्हें अधिक प्रसङ्ग पड़ता है, उन्हें कालान्तरमें बातजनित अर्श होनेका भय रहता है। वातार्शके

अंकुर सूखे हुए, चरचरानेवाले, मुरझायेसे ललाई लिये श्याम, कठिन खरखरे, काँटेदार अलग अलग सरसोंके दानोंसे भरे कदम्बपुष्पके समान होते हैं। रोगीको छींकनेमें कष्ट होता है। मुँह, नाक, नेत्र, मूत्र आदिमें श्यामता आजाती है। वातार्श अंकुरोंमें दर्द होता है।

पित्तार्श—जो लोग कटु-अम्ललवण रसके पदार्थ और उष्ण पदार्थ अधिक खाते हैं, अधिक परिश्रम करते, अधिक अग्निके पास रहते, अधिक धूपमें घूमते, अथवा गरम देशमें रहते हैं, जिनका स्वभाव क्रोधी है, जो दूसरोंके प्रति डाह-ईर्षा रखते हैं, अधिक मद्य पीते हैं, जलन पैदा करनेवाले, तीक्ष्ण और उष्ण भोजन करते हैं, उनका पित्त प्रकुपित होकर पित्तार्श उत्पन्न करता है। पित्ताधिक अर्शके अंकुर नीले-लाल-पीले-काले और चमकदार होते हैं। उनसे पतला रक्त गिरता है. नरम और शिथिल अंकुर होते हैं। नाकका भाग ललाई लिये रहता है। उसमेंसे पीला दुर्गन्धित पानी बहता है। कभी-कभी यह मांसका लोथड़ा इतना बढ़ जाता है कि उससे नाकका छेद भर जाता है। कभी वह इतना लम्बा हो जाता है कि नाकसे बाहर दिखता है। यह दशा रक्त जम जानेके कारण होती है।

कफार्श—जो लोग मधुर, स्निग्ध, शीतल, लवण प्रधान और भारी अन्नका आहार करते हैं, अधिकतर बैठे रहते हैं, व्यायाम और परिश्रम नहीं करते हैं, दिनको सोते हैं, कोमल सुखासन पर सोते हैं, पूर्वी वायुका सेवन करते हैं, शीत देशकालमें रहनेका जिन्हें अधिक अवसर रहता है, जो निश्चिन्त रहते हैं, उन्हें कफार्श होनेकी सम्भावना अधिक रहती है। इसमें मांसका लोथड़ा नाकके मार्गमें जम जाता है। बाहरी सांस भीतर जाने और भीतरी सांस बाहर छोड़नेमें कष्ट होता है। इसका रङ्ग सफेद होता है, इसमें दर्द नहीं होता और यह सुखसाध्य होता है। मस्सा अधिक घेरमें रहता है। कुछ कड़ा रहता है। जकड़नदार चिकना होता है। यह चमकीला होता है।

इसमें कुछ खुजली रहती है। शिरमें भारीपन बोध होता है, कुछ ज्वर-सा रहता है। रोगीका जी मचलाया करता है। नाकसे जो स्राव जाता है वह चर्बीके से रङ्गका होता है।

त्रिदोषज अर्श—यों तो वात-पित्तज, वात-कफज और पित्त-कफज नामसे द्वन्द्वज अर्शकी भी कल्पना की जा सकती है। यही नहीं दोषोंका इस प्रकार द्वन्द्व भाव हो सकता है और होता भी है। किन्तु नासासे अर्शका कोई प्रधान स्थान नहीं है। इसलिये अधिक बारीकीमें उतरना अभीष्ट नहीं है। यदि चिकित्सा करते समय दोष कल्पना करनेकी ही आवश्यकता हो तो जिन दो दोषोंका संकरत्व होगा उनके सम्मिलित लक्षणोंसे कल्पना करना कठिन नहीं होगा। हां, त्रिदोषज अर्शका कुछ विवरण होना आवश्यक है। त्रिदोषज अर्शमें रोगीको श्वास लेने और छोड़ने में अधिक कष्ट होता है। नाककी रुकावट अधिक होती, इसमें पहले अपने कारणोंसे वायु कुपित होता है फिर वह अपने शैत्य गुणसे कफको दूषित करता है और लघुगुणसे पित्तको भी विकृत कर देता है। इस तरह तीनों दोष कुपित हो जाते हैं। कभी-कभी अपनेकारणोंसे कुपित हुआ पित्त अपने कटु गुणोंसे वायुको कुपित करता है और अपने द्रव गुणसे कफका प्रकोप बढ़ाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपने कारणोंसे कुपित हुआ कफ अपने शैत्यगुण-से वायुको कुपित करता है तथा द्रवत्वगुणसे पित्तको प्रकुपित करता है। इस प्रकार एक-एक दोष प्रथम-कुपित होकर अपने-अपने कारणों और गुणसे अन्य दोषोंको कुपित करते हैं और प्रकोप भावको प्राप्त कर जब वे सम्मिलितरूपसे रोगोत्पादन करते हैं तब उसे त्रिदोषज व्याधि कहते हैं।

विशेष— जब नाकमें अर्श उत्पन्न होनेको होता है तब पहले मलका विष्टम्भ होता है, नाक सटने लगती है और सिराओंका स्तम्भ होने लगता है। नासाका आध्मानसा होता है, रोगीको डकारें बहुत

आती है, नाकसे बलगम नहीं निकल पाता। इसके पश्चात् विकृत दोष नासामार्गकी त्वचा, मांसपेशी, मेद, श्लैष्मिककला आदिको दूषित करते हैं। इसका फल यह होता है कि सिराओंके मुखपर छोटे-छोटे मांसके अंकुर निकल आते हैं। जब त्वचा और माँसमें दोष प्रभाव काम करने लगता है तब तत्रस्थ रक्तकी विकृति भी होती है। द्वन्द्वज-अर्श कृच्छ्रसाध्य होते हैं और त्रिदोषज असाध्य होते हैं। यदि अर्शके कारण कान और मुख पर विशेष शोथ हो, प्यास अधिक, हृदयमें दर्द, वमन हो तो इसे अरिष्ट. समझना चाहिये। नासार्शको डाक्टरीमें पालीपस Palypus कहते हैं।

चिकित्सा—(१) नासार्शकी चिकित्सा करनेके लिये रोगीको ऐसा अन्नपान दे जिससे वायुका अनुलोमन हो, अपानवायु निम्नगामी हो, रोगीका अग्निबल सचेष्ट हो, रोगीको साठीके चावलका भात, गेहूँ या जवकी रोटी, घी, दूध, परवर, सूरन, बैंगन, मूलीका शाक, जीवन्ती, पोई, चौराई, बथुवाकी भाजी खिलानी चाहिये। (२) नासार्शमें नाककी फस्द खोलकर रक्तमोक्षण करावे। रोगीको जुलाब देकर मलपरिष्कार कर दे। मलपरिष्कार हुए बिना यदि कोई उष्ण औषधिका लगाने या खानेमें प्रयोग हुआ तो दोष खिंचकर बीमारी बढ़ा देंगे। नाकसे भी दूषित मल-मवाद और कफ निकालनेका प्रयत्न करे। जब नाक साफ हो जाय तब यूनानी दवा जंगारवर्तिका—अर्थात जंगार उशना, कसरैन और मुरेमकी लेकर मलहम बनाकर उसकी बत्ती बना नाकमें लगावे। इससे अर्शांकुर निकल जावेगा। यदि इससे काम न हो तो **लोहवर्तिकासे** काम ले—अर्थात लोहेका मैल, कलकलदीस और लाल हरताल सिरकेमें पीस बत्ती बना अर्शाङ्कुरपर रखे। यह दवा नश्तर अर्थात शस्त्र चिकित्साका काम करेगा। यदि इससे भी काम न चले तो शस्त्र द्वारा अर्शाङ्कुरको छील डाले। इस काममें नलिकाशस्त्रसे काम ले। उसे इतना छीले कि वह कट जाय। एक और उपाय है कि घोड़ेके

बालमें सरफुंदी देकर एक काँचके यन्त्र द्वारा उसका एक सिरा गलेकी ओर निकाल दे और बालको आरेकी तरह खींचकर अर्शका मस्सा काट दे। फिर घावपर ऊपर लिखा जंगारवाला मल्हम लगावे। जिससे बचाबचाया कुछ अंकुरका भाव हो तो वह भी निकल जाय। इसके बाद सफेदाका मल्हम तैयार कर घाव भरनेके लिये लगावे। नलिका शस्त्र द्वारा काटनेकी विधि यह है कि रोगीको एक कुर्सीपर सूर्यके सामने बैठावे। चिकित्सक बायें हाथसे नाक उठाकर छिद्र खोले और दाहिने हाथमें बारीक पतली छुरीसे अर्शके अंकुरको जहां तक सम्भव हो जड़से काट दे। यदि कुछ अंश शेष रहे तो घोड़ेके बालसे काट देनेका प्रयत्न करे। काँचकी नली या पक्षीके पङ्खकी जड़में बारीक कपड़ा लपेट कर दवा लगा नाकके भीतर लगावे। इस पोली नली या पंखको नाकमें लगा रहने दे। इनके पोले होनेसे साँस आती-जाती रहेगी और दवा घाव पर लगी रहेगी जिससे अर्शका कुछ भी भाग बाकी नहीं बचेगा।

(३) **गृहधूम्र तैल**—घरका धुआँ (धुआँसा), पिप्पली, देवदारु, यवक्षार, हल्दी (नक्त शब्दके कारण कोई कोई करंज लेते हैं) सेंधा नमक और अपामार्गके बीजका कल्क कर तेल सिद्ध करे। इसे लगानेसे नासार्श अच्छा होता है। इसे **गृहधूम तैल** कहते हैं। वृन्दमाधवने इसका नाम **शिखरीतैल** लिखा है। बादमें अपामार्ग होनेसे शिखरी नाम हो सकता है, किन्तु आयुर्वेदमें नामकरण प्रायः प्रथम औषधिके नामके अनुसार होता है। तदनुसार हमने गृहधूमतैल नाम रखा है। **करवीरादितैल**—(४) लालकनेरके फूल, चमेली-के पत्ते, असनका बुरादा, मल्लिकाके पत्ते या फूल सब समान भाग लेकर कल्क करे। कल्कसे चौगुना तेल लेकर तेलसे चौगुना पानी डाल सिद्ध करे। इसके लगानेसे नाकके मसे दूर होते हैं। इस तैलके पाठमें **असन** शब्द आया है, जिसका अर्थ विजयसार या असनका बुरादा हो सकता है। यदि पाठ "अशानि" माना जाय तो

सेहुँड लिया जाय। वह अधिक लाभदायक होगा। (५) दन्ती-वर्तिका—नासार्शको पहले क्षारसे जला दे फिर दन्तीवर्तिका बनाकर नाकमें रखे। दन्तीमूल, निशोथ, सेंधानमक, मैनसिल, हरताल, पिप्पली और चित्रकका कल्क कर बत्ती बनावे और उसमें घी और शहद लपेट कर बत्ती नाकमें रखे। बत्ती योंही लगी रहने दे, जिससे मसा बिलकुल निकल जाय। नासार्बुदमें भी इसका इसी प्रकार उपयोग किया जाता है। (६) शिखरी तैल—अपामार्गके पत्तोंका रस, अपामार्गके बीज, अपामार्ग भस्म, करञ्ज, चव्य, प्रत्येक १० दश तोला, नींबूका रस बीस तोला, अजमोदा, भटकटैयाके बीज, लाल कनेरके फूल प्रत्येक चार-चार तोला, सबको पीसकर दो सेर पानीमें घोल आध-सेर तेलमें डाल तेल सिद्ध कर ले। इस तेलको दिनमें दो बार नाकमें टपकावे। (७) सबेरे चित्रक हरीतकी गरम दूध या गरम पानीसे ३ या ४ माशे लेवे। रातमें ३ आरोग्यवर्धिनी वटी कुनकुने पानीसे उतारे। (८) चित्रकादि तैल—चीतेकी जड़, चव्य, अजवाइन, छोटी कटेरी, करञ्ज, सेंधानमक और मन्दारका दूध इन सबका कल्क कर चौगुना तेल लेकर सिद्ध करे। इसे नासार्शमें लगानेसे और नाकमें टपकानेसे नासार्श नष्ट होता है। (९) टानिकएसिडका पिष्टचूर्ण सूँघे। (१०) जब तेल आदि लगानेसे नासार्श मुरझा जाय, तब उसे चिमटीसे खींच ले या कैंचीसे काट दे।

नासाशोथ

निदान और सम्प्राप्ति—आयुर्वेदमें नासाशोथ चार प्रकारका कहा गया है। अर्थात (१) वातज नासाशोथ (२) पित्तज नासाशोथ (३) कफज नासाशोथ (४) त्रिदोषज नासाशोथ; किन्तु इनका कोई विवरण नहीं दिया गया। नासारोग पुराना पड़ जाने पर यदि वहाँ कीटाणु उत्पन्न हो जायँ तो शोथ होनेकी सम्भावना होती है। नाकमें

चोट लगने, दबाव पड़ने या आघात लगनेसे भी शोथ होना सम्भव है। शोथमें कुछ ललाई, उष्णता-ताप और वेदना सामान्यतः रहती ही है। यदि किसी स्थान पर रक्ताधिक्य हो या रक्तसे रस निकल कर वहाँकी धातुओंमें जाकर संचित हो जाय तो वहाँ शोथ हो जायगा। यदि शोथ पोले स्थानमें हो तो वह शीघ्र बढ़ती और मृदु होती है। शोथमें जो ललाई होती है, वह रक्तके कारण होती है। किन्तु जब शोथ स्थानमें रक्तका प्रवाह कम हो जाता है, तब शोथका रङ्ग कलौंस लिये हुए होता है। पहली दशामें अंगुलीसे दबावें तो पीलापन मालूम पड़ेगा; किन्तु छोड़ देनेसे फिर लाल हो जायगा; किन्तु दूसरी अवस्थामें दबाने और छोड़नेसे शोथके रङ्गमें विशेष परिवर्तन नहीं होता। शोथ स्थानमें रक्तकी भरती अधिक होनेसे वहाँ कुछ उष्णता अधिक रहती है। जहाँ शोथ होता है, वहाँ धमनी गत रक्तका भार बढ़ जाता है और लसीका का स्पन्दन अधिक होता है। अतएव वातनाड़ियोंके सिरोंपर दबाव पड़ता है, जिससे उनका क्षोभ होता है। इसलिये वहाँ कुछ वेदना होती है। कुछ दबाव पड़नेसे वेदना बढ़ जाती है। यदि शोथवाले अङ्गको लटकावें तो उसका भीतरी रक्त भार बढ़ जाता है और बाहरसे दबावें, तब भी बाहरी भार बढ़ कर वेदना बढ़ जाती है। शोथकी प्रारम्भिक अवस्थाको आमावस्था कहते हैं, जब शोथमें पूयोत्पादन होने लगता है, तब पच्यमान अवस्था और जब पूय निर्यमित स्थानमें एकत्र हो जाता है, तब उसे पक्वावस्था कहते हैं।

साधारणतः व्रण शोथ वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तज और आगन्तुज ऐसे छः प्रकारके शोथ माने गये हैं; किन्तु साधारण शोथोंमें द्विदोषज, अभिघातज और विषशोथ भी गिनाये गये हैं। नासा शोथमें चारकी ही गणना मानी गयी है। वमन-विरेचन लेने पर नियम पालन न करनेसे प्रायः शोथ हो जाता है, इसी तरह पाण्डु रोगियोंमें भी शोथ होता देखा जाता है उपवाससे कृश या अन्य

कारणसे निर्बल हुए रोगी यदि यवक्षार आदि क्षार तथा अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण एवं गुरु पदार्थोंका सेवन करते हैं तो उनके शरीरमें भी शोथ होनेका भय रहता है। दही खाने, मिट्टी खाने तथा अधिक शाक और विरुद्ध पदार्थ खानेवालोंको भी शोथ हो जाया करता है। भोजनका ठीक परिपाक न होनेसे आमरस ऊर्ध्वगामी होता और नासास्थलमें पहुँच कर शोथ उत्पन्न कर सकता है। कृत्रिम विष पेटमें पहुँचने या पेटमें पैदा होनेसे भी शोथका कारण होता है। अर्श रोग, अकर्मण्यता और शोधन योग्य शरीरका शोधन न करनेसे भी शोथ हो जाता है। वमन विरेचन आदि पञ्च कर्मोंमें मिथ्योपचार होनेसे दोष प्रकोप बढ़ कर शोथ हो जाता है।

पहले वायु प्रकुपित होकर रक्त, पित्त तथा कफको बाहर कर सिराओंमें ले जाता है और वहाँ रुद्धगति हो रक्त, पित्त तथा कफके समुदायसे त्वचा तथा मांसमें घन उत्सेध उत्पन्न हो जाता है। उसे ही शोथ कहते हैं। शोथ कभी-कभी बिना चिकित्साके भी अच्छा हो जाता है, उसमें जो भारीपन होता है, वह स्थायी नहीं होता और उत्सेध अर्थात ऊँचा उठान भी अनियमित होता है। केवल उष्णता, सिराओंका पतला पड़ जाना, रोमाञ्च होना और शोथस्थानकी विवर्णता शोथके सामान्य लक्षण हैं।

लक्षण—वातजन्य शोथ संचरणशील होता है, त्वचा पतली पड़ जाती है, शोथ स्थान रुक्षरक्तवर्ण और कलौंस लिये हुए होता है। शोथका स्थान-स्पर्श शून्य युक्त होता है; वहाँ झुनझुनी मालूम पड़ती है, वेदना होती है, तथा दिनमें शोथका प्रकोप बढ़ता और रातमें घटता है। स्नेहन, उष्णोपचार और मर्दनसे जो शोथ शान्त हो जाता है, वह वातजन्य होता है। पित्तजन्य शोथ नरम, गन्धयुक्त, कालापन लिये पीला होता है, इसमें भ्रम ज्वर स्वेद और पिपासाकी अधिकता रहती है, नशा-सा चढ़ा रहता है और जलन होती रहती है। स्पर्श

होनेसे वेदना बढ़ जाती है, नेत्र लाल रहते और पकते समय दाह होता है। कफज शोथमें गुरुता, स्थिरता और वर्णमें पाण्डुत्व रहता है। भोजनकी इच्छा नहीं होती, मुंहसे लार गिरा करती है, निद्रा अधिक मालूम होती और वमन करनेकी इच्छा होती है। उत्पत्ति और शमनके समय अधिक कष्ट हो, रातमें जोर अधिक होता है। यों तो सभी शोथोंमें कम अधिक सभी दोषोंकी विकृति होती है; किन्तु मूल कारण वायुका रहता है। अतएव जिस शोथमें जिस दोषकी विशेषता देखी जाती है, उसे उसी दोषवाला कहा जाता है। इसी तरह दो दोषोंके लक्षण मिलें तो द्वन्द्वज कल्पना भी की जा सकती है; किंतु नासाशोथमें त्रिदोषजका ही विचार होता है। त्रिदोषज शोथमें सभी दोषोंके कुछ न कुछ लक्षण मिलते हैं। अतएव मिश्रित लक्षणोंवाला शोथ त्रिदोषज कहलाता है।

प्रायः आमाशयमें स्थिति दोष ऊर्ध्वाङ्ग शोथ उत्पन्न करते हैं। वमन, श्वास, अरुचि, पिपासा, ज्वर, अतीसार और दुर्बलता ये शोथके सात उपद्रव हैं। जिन शोथ रोगियोंमें श्वासाधिक्य, पिपासा, वमन, दुर्बलता और ज्वर विशेष हो तथा भोजनमें अरुचि हो उन शोथ रोगियोंका रोग असाध्य होता है।

चिकित्सा—(१) सोंठ, पुनर्नवा, एरण्डमूल तथा पञ्चमूल (बेल, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला और खँभार) का क्वाथ पीनेसे वातजन्य शोथ नष्ट होता है। साथ ही वातनाशक तेलोंका नस्य करावे और दशांगलेप ऊपरसे लगावे पुराने साठी चावल और दूध खानेको दे। (२) पटोलादिक्काथ - परवरके पत्ते, आंवला हर्रा-बहेड़ा, नीमकी छाल और दारुहल्दीका क्वाथ शुद्ध गुग्गुल या त्रिफलादि गुग्गुल मिलाकर पीनेसे पैत्तिक शोथ दूर होता है। ऊपरसे पित्तनाशक लेप भी कर सकते हैं। अथवा त्रिवृतादि क्वाथ निशोथ, गुडूची, हर्रा, बहेड़ा, आंवला समान भाग ले क्वाथ पीवे अथवा एक तोला त्रिफला खाकर ऊपरसे

गोमूत्र पीवे। खानेके लिये केवल दूध दे। (३) पुनर्नवा अवलेह—पुनर्नवा, गिलोय, दारुहल्दी और दशमूल प्रत्येक समभाग एक-एक छटाँक लेकर सोलह गुणा जल डाल काढ़ा करे, चतुर्थांश रहने पर उसमें तीन पाव अदरखका रस मिलावे और चार सेर गुड़ डाल पका लेवे। जब गाढ़ा हो तब उसमें सोंठ, मिर्च, पीपर, तेजपात, इलायची, दालचीनी, प्रत्येक दश-दश माशे लेकर बारीक चूर्ण कर मिला दे। तैयार होनेपर उसमें एक पाव शहद डाले। इसके खानेसे कफज शोथ, श्वास-कास, अरुचि आदि नष्ट होकर अग्नि और बलकी वृद्धि होती है। (४) पिप्पलादि चूर्ण—पिप्पली, जीरा, गजपीपर, छोटी कटेरी, सोंठ, चीता, हल्दी, पिपरामूर, पाढ़ी, नागर मोथा और लोहभस्म समान भाग लेकर चूर्ण करे। इसे नित्य कुन-कुने पानीसे लिया करे तो त्रिदोषजशोथ शान्त होता है। (५) अदरखका रस सोंठ मिलाकर पीवे और पच जाने पर दूधके साथ भोजन करे, इससे सब प्रकारके शोथ नष्ट होते हैं। (६) शिलाजतुयोग—शिलाजीत २ रत्तीसे चार रत्ती तक नित्य त्रिफलाके काढ़ेके साथ लिया करे। इससे त्रिदोषज शोथ नष्ट होता है।

मत्स्यशोथ—एक प्रकारके शोथका वर्णन यूनानी पुस्तक "तिब्ब अकवर" में मिलता है। जिसे अरबीमें कसीरउल अरजल या विसफायज कहते हैं। एक प्रकारकी मछली होती है। जब उसका कोई शिकार करना चाहता है तो वह अपने पाँवसे अपनी नाकका छेद बन्द कर लेती है। इस मत्स्यशोथमें भी उसी प्रकार नाकका छेद बन्द हो जाता है। इस मछलीके शरीरमें छोटे-छोटे बहुतसे पाँव होते हैं, उसी प्रकार इस शोथमें लाल और हरी सिराएँ उभड़ आती हैं। यह मछली बहुत नरम और मुलायम होती है, इसमें न काँटे होते हैं न हड्डी। यह शोथ भी बहुत नरम होता है, चौड़ाईमें अधिक रहता है। इस शोथकी सिराएँ बाहरसे भी दिखाई पड़ती हैं। कभी कभी शोथ फूटता है तो

उसमेंसे पीला पानी क्लेद बहता है। कभी-कभी यह शोथ फेफड़ेके समान बढ़ जाता है और नाककी सूरत बिगाड़ देता है। उस दशामें शोथ कड़ा पड़ जाता है और पहलेकी अपेक्षा दर्द कम होता है। सिराएँ सब हरी और खिंची हुई हो जाती हैं। आँखोंकी पलकोंके भीतर खिचावट मालूम पड़ने लगती है। इस दशाको सूजन सरतानी कहते हैं। इसके लिये पहले रोगीको जुलाब दे फिर वमन दे। इसके बाद रसाञ्जन लेप करे अर्थात् रसवत, मुर, तरजूफा, जैतूनके तेलका तलछट, मुर्दासंख, मेथी लेकर अलसीके लुआबमें सानकर सूजनपर लेप करे। जब शोथमें नरमी आवे तब नश्तरसे शोथको खोल दे। अथवा जोंक लगाकर खून निकाल दे। यदि सूजन सरतानी हो तो उस पर लोहेका औजार न चलावे और न मांस नष्ट करनेवाली दवा लगावे; क्योंकि इसमें क्षत हो जानेसे फिर उभाड़ होना कठिन होता है और वेदना बढ़कर मस्तिष्कके पर्दे तक सूज जानेका भय रहता है। इस दशामें रोगीके जानका खतरा रहता है। सरतानी सूजन पर मोमका तेल लगाते रहना चाहिये। जिससे कड़ापन कम हो जाय। बादी निकालनेके लिये आकाशबेलिका काढ़ा देता रहे।

जीर्णनासाप्रदाह

नासारन्ध्रकी श्लैष्मिककलाका शोथ जब पुराना पड़ जाता है, तब उसे जीर्णनासाप्रदाह (Chronic Rhinitis) कहते हैं। डाक्टर लोग इसे नेसेल कैटार या कोराइज़ा भी कहते हैं। पुराना होने पर इसे नासादलीदाह (हाइपरट्रोफिक राइनाइटिस) कहा जाता है। यह प्रायः बालकोंको अधिक होता है; किन्तु युवापुरुषोंमें भी इसका आक्रमण होता है। पहले प्रतिश्याय होता है जिससे कण्ठके गोलार्धकी ग्रन्थि बढ़ जाती है। फिर बढ़ी हुई गलग्रन्थि (टानसिल) नासाके द्वारका संकोच कर देती है। इन कारणोंसे रोगको उत्तेजना मिलती है और वह पुराना पड़ जाता है। यदि रोगकी प्रकृति सामान्य हो तो नासिका से

तरल श्लेष्मा अथवा पीला पूयसे मिला हुआ श्लेष्मा निकला करता है, ऐसी दशामें श्लैष्मिककलामें अधिक रक्तका संचय होता रहता है। इसकी चिकित्सामें असावधानी होने से श्लैष्मिककला प्रदाहसे आक्रांत होनेके कारण मोटी पड़ जाती है। रोगी साँस खींचकर लेने लगता है। सम्पूर्ण ग्रन्थिसे पूय और श्लेष्मासे मिला हुआ एक प्रकारका दूषित स्राव निकलता है। रोगीको श्वास-प्रश्वासमें बाधा पड़ती है। कुछ और अधिक दिन बीतने पर रोगीके स्वरमें मिनमिनाट आ जाती और वह अनुनासिक स्वरके साथ बोलने लगता है। उसका मुखमलीन पड़ जाता है, फुर्ती जाती रहती है, मुखविवर फैला हुआ सा रहता है। प्रायः खांसी आती रहती है। कानसे सुनाई भी कम पड़ने लगता है, और भी अधिक दिन बीतने पर जीर्णनासा प्रदाह बढ़कर क्षयजनासाप्रदाह (एट्रोफिक राइनाइटिस) में परिणत हो जाता है।

चिकित्सा—नासाशोथके समान ही चिकित्सा करे। च्यवनप्राश और शृङ्गाराभ्र लिया करे अथवा वासावलेहके साथ मकरध्वज, सितोपलादि और चन्द्रामृत लेवे। तालिसादिचूर्णके साथ अभ्रक, प्रवाल और मौक्तिकभस्म घृत और अदरखके रससे लेवे। कटफलादिक्वाथ पीता रहे। भुना सोहागा और खानेवाला सोडा आधी छटाँक पानीमें डेढ़ डेढ़ रत्ती मिलाकर इसीसे सवेरे शाम नाक धोया करे और हथेली पर इसी पानीको रख नाकसे सुरका करे। अथवा कान धोने वाली पिचकारी या स्याही भरनेवाली पिचकारीसे नाकमें डाले। यदि साँस लेनेमें कष्ट होने लगे तो गैलबोना कटारीसे उस अस्थिमें बेधन करे। इससे पीड़ा शीघ्र दूर हो जायगी।

नासारक्तपित्त-नकसीर फूटना

नासारोगोंकी गणना करते समय नासारक्तपित्त चार प्रकारका माना गया है। अर्थात् (१) वातजरक्तपित्त (२) पित्तजरक्तपित्त (३) कफज

रक्तपित्त (४) त्रिदोषजरक्तपित्त। माधवनिदानके दोनों मधुकोष और आतंक दर्पण टीकाकारोंका मत है कि रक्तपित्त चार प्रकारके कहने पर भी एक प्रकार ही समझना चाहिये। साधारण व्यवहारमें भी नकसीर फूटना लोग एक रोग समझते हैं, उसमें दोष भेदानुसार कल्पना प्रायः नहीं होती। हाँ, चिकित्साकी सुविधाके लिये ऐसा आवश्यक हो तो वैद्यको विवेचन कर लेना चाहिये। आयुर्वेदमें भी रक्तपित्तके मुख्य दो भेद माने गये हैं; एक अधोगामी रक्तपित्त दूसरा ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त। ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें रक्त मुख, नाक, कान आदिसे बाहर निकलता है; अतएव नासारक्तपित्तको साधारणतः एक मान लिया जाय तो भी हानि नहीं। अंग्रेजीमें इसे एपिसटेकसिस Fpistaxis कहते हैं।

निदान और सम्प्राप्ति—धूपमें अधिक घूमने, अधिक व्यायाम करने, शोक करने, अधिक रास्ता चलने, मैथुन तथा तीक्ष्ण-उष्ण-नमकीन-खट्टे और चरपरे पदार्थोंके अधिक सेवन करनेसे अपने उष्ण और उत्तापीगुणोंके द्वारा पित्त दूषित होकर रक्तको शीघ्र दूषित कर देता है।

सामान्य लक्षण—ऊपर लिखे आहारविहारके कारण दूषित हुआ पित्त, रक्तको दूषित करता है और उस रक्तको नीचे गुदा द्वारा अथवा ऊपर नासिका-कर्ण और मुखद्वारा निकालने लगता है। दोष अधिक प्रबल होनेसे नेत्रोंके द्वारा भी रक्त निकलता है। अवश्य इस दूषित रक्तमें प्रकुपित पित्त भी शामिल रहता है; अतएव जिस रोगमें रक्त और पित्त निकले उसे रक्तपित्त समझना चाहिये। सुश्रुतके मतानुसार इसमें पित्त भी रक्त अर्थात् लाल रङ्गका हो जाता है। इसमें प्रथम पित्तके द्वारा रक्तका दूषित होना फिर रक्त और पित्तका संयोग होना और फिर रक्त के समान पित्तका गन्ध एवं वर्णका होना ये तीनों बातें इसे रक्तपित्त कहलाने में कारण है।

पूर्वरूप—जब रक्तपित्त होनेको होता है तब रोगीको बीचबीचमें सिहरन या रोमांच होते हैं, ग्लानि होती है, शीतपदार्थों और शीतल स्थानमें बैठनेकी इच्छा होती है, गलेमें धुएँधी मालूम होना, मुँहसे लोहेकीसी गन्ध निकलना, वमनकी इच्छा होना या वमन होना तथा श्वासकी वृद्धि, ये पूर्वरूप होते हैं।

लक्षण—वातज रक्तपित्तका रक्त काला-लाल-फेनयुक्त-पतला और रुक्ष होता है। पित्तजरक्तपित्तका रक्त काढ़ेके रंगकासा कलौंसलिये गोमूत्रके समान अथवा कोयलेके धुएँके समान चिकना कृष्णवर्ण तथा अञ्जनके समान रङ्गवाला होता है। कफजरक्तपित्तका रक्त गाढ़ा, फीका पाण्डुरङ्ग, स्निग्ध और चिपचिपा होता है। कफसे संस्टष्ट रक्त-पित्त प्रायः ऊर्ध्वमार्गसे निकलता है; किन्तु यदि कफ और वायु दोनोंका द्वन्द्वज दोष हो तो रक्त उर्ध्वभाग और अधोभाग दोनों ओरसे प्रवृत्त होता है। त्रिदोषज रक्तपित्तमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं।

विशेष विवरण—(१) श्लैष्मिक झिल्लीमें रक्ताधिक्य होनेसे बाल्यावस्थामें प्रायः स्वयं नासिकासे रक्त निकलता है, और लड़कियोंमें यौवनके प्रारम्भमें प्रायः ऐसा रक्त निकलता है। (२) मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य होनेसे नासिकागामिनी सिराओंसे रक्त निकलता है, इस प्रकार मस्तिष्कमें शोणित कम हो जाता है। (३) कभी-कभी संन्यास रोगके पहले इस प्रकार नाकसे अधिक रक्त जानेकी शिकायत होती है। यकृतका कर्कशत्व (किरोसिस) बढ़ जाने, हृदयकी पीड़ा अथवा संकुचित क्षुद्रवृक्कग्रंथि (ग्रैनूलरकिडनी) से मस्तिष्कमें रक्तकी अधिकता हो जाती है। इसके बाद सन्यास (४) स्कर्वी अर्थात् रक्ततारल्य होने पर, तरुणज्वर, वैशेपिक ज्वर, पैत्रिक रक्तपित्त प्रकृति (हिमोरेजिक) तथा डैथिसिस आदिमें नासिकासे रक्त निकलता है। (५) नासिकामें आघात लगनेपर (६) करोटिके तलदेशके भङ्ग होने पर अथवा नासिकामें सरसोंके समान छोटे दाने निकलने पर (ट्यूबक्यूलस अल्स-

रेशन) अथवा नासिका या नासिका तालुमें अर्बुद होने पर भी नाकसे रक्त निकल सकता है। (७) कभी कभी स्थानिक कारणसे—नासिकामें क्षत हो जानेसे भी रक्तस्राव हो सकता है। ऐसा रक्त एक रन्ध्रसे या दोनों रन्ध्रोंसे जा सकता है। यह भी हो सकता है कि रक्त नाकसे न निकलकर पिछले स्तर (पौष्टियर लेयर) से मुखके भीतर चला जावे और मुँह से निकले। यह भी हो सकता है कि रोगी उसे निगल जावे। ऐसा रक्त यदि आमाशय क़बूल न करे तो वमन के द्वारा निकल सकता है। ऐसी दशामें उसे मुखज रक्तपित्त नहीं समझना चाहिये। मुँह फैलाकर देखा जाय तो गलेसे रक्तस्रोत नीचेको बहता हुआ दिखेगा। नासाके भीतर कोई क्षत होने से ही ऐसा रक्तप्रवाह हो सकता है। यदि नासावीक्षण यन्त्र (स्पेकुलम) से देखा जाय तो वह दिख सकेगा। 1965

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा कारणोंका विचारकर करनी चाहिये। यदि रक्त मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य होनेसे आता हो और रोगी बलवान हो तो उसे तुरन्त बन्द न करे। अन्यथा प्लीहाविकार होनेकी सम्भावना रहती है। यदि रोगी दुर्बल हो और रक्त अधिक आता हो तो दूब के रसमें गोघृत मिलाकर नस्य देवे, और मधु मिलाकर वासाका स्वरस पिलावे। यदि नासिकाके क्षतके कारण रक्त आता हो तो डाक्टर लोग बोरेसिक आइएटमेंट लगाते हैं अथवा कोकेनमें रुईका फाहा भिगोकर रखते हैं। औडम्बरसार पानीमें भिगाकर फाहा रखे अथवा स्पिरिट-लैम्पमें शलाका गरमकर क्षत स्थान में दाग दे। क्षत पर बोरेसिक आइएटमेंट लगा दे। यदि अर्बुदमें अस्त्रोपचार करनेसे रक्त आता हो तो रोगीको चित्त लिटावे और नाकमें वर्फ रखे। एएटीपाइनका नस्य दे या हेजिलिनका प्रयोग करे। यदि रक्त बन्द न होता हो तो नासा-रन्ध्रको बन्द करदे। नासिकाके छेद में पहले कोकेन लगावे फिर रबरकी नलीमें ग्लिसरीन लगाकर नासिकाके छिद्रमें डाले। चौबीस घण्टे तक

इसी प्रकार रखे। अथवा आइडोफार्मकी बत्तीके छोटे-छोटे संदंश (नेसेलफरसेप्स) से नाकके छेदमें भर दे।

उपद्रव और साध्या साध्यत्व—दुर्बलता, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, मद, पाण्डुता, जलन, मूर्छा, भोजनके पश्चात गलेमें दाह, धैर्यहीनता, हृदयमें पीड़ा, पिपासा, शिरमें सन्ताप, थूक और नाकमें दुर्गन्धि, भोजनमें अरुचि, भोजनका ठीक परिपाक न होना, बार-बार पायखाने जानेकी इच्छा ये रक्तपित्तके उपद्रव हैं। जो रक्तपित्त एक दोषवाला होता है, वह साध्य होता है, दो दोषवाला याप्य होता है तथा त्रिदोषवाला असाध्य होता है। यदि मन्दाग्नि रोगीको प्रबल रक्तपित्त हो तो वह भी असाध्य होता है। यदि रक्तपित्त केवल नाक या मुखके द्वारा प्रवृत्त होता है, वह साध्य होता है। किन्तु यदि ऊपर नीचे दोनों ओरसे प्रवृत्त हो तो वह असाध्य होता है। एक दोषवाला हो, एक ही मार्गसे निकलनेवाला हो, बलवान व्यक्तिको हो, अधिक वेग न हो, नवीन हो और शीतकाल तथा वर्षाकालमें हुआ हो और उपद्रवयुक्त न हो तो वह रक्तपित्त साध्य होता है। जिस रक्तपित्तके रक्तका स्वरूप मांसके धोवनके समान या क्वाथके समान, या कीचड़ मिश्रित जलके समान अथवा मेद-पूयके समान एवं यकृतके टुकड़ेके समान कलौंस लिये, अथवा पकी जामुनके रङ्गके समान, काला-नीला मुर्देके समान गन्धवाला या इन्द्रधनुषके समान कई रंगोंवाला हो, वह असाध्य होता है। जो रक्तपित्त रोगी आकाशको लाल रङ्गका देखता है, जिसकी आंखें लाल हो गयी हों और बार-बार रक्तका वमन करता है, जिसे रक्तकी डकारें आती हैं, वह रोगी अच्छा नहीं होता।

चिकित्सा—(१) रक्तपित्तका रक्त तुरन्त बन्द करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आरम्भमें उसके द्वारा दूषित मलोंका निर्गमन होता है। तुरन्त बन्द कर देनेसे वह दूषित रक्त शरीरके अन्य भागोंमें फैल कर हृदयके रोग, पाण्डुता या ज्वरादि उपद्रव उत्पन्न कर देता

है। रक्तपित्त रोगीके लिये पुराने चावल, साठी चावल, फसही (तिन्नी) के चावल, सावां, काकुनका भात, मसूर-मूंग-चना-मोठ-अरहरकी दालका जूस। यदि अम्ल पदार्थोंकी इच्छा हो तो खट्टे अनार और आंवला दे सकते हैं। परवर, नीम, वटके अंकुर, पाकरके अंकुर, बेंतके कोमल पत्ते और चौराईका शाक हितकारी है। जिन्हें मांस खानेकी आदत है, उन्हें कबूतर, परेवा, लवा, चकोर, वत्तक, खरगोश, तीतर, एणजातिके हिरण और कालपुच्छ हिरणके मांसका रस दे सकते हैं। (२) वातजरक्तपित्तमें मटरके यूषके साथ धानके लावाके सत्तू मिश्री मिलाकर देवे। मांस खानेवाले इसीमें मांस रस भी मिला सकते हैं। (३) कफज रक्तपित्तमें घीमें भूनकर कोई खट्टा हुआ या बिना खटाईका शाक सेंधानमक मिलाकर देवे। (४) पित्त प्रधान रक्तपित्तमें धान्यकहिम अर्थात्, धनियां आंवला, अडूसेके फूल या पत्ता या जड़की छाल, मुनक्का, पित्तपापड़ा मिलित औषधियोंका हिम देवे। (५) **ह्रीवेरादि क्वाथ**—हाऊबेर, कमल, धनियां, चन्दन, मुलेठी, गुर्च, खस और निशोथका क्वाथ मधु और मिश्री मिलाकर पीनेसे सभी प्रकारके रक्तपित्त तत्काल अच्छे होते हैं। (६) **उत्पलादिहिम**—नीलकमल, लालकमल, कुमुदसफेद, लाल-कुमुदनी, और मुलेठी पीसकर मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त, पिपासा और वमन दूर होता है। (७) **दूर्वादिघृत**—दूब, कमलकेसर, मजीठ, एलुवा, आंवला, शीतलचीनी, खस, नागरमोथा, चन्दन, पद्माख प्रत्येक औषधि दो-दो तोला लेकर कल्क करे। एक सेर बकरीका घी लेकर चार सेर चावलके धोवनमें कल्क मिलाकर घी में डाले और एक सेर बकरीका दूध भी डालकर घृत पाक कर ले। इस घृतका नस्य लेने और पीनेसे नासारक्तपित्त नष्ट होता है। कान से रक्त जाता हो तो इसे कानमें डाले। इसी तरह नेत्रों में भी डाल सकते है। (८) **मृद्वीकाचूर्ण**—मुनक्का, सफेद चन्दन, पठानी लोध और

प्रियंगु, सबका चूर्णकर शहद और अडूसेके रसके साथ लेवे। इससे ऊर्ध्वाङ्गके किसी भागसे रक्त जाता हो तो आराम होगा। (६) खण्ड-कूष्माण्डक—उत्तम सफेद कुम्हड़े—पेठेका रस १०० तोला, गायका दूध १०० तोला और आँवलेका चूर्ण आध पाव सबको एकत्र मिलाकर औटावे। जब खोवा तैयार हो जाय तब उसमें आध पाव चीनी मिलाकर घोटे और रख दे। इसमेंसे २ तोला नित्य खानेसे रक्तपित्त, अम्लपित्त, दाह, पिपासा और कामला रोग नष्ट होता है। (१०) नाकसे कफके साथ रक्त गिरता हो तो अनारके रसकी नास ले (११) कच्ची प्याज खिलानेसे नाकसे खूनका आना बन्द होता है। (१२) माथे पर सेवार (नदी-तालाबमें होनेवाला तृण) बांधे। (१३) छोटी हर्रं पानीके साथ होरसामें घिसकर उसीकी बूंदें नाकमें छोड़े। (१४) अपामार्गके पत्ते पीसकर उसके रसकी बूंदें नाकमें टपकावे। (१५) बबूलके पत्ते पानीमें पीस उसमें फिटकरी और चीनी, मिलाकर नाकमें उसीका रस डाले। (१६) आंवलोंको घीमें तलकर मट्ठेके साथ पीसे और उसका माथे पर लेप करे। (१७) नाक और माथे पर ठण्डा पानी छोड़े। अथवा ठण्डे पानीमें कपड़ा भिगाकर माथे पर रखें। तथा नाकमें ठण्डे पानीकी पिचकारी दे। (१८) फिटकरी और माजूफल बारीक पीसकर नाकमें दबावें। अथवा फिटकरी और जस्तेका फूल पानीमें घोलकर उसीमें रुई डुबा उसी रुईसे नाक बन्द करें। (१९) टिंकचर आफ स्टील में रुई डुबाकर नाकमें अच्छी तरह दबावे। भुना तूतिया पानीमें घोल पिचकारी लगावे। एक छटांक पानीमें आधी रत्ती तूतिया काफी होगा (२०) गर्मीके दिनोंमें यदि चौथे, सातवें ग्यारहवें अथवा चौदहवें दिन नकसीर फूटे तो उसे बन्द न करे। अन्यथा कुन्दरूकी गोंद पानीमें घोल नाकमें टपकावे। (२१) जवाहरमोहरा खताई, वंशलोचन, सफेद कत्था, बड़ी इलायचीके बीजऔर सेलखरी बराबर बराबर लेकर माथे पर और कनपटी पर यही

दवा लगाया करे। (२२) बबूलकी फली, बबूलके पत्ते, मेंहदी, सूखे आंवले और सफेद चन्दन सब एक-एक तोला लेकर पीसकर माथे पर लगावे नकसीर बन्द होगी। (२३ नाजके बीज और सफेद चन्दन एक-एक तोला, कपूर ६ माशे सबको महीन पीस धनियांके रसमें मिला लेप करे।

आगन्तुजरक्तपित्त—दोषोंका प्रकोप होनेसे जो रक्तपित्त होता है, उसका वर्णन ऊपर हो चुका। कुछ आगन्तुक कारणोंसे भी नाकसे रक्त जाने लगता है, उसका भी वर्णन होना आवश्यक है। धूपमें घूमने, कस्तूरी ऐसी तीव्रगन्ध वाली वस्तु सुंघने, महुवा, कच्चे आम आदि अधिक खा लेनेसे कभी-कभी तुरन्त नकसीर फूटती है अर्थात नाकसे रक्त आने लगता है। इसी तरह तेज बुखार, न्यूमोनिया, इनफ्लुएञ्जा आदिमें कभी-कभी नाकसे रक्त आता है। नकसीर फूटते ही तुरन्त बन्द न करे। क्योंकि उसके द्वारा दोष प्रकोप बाहर होता है। जब बन्द करनेकी आवश्यकता हो तब शिर पर ठण्डे पानीका तरेरा दे, ठण्डा पानी नाकमें डाले, नाकसे बर्फ लगाकर उताना लेट रहे। सफेद दूब पानीमें पीसकर नाकमें उसका रस टपकावे। आवश्यकता हो तो इसे पिलावे भी। यदि किसी धमाकेकी चोटसे सिरा फट जानेके कारण नाकसे खून आवे अथवा सांपके काटनेसे खूनमें उबाल आकर रक्त आवे तो फिटकिरी और जंगार पीसकर नाकमें फूँके अथवा गूलरके पत्ते पीसकर उसका रस नाकमें टपकावे अथवा गेंदेकी पत्तीका रस निचोड़ कर नाकमें डाले।

सिराविस्फारितरक्तपित्त—पित्त प्रकोपसे रक्तमें ऐसी तेजी आ जायं कि नासाश्रित रक्तवाहिनी सिराओंके मुँह खुल जायँ। इसे पित्ताधिक रक्तपित्तके अन्तर्गत भेदमें समझना चाहिये। इसमें रक्त थोड़ा-थोड़ा निकलता है और पतला रहता है। जिस नथनेसे रक्त बहे उसी ओरके हाथकी सिरा (सरार) में फस्द खोले। सिराव्यध करनेमें

ध्यान रहे चीरा बारीक हो, रक्त कई बार निकाले जिससे अधिक रक्त न जाय। जिससे रक्तका प्रवाह उलटी तरफ हो जाय। आहार-विहार ऐसा रखे कि रक्तकी उष्णता और पित्तकी विकृति दूर हो। गाजरका शर्बत और उन्नाबका शर्बत पिलावे। मसूरकी दाल और भात खिलावे। सिरके में छिली मसूर पकाकर देवे। सिरपर ठण्डे पानीका तरेरा दे। ठण्डे पानीमें डुबकी लगाकर स्नान करे। माथे पर गुलाब, चन्दन और कपूर पीसकर लेप करे। यूनानी दवा बादरुजका पानी नाकमें टपकावे अथवा **गन्धर्वबिन्दु** टपकावे अर्थात पोदीना और गधेकी लीद पीसकर थोड़ा कपूर मिला उसीका रस निचोड़ नाकमें टपकावे। अथवा माजूफल, धनिया, चक्कीका भाड़ा हुआ आँटा, कुंदरूका गोंद, एलुवा, हीरादुखी गोंद और फिटकरी पीसकर गधेकी लीदके रसमें सान पोटलीमें बाँध नाकमें रखें। अच्छा हो कि एक नलीमें इन दवाइयोंको भर फूँककर नाकमें पहुँचावे। इससे औषधि सिराओंके मुख तक पहुँच जावेगी। अथवा मकड़ीका जाला स्याहीमें डुबाकर उसमें चक्कीका भाड़न भुरकाकर नाकमें रखे। इससे जल्दी खून बन्द होता है। अथवा केवल गधेकी लीदका रस नाकमें टपकावे। भुजदण्ड और जाँघोंको कपड़ेसे कस बाँधदे। हाथको बगलसे लेकर हथेली तक और पांवोंको जाँघकी जड़से बाँधना आरम्भ करे। दोनों कान, दोनों छाती और अण्डकोषोंको मले। इससे नकसीर तुरन्त बन्द होगी।

रक्तभारजन्य रक्तपित्त—नासासे जिन सिराओंका सम्बन्ध मस्तिष्क-से और हृदयसे है और जो मस्तिष्कको निचले भागकी श्लेष्मिककलासे सम्बन्धित हैं उनमें अधिकतासे जब रक्त भर जाता है तब वे उसे अपने-में रख नहीं सकतीं और नाकके रास्ते बाहर निकालना आरम्भ कर देती हैं। ऐसी दशामें पहले सिरमें दर्द होता है तथा मुख और आँखोंमें लाली आ जाती है, इसके बाद नाकसे नकसीर फूटने लगती है। यदि खून सर्राटेसे निकले और पतला लाल तथा उष्ण हो तो समझे कि

यह रक्त हृदयसे आनेवाली धमनी या सिरासे आ रहा है। यदि ऐसा रक्त किसी गहरी चोट या धमाकेके कारण आवे तो रोगीको चक्कर आने लगते और बेहोशी होनेका डर रहता है। मदके कारण रोगीको नींद अधिक आती है। इसमें नकछिकनी, पहाड़ी मुनक्का, फरफयूनको कूटकर बेलकी पत्तीके रसमें मिला बत्ती बना नाकमें रखे। गेंदेकी पत्तियोंका रस नाकमें छोड़े।

नासाभंग

किसी आघातसे यदि नाक कुट गयी हो तो एक पोली सलाई नाकमें डालकर ऊँचे नीचे भागोंको बराबर कर दे जिससे भीतर बाहरसे वह ठीक बैठ जाय। बाहरसे भी हाथसे इस प्रकार बराबर कर दे कि वह अपनी असल सूरत में आ जाय। इसके बाद उसमें जङ्गली अनारकी जड़का मोटा छिलका, अकाकिया और मुर्रको महीन पीसकर वारतंगके लुआबमें सान कर कानपर लगा नाकपर चिपका दे। नाक जमकर बैठ जावेगी। यदि नाक अधिक पिचक गयी हो और नाक की नरम हड्डी भी टूट गयी हो तो बरियाकी पत्ती कूट कर कपड़े पर फैलाकर पहलेके समान नाक जमाकर इसे चिपका दे। ऐसा उपाय करे कि शोथ न होने पावे। शोथनाशक लेप लगावे और सिरपर भी ठंडा लेप करे। जिससे दिमागमें गर्मी न चढ़ने पावे। नाकके भीतर अस्त्र चालनकर नाकके भाग जो नीचे दब गये हों उन्हें उठावे।

उस अस्त्रको इस तरह घुमावे जिससे छिद्र ठीक हो जाय। फिर एक लकड़ी पर कपड़ा लपेट बत्तीकी तरह बनावे। यह बत्ती नाककी पेलाई के बराबर हो। उस बत्ती पर अकाकिया और मुगासका लेपकर नाकके भीतर डाल दे। बत्ती रखनेके बाद बाहरसे नाकके अवयव सब सुधार-कर बनादे। जब तक नाक अच्छी तरह जुड़ न जाय तब तक बत्ती भीतर रहने दे। बाहरसे ऊपर लिखा हुआ लेप लगा दें। अधिक

समय तक बत्ती भीतर रहनेसे श्वासोच्छ्वासमें बाधा पड़ सकती है। इसलिये अच्छा हो कि कांचकी पोली नली या धातुनिर्मित पोली सलाई में ऊपरकी सी बत्ती बनायी जाय। अथवा मोरपंख या अन्य पक्षीके पंखमें बत्ती बनावे ताकि उसके पोले भागसे सांस लेनेकी सुविधा रहे। अस्थि और मांस सन्धानक अन्य लेप भी किये जा सकते हैं।

छिन्ननासासन्धान

विश्लेषितायास्त्वथ नासिकायाः
वक्ष्यामि सन्धान विधिं यथावत्॥

यदि नासिका कट जाय तो उसे जोड़नेकी विधि अपने यहाँ बहुत पुरानी प्रचलित है और एलोपैथीवालों ने आयुर्वेदसे ही इसे लिया है। नासिकाके बराबर परिमित किसी वृक्षके पत्ते को पहले काट ले। फिर उसीके बराबर उसी मनुष्यके गण्डस्थल-गालसे त्वचासहित मांस भाग काटकर नासिकाके अग्रभाग में बांध दे। नासिकाको खुरचकर साव-धानीसे ठीक बन्धनों से बांधकर जोड़ दे। छिद्र कायम रखनेके लिये दो नाड़ीयन्त्र अर्थात् नाकके छिद्रके समान नली दोनों छिद्रोंके बीचमें पैठा दे अथवा एरण्डपत्रकी नालमें नाड़ीयन्त्र लगाकर रख दे। अथवा नरकटसे भी नाड़ीयन्त्र बनाया जा सकता है। सीसा आदि धातुकी नाड़ी न लगावे क्योंकि वे भारी होते हैं; अतएव नीचेको दबे रहेंगे, जिससे नाक दब जायगी और ऊपरका उठाव (नोक) ठीक नहीं रहेगा। अच्छी तरह जुड़ी समझ उठावदार बनानेके लिये उसे हाथसे दबाकर ऊपरको उठा दे और पतंग लकड़ीके पत्रदार छिलके, मुलेठी, और काले सुरमेका चूर्ण बारीक पिसा उसमें डालकर साफ रूईके फाहेसे ढक दे। इसके बाद तुरन्त सफेद तिलके तेलसे उसे तर कर दे। और बराबर तर करता रहे। रोगीको घी पिलावे और घी पचने पर स्निग्ध विरेचन देवे। जब नासिकाकी सन्धि जुड़ जावे तब देखे कि

यदि कहीं अंकुर उठ आये हों या ऊँचा हो गया तो उसे काट छीलकर बराबर कर दे। और क्षत भरने तक योग्य उपचार करता रहे। यदि स्वाभाविक नासिकासे नाक छोटी होतो औषधि प्रयोगसे उसे बढ़ावे और अधिक मांसवृद्धि हुई तो उसे घटावे। जब ठीक हो जावे तब उपचार बन्द करे।

यदि नासिकाके साथ ओंठ भी कट गया हो तो नासिका सन्धानकी विधिसे उसे भी ठीक कर बन्धन बांध चिकित्सा करे। इसमें नाड़ी यन्त्र लगानेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि ओंठमें छिद्र नहीं रखना है।

नासाकण्डू

नाकमें खुजली होनेको नासाकण्डू कहते हैं, ऐसी खुजली कभी किसी-किसी रोगके उपद्रव रूपमें होती है और कभी स्वतन्त्र रूपसे भी होती है। यदि विशेष शीतवायु नाकमें प्रवेश करे तो वह नाककी श्लैष्मिककला, शृङ्गाटक आदिको स्पर्श करते हुए मस्तिष्क तक पहुँचता है। इस शीतस्पर्शसे मस्तिष्कमें एक प्रकारकी जलन और उग्रता प्रकट होती है जिससे मस्तिष्क उष्ण हो जाता है। उस समय मस्तिष्कगत कफांश और तरी गरम होकर आंसूके रूपमें बाहर निकलने लगती है। बाहरसे शीतवायुका स्पर्श होता है; अतएव नाकमें खुजली होने लगती है। इसी तरह यदि उग्र दोष मस्तिष्कके परदोंमें एकत्र हों और उनमेंसे तेजीसे भाफके परमाणु निकलकर नाकके रास्ते बाहर हों या बाहर होना चाहें उस समय बाहरसे यदि शीतवायुका स्पर्श और प्रवेश नाक द्वारा हो तो वह सर्दी उन्हें रोकती है; इस संघर्षद्वारा शीतवायु उनका निकलना बन्द करना चाहता है। इससे नाकमें जलन होने लगती है। कभी ऐसा भी होता है कि मस्तिष्कमें उग्र दोष संचित नहीं होते; किन्तु जब विशेष शीत वायु नाक द्वारा भीतर प्रवेश करता है, तब उसका सामना करनेके लिये और उसका प्रभाव नष्ट कर देनेके लिये अन्य

स्थानसे वाष्पपरमाणु दिमागकी ओर आते हैं और उस संघर्षके परिणाम स्वरूप नाकमें खुजली होने लगती है। ऐसे अवसर वर्फीली जगहोंमें या शीतऋतुमें तेज हवा चलनेके समय या पालातुषार पड़ते समय या झंझावातके साथ वर्षाकी झड़ी लगी रहनेपर उपस्थित होते हैं। इस अवस्थाको रोकनेके लिये उचित है कि ऐसा आहारविहार रखे कि मस्तिष्कमें दोषसंग्रह न हो। यदि मालूम पड़े कि दोष संचय हो रहा है तो उन्हें निकालनेका प्रयत्न करे। छींकें लावे। चन्दन, गुलाब और गुलरोगन किसी शीशीमें डाल सूंघा करे। यदि भाफके परमाणु मस्तिष्ककी ओर चढ़ते हों तो धनियां चबाया करे और रातमें धनियां पानी डाल ओसमें रख दे, सवेरे उसे पीस मिश्री मिला पिया करे। आलू बुखारा और हरीधनियाँकी चटनी खावे। कभी-कभी कालीमिर्च और मिर्चा जैसी तेज वस्तु खानेसे भी नाकसे पानी गिरता और नाकमें खुजली होने लगती है। **सिरीष नस्य**—सिरस के बीज, नकछीकनी, कल्पतरु, नौसादर और चूना जैसी वस्तुओंके सूंघनेसे भी नाकमें खुजली होने लगती है। ऐसे समय नाकमें घी लगा देनेसे जलन शान्त होती और खुजली मिट जाती है। नासाकण्डूमें पहले कफ दूषित होता है और फिर वह वायुको विकृत करता है। तेज जुखाम या नजला होने पर भी नाकमें खुजली होती है। नाकमें फुंसी होने अथवा चेचक के समय भी खुजली होती है। ऐसी खुजली कारण बन्द होने पर आप ही बन्द हो जाती है। फुंसी पर कालीमिर्च और नौसादर लगा देनेसे भी खुजली मिट जाती है। कभी-कभी बराबर नकसीर फूटते रहने पर भी मुखमंडल और नाकमें लाली आकर खुजली होती है और आँखोंके सामने चमक-सी मालूम होती है। ऐसे समय फस्द खुलवा देनेसे रक्तकी उष्णता मिटकर खुजली मिट जाती है।

नाकड़ा

नाकमें भीतरकी ओरसे एक प्रकारका पाक होता है, वह विकृत

होकर नाकको फोड़ देता और ऊपर तक छिद्र कर देता है। यह प्रायः नाककी जड़में होता है। इसे नाकड़ा कहते हैं। यह बहुत भयङ्कर होता है। इससे नाकका स्वर बदल जाता है। बड़ी कठिनाईसे आराम होता है। इसे नासानाड़ीव्रण कह सकते हैं।

(१) गधेकी लीद कुछ सूखी कुछ गीली लेकर एक हण्डीमें भरें। हण्डीको चूल्हे पर चढ़ा दें और उसके ऊपर एक थाली ढाँक दें। थालीमें पानी भर दें। हण्डीसे जो धुआँ उठेगा वह इसी थालीकी पेंदीमें आकर जमा होगा। उसे काँछकर गायका घी मिलाकर नाकड़ा में लगावें, इससे नाकड़ा अच्छा होगा। (२) सियारकी विष्ठा, सज्जी खार, बकरेकी हड्डी, चावल, तूतिया, चूना और मनुष्यके बाल समान भाग लेकर जलाकर राख बना लें। इसे नाकाड़ाके छिद्रमें दबाकर भरनेसे नाकड़ा अाच्छा होता है। (३) सेंधानमक, चौकिया सोहागा, फिटकरी, कच्चा जङ्गाल जला हुआ सब बराबर-बराबर लेकर महीन पीसकर सुँघावे। जब फोड़ा चारों ओरसे नाकके चमड़ेको छोड़ दे तब सड़े हुए मांसको सुईसे छेदकर निकाल दे। इसके पश्चात् नीचे लिखा मल्हम लगावे। (४) गायका घी २ तोले, नीलाथोथा २ माशे, जङ्गाल २ माशे, पीलीराल २ माशे, सफेदाकासगरी ६ माशे सबको महीन पीस गोघृतमें मिला पानी से खूब धोवे। इसके लगानेसे नाकड़ा अच्छा होगा।

नासाशल्य

कभी-कभी कोई वस्तु नाकमें गड़ जाती है और कष्ट देती है। यदि ऐसी वस्तु भीतर ही रह गयी हो और दिखती हो तो चिमटीसे निकाल ले। कभी-कभी चना, ज्वार, बाजरा, घुंघची, मटर आदि कोई वस्तु नाकके भीतर चली जाती है और वहीं रुक रहती है। ऐसी वस्तुका भीतर रहना ठीक नहीं है। क्योंकि वह वहां क्षत कर

देगी और सड़कर नाकमें खराबी पैदा करेगी। यदि रीठेका बीज या घुंघची भीतर रह जाय तो मनुष्य मर भी सकता है। यदि वह चिमटीसे निकलने योग्य न हो तो छींक लाकर निकाल दे। नकछिकनी, सफेद कुटकी, कालीमिर्च, कायफल, जुन्दबेदस्तर और राई कूट छानकर किसी पत्तीके परमें रख भीतर प्रवेश करे। जिस नाकके पर्देमें वह वस्तु गयी हो उधर उक्त दवा भरे अथवा किसी नलीमें भरकर फूंक दे। नाकका दूसरा छेद बन्द कर दे और मुखसे सांस लेता रहे जिससे छींक आते ही उसके जोरसे वह वस्तु बाहर आजाय। बनतितली (एक क्षुप जो रबीके खेतोंमें उगा करता है), अकरकरा और एलुवासे भी छींकें आती हैं। किन्तु उष्ण स्वभाव वालोंको यह नहीं सुंघाना चाहिये। जब वह वस्तु निकल जाय तब नाकमें घी चुपड़ दे ताकि जलन बन्द हो जाय और शान्ति आजाय। **जम्बीरादितैल**—नींबूरस (यदि २ सालका पुराना हो तो अच्छा) २० तोला, जवाखार, सज्जीखार, कलमीसोरा, बायविडङ्ग और गुड़ ढाई-ढाई तोला नकछिकनी ५ तोला सबको पीस १ सेर तेल कड़ाहीमें चढ़ा सब दवाइयाँ छोड़ दे और उसमें १॥ सेर पानी भी डालकर तेल पका ले। इस तेलकी बूँदे नाकमें छोड़े और नकछिकनीकी पत्ती हाथमें मसलकर सूंघे। छींकें आनेसे भीतर पैठी हुई वस्तु बाहर निकल आवेगी।

साध्यासाध्यत्व

नासारोगोंमें दुष्ट प्रतिश्याय याप्य है। अन्य व्याधियोंकी समय पर चिकित्सा होनेसे वे साध्य हो जाते हैं। किन्तु यदि समय पर नासारोगकी उचित चिकित्सा न हो तो वे दूषित होकर दुष्ट प्रतिश्याय हो जाते अतएव वे असाध्य हो जाते हैं। यही नहीं नाकमें कृमि पड़ जाते हैं; जिससे नाक बिगड़ जाती है, बैठ जाती है। यहाँ तक कि

मनुष्य बहरा हो जाता है, अन्धा हो जाता है, उसे किसी वस्तुका गन्धका ज्ञान नहीं रह जाता। भीषण नेत्ररोग, शोथ, अग्निमांद्य और खाँसी, श्वास, क्षय आदि घोर व्याधियोंका उत्पादक यह नासारोग बन जाता है। चरक कहते हैं कि सभी प्रतिश्याय अहित भोजनसे तथा उपेक्षा करनेसे दुष्ट प्रतिश्याय हो जाते हैं, तदनन्तर क्षवथु, नासाशोथ, प्रतीनाह, परिस्रव, नासिका और मुखकी दुर्गन्धि, अपीनस, नासापाक, नासाशोष, नासाशोथ, नासार्बुद, पूयरक्त, अरूंषिका, शिरोरोग, कर्णरोग, पूय, नेत्ररोग, खालित्य, केशोंका भूरा होना, बाल सफेद होना, पिपासा, श्वास, खाँसी, ज्वर, रक्तपित्त, स्वरभेद, शोष ये रोग हो जाते हैं। अर्थात चरक महर्षिके मतसे ये रोग प्रतिश्यायसे उत्पन्न होते हैं। प्रतिश्यायकी भयंकरता इससे अधिक क्या होगी?

नासारोगकी सर्वसाधारण औषधियाँ

प्रत्येक नासारोगमें उसके अनुकूल औषधियोंका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है। यहां पर कुछ ऐसी औषधियां लिखेंगे जो सामान्यतः नासारोगमें उपकारी हो सकती हैं। (१) गुलबनफशा ८ माशे, अंजीर ४ दाने, उन्नाब १० दाने, सौंफ ६ माशे, सनाय १२ माशे, मुनक्के १४ दाने, मुलेठी ४ माशे, लसोढ़ा ४ दाने, कालीमिर्च २ माशे, खाकसीर ४ माशे सबको अलग-अलग कुचलकर दो कागजोंमें सबको बांटकर दो खुराक बनावें। एक खुराक दवा और २ तोला मिश्री आधसेर पानीमें मिट्टीकी हांडीमें चढ़ाकर काढ़ा करे। जब दो छटांक बच रहे तब उतार छानकर पिलावे। इससे पेट साफ होगा, ज्वर मिटेगा और प्रतिश्यायमें लाभ होगा।

(२) **छिक्का नस्य**—मन्दारके दूधमें पीली मिट्टी (मुलतानीमिट्टी) सात बार भिगाकर छायामें सुखावे और बारीक पीसकर शीशीमें भर दे। यदि नासारोगमें छींक लानेकी आवश्यकता हो तो इसे सुंघावे छींकें आवेंगी।

(३) **नासामयहरबीड़ी**—तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, गूगल, घोड़वच, कड़वाकूट, बेलका गूदा, सहिजनके बीज, लौंग, कलौंजी और तमाखू समान भाग लेकर कुचल डाले और किसी कागज या पत्तेमें लपेट कर बीड़ी बनावे। इसे बीड़ीकी तरह पीकर नाकमें धुआं ले मुँहसे निकाले और मुँहसे धुआं लेकर नाकसे निकाले। नाकके सभी रोग मिटेंगे।

(४) **नासारोगहरनस्य**—इन्द्रजव, बेलका गूदा, वायविडङ्ग, मुलेठीका सत्व, कलौंजी, घोड़वच, इलायची, कटीलामाजूफल, नागकेसर, सबको समान भाग ले कुचल डाले। सब दवाका चौथाई भाग सूँघनेकी मद्रासी सुंघनी मिलावे। इसके बाद सबको गुलाबके १५ बीस बूंदमें साने। इस नस्यको सूंघनेसे नाकके सभी रोग अच्छे होंगे।

(५) **नासारोगहरीगुटी**—विधारा, मुलेठी, चोपचीनी, दुधवच, चित्रक, इलायची, तजकलमी, लौंग, सोंठ, पीपर, मिर्च, कायफल, पोहकरमूल, जवासा, सबको समान भाग ले तीन वर्षके पुराने गुड़में सानकर दो-दो रत्तीकी गोली बनावे। नित्य ३ से ६ गोली तक पानीके साथ अथवा चित्रक हरीतकीके साथ खावे, इससे नाकके सभी रोग मिटते हैं। साथ ही खांसी, श्वास, स्वरभङ्ग, छातीके दर्द और दम रोग भी मिटते हैं।

(६) **रत्नपर्पटी**—पारद ५ तोला, गन्धक १० तोला, प्रवालपिष्टी ३ रत्ती, मुक्तापिष्टी २ रत्ती, रससिन्दूर २॥ रत्ती, अभ्रकभस्म २॥ रत्ती लेकर पहले पारद गंधककी कज्जलीकरे फिर सब दवाइयोंको उसीमें घोंट दे। एक कलछीमें जरा घी चुपड़ चूल्हेमें बेरकी लकड़ी जला कलछीमें दवा डाल आंचमें रखे। जब सब दवा गलकर द्रव हो जाय तब जमीन पर गोबर बिछाकर उसके ऊपर केलेका पत्ता बिछावे और उसी पत्ते पर टिघली हुई दवा डाल उसके ऊपर केलेका पत्ता और पत्तेके ऊपर गोबर रख किसी पट्टीसे खूब दबा

दे। दवा पपड़ीके समान फैलकर जम जावेगी। इस दवाको एकबार धतूरकी पत्तीके रससे घोटे, फिर सहजनकी छीमी या पत्तीके रससे घोटे, फिर चित्रकके रससे घोटे, फिर अदरखके रससे घोटकर छायामें सुखा शीशीमें भरकर रखे। इस दवाको २ से ४ रत्ती तक शहदके साथ चाटे। इसके सेवनसे नकसीर फूटना, प्रतिश्याय, पीनस आदि नाकके सभी रोग नष्ट होते हैं। छातीके रोग, खाँसी, श्वास, मूत्ररोग, संग्रहणी, नासार्बुद, नासार्श, प्रमेह, प्रदर आदिमें भी लाभदायक है।

(७) **निदिग्धादिक्काथ**—छोटी भटकटैया, गुर्च और सोंठका काढ़ा पिप्पलीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे सब प्रकारके पीनस, श्वास, खाँसी, अर्दित, अरुचि, स्वरभंग, शूल, अजीर्ण, जीर्णज्वर आदि नष्ट होते हैं।

(८) **लवंगादिचूर्ण**—लौंग, शुद्ध कपूर, इलायची, दालचीनी, नागकेसर, जायफल, खस, सोंठ, स्याहजीरा, अगर, वंशलोचन, जटामाशी, गुलनीलोफर या कमलगट्टा, पिप्पली, सफेद चन्दन, तगर, सुगन्धबाला, कंकोल या शीतलचीनी, सब समान भाग ले चूर्ण करे। सब चूर्णकी आधी मिश्री मिलाकर रखे। यह बहुत प्रसिद्ध मुलायम प्रकृतिके लोगोंके लिये उपयोगी है। इसके सेवनसे सम्पूर्ण पीनस नष्ट होते हैं। यह अग्निवर्धक, रुचिकर, तृप्ति करनेवाला, ताकत लानेवाला, त्रिदोषनाशक, बलवीर्यवर्धक है। इससे खाँसी, कण्ठरोग, हृद्रोग, हिचकी, राजयक्ष्मा, तमकश्वास, अतीसार, उरःक्षत, प्रमेह, अरुचि, गुल्म, ग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं।

(९) **बाहुशाल गुड़**—इन्द्रवारुणी, नागरमोथा, सोंठ, दन्ती, हर्रा, निशोथ, कचूर, बायविडंग, गोखरू, चित्रक, तेजबल, ये सब दो-दो तोले, सूरण ३२ तोला, विधारा १६ तोला, शुद्ध भिलावाँ १६ तोला, सब दवाइयोंको १६ सेर गुड़ छोड़कर उसी काढ़ेमें फिर पकावे।

जब कलछीमें लपटने लगें, तब उसमें नीचे लिखी वस्तुओंका चूर्ण मिलावे। चित्रक, निशोथ, दन्ती, तेजबल, चार-चार तोला, सोंठ, मिर्च, पीपर, इलायची, पिपरामूर, दालचीनी, आंवला सब बारह-बारह तोला डाले। ठण्डा होने पर उसमें एक सेर मधु मिलावे। इसके सेवन से सब प्रकारके प्रतिश्याय, पीनस, सम्पूर्ण अर्श, गुल्म, वातोदर, आम-वात, ग्रहणी, क्षय, हलीमक, पाण्डु और प्रमेह नष्ट होते हैं। यह रसायन है।

(१०) **अगस्त्यहरीतकी**—एक सौ साफ वजनदार हर्रा एक कपड़े में ढीली बाँध पोटली बना ले। एक दूसरे साफ कपड़ेमें चार सेर साफ किये हुए जव बाँधे, यह भी पोटली ढीली बाँधे, फिर दश-मूलकी प्रत्येक दवा आठ-आठ तोले लेकर एक सेर ले। चित्रक, पिपरामूल, अपामार्ग, कचूर, केंवाचके बीज, शंखपुष्पी, भारंगी, गज-पीपर, बरियारीकी जड़, पोहकरमूल प्रत्येक औषधि आठ-आठ तोला दशमूल सहित सबको जब कुटकर एक बड़े पात्रमें डाल दें और उसमें एक मन पानी डाल चूल्हे पर चढ़ा दें। दोनों पोटलियोंको भी इसीमें डाल दें और मन्दाग्निसे पकावें। जब जल लगभग १० सेर बचे और हर्रं तथा जव अच्छी प्रकार पक जायँ, तब पात्रको उतार लें। पोटली अलग कर क्वाथ छान लेवे। फिर एक कलईदार बर्तनमें बत्तीस-बत्तीस तोले घी और तेल डाले। जब दोनों मिल जायँ, तब हर्रोंको पोटलीसे निकाल घृत और तेलवाले पात्रमें डाल दें। और अच्छी तरह तल लें। फिर उस काढ़ेमें ५ सेर गुड़ काढ़ेमें घोलकर छानकर हर्रें वाले पात्रमें छोड़ मन्दाग्निसे पकावे। जब अव-लेह योग्य पाक हो जाय तब चूल्हे से उतार लें और ठण्डा होने पर मधु और पीपलका चूर्ण एक-एक पाव छोड़ें। इसे किसी चीनीके पात्रमें रख दें। इसमेंसे दो दो हर्रं नित्य निकालकर अवलेहके साथ सेवन करें। इसके सेवनसे सम्पूर्ण पीनस, सब प्रकारके प्रतिश्याय,

क्षय, खाँसी, श्वास, हिचकी, अर्श, अरुचि, संग्रहणी रोग नष्ट होते हैं। शिरके रोग, चमड़े पर झुर्रियोंका पड़ना, अकालमें बालोंका पकना नष्ट होता है। यह अगस्त्यमुनि कथित रसायन है। उबाली हुई हर्रों को मुरब्बेके ढंग पर लकड़ीके कांटोंसे गोद देना अच्छा होगा, उससे अच्छी तरह भूनते बनेगा और गुड़का अवलेह भी भीतर पैठ जायगा।

(११) **शक्तुकधूम्रपान**—घी-तेल और सत्तू मिलाकर धूम्रपान करनेसे सब प्रकारके प्रतिश्याय, खांसी और हिचकी अवश्य नष्ट होती है। अथवा सम्पूर्ण गन्ध द्रव्य या दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची और नागकेसर का धूम्रपान करे अथवा स्याहजीरा कपड़ेमें पोटली-सी बनाकर रखे और उसे सूंघा करे।

(१२) **पारसीकपोटली**—सूंघनेके लिये खुरासानी अजवाइन, अरणी, घोड़वच, जीरा, कलौंजी इनकी पोटली बनाकर तवामें सेंककर बीच-बीचमें सूंघते रहें।

(१३) **व्योषादिवटी**—सभी नासारोगमें विशेषकर प्रतिश्यायमें लाभदायक है। व्योष-सोंठ-मिर्च-पीपल, तालीसपत्र, चव्य, तिंतड़ीक (अभावमें इमलीके बीज), अम्लवेत, चित्रक और जीरा आठ-आठ तोले, दालचीनी, इलायचीके दाने, तेजपात दो-दो तोले सबका चूर्ण कर २०० तोले पुराने गुड़को पकाकर उसमें दवाइयोंको मिलावे और तीन-तीन माशेकी गोली बनावे। इसे मुखमें रख चूसनेसे सब प्रकारके प्रतिश्याय-पीनस, दमा, खाँसी, आदिका नाश होता है। यह रुचि-वर्द्धक और स्वर भंगको दूर कर आवाज़ खोलने वाली है।

(१४) **मणिपर्पटीरस**—हीरेकी भस्म, मरकतमणि, पन्नाकी भस्म, पुष्परागमणि-पुखराजकी भस्म, इन्द्रनीलमणि-नीलमकी भस्म इन द्रव्योंकी उत्तम भस्म अथवा पिष्टी खूब बारीक पिसी हुई लेवे। शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल सब वस्तुएँ समान-समान भाग लेकर

पहले पारद गन्धककी कज्जली कर फिर अन्य द्रव्योंको भी उसीमें घोट दे। फिर एक कलछीमें जरा घी चुपड़कर उसीमें सब पिसी हुई दवा डाल बेरकी या बेहेड़ेकी लकड़ी जला कलछी आंचमें रखे। जब सब दवा टिघलकर एक रूप हो जावे तब गोबरमें रखे हुए केलेके पत्ते पर दवाको डाल ऊपरसें केलेके पत्ते और गोबर रख खूब दबा दे। जिससे दवा पपड़ीकी तरह जम जावेगी। इस मणि पर्पटीको पहले निर्गुण्डीके रसमें, फिर तुलसीके रसमें, इसके बाद सहिजनकी पत्तीके रसमें, धतूरेके रसमें, फिर मन्दारके रसमें, इसके बाद चित्रकके रस या काढ़ेमें, फिर सोंठ-मिर्च-पीपलके काढ़ेमें, इसके बाद त्रिफलाके रसमें, फिर केलेके रसमें और अन्तमें सुरसादिगणकी औषधियोंके काढ़ेमें घोट कर अदरखके रसकी सात भावना दे, अच्छा हो किसी भी वस्तुओंकी सात-सात भावना दे। यह रसपर्पटी नामक प्रसिद्ध रस है। इसे एक रत्ती प्रतिदिन मधुके साथ सेवन करते रहनेसे सब प्रकारके नासारोग नष्ट होते हैं। यदि मनुष्य पथ्यसे रहे, भोजनपानादिमें सावधानीसे वर्ताव करे तो किसी प्रकारकी व्याधि उसे नहीं सता सकेगी।

(१५) षडविन्दुतैल—भांगरा, लौंग मुलहटी, कडुवाकूट, और सोंठ बराबर-बराबर एक-एक छटांक लेकर कल्क करे और एक सेर पानीमें घोल सवासेर तेलमें डालकर चार सेर भांगरेके स्वरसमें पकाकर तेल सिद्ध करे। इस तेलका नस्य लेनेसे प्रत्येक नाकके नथनेमें छः छः बूंद छोड़नेसे समस्त नासारोग और शिरोरोग नष्ट होते हैं। शिरकी पीड़ा और आँखकी कमजोरीमें इसे शिर पर भी लगाते हैं।

(१६) कलिकादिनस्य—कलीचूना और नवसादर समान भाग लेकर चूर्ण करे। इसे एक रत्ती चुटकीमें लेकर नाकमें सुरके अथवा किसी नलीमें भर नाकमें फुंकवावे। इससे सब प्रकारके प्रतिश्याय, कृमि, शिरका दर्द आराम होता है।

(१७) शठ्यादिचूर्ण—कचूर, भुईंआंवला, सोंठ-मिर्च-पीपल, समान भाग लेकर चूर्ण करे फिर घी गुड़ मिलाकर खिलावे। इससे घोर प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, हृदयका शूल और वस्तिका शूल नष्ट होता है।

सावधानी

सावधानी—नासारोगको साधारण नहीं समझना चाहिये। इसमें असावधानी और लापरवाही करनेसे भयङ्कर रोगोंकी उत्पत्ति हो सकती है। आयुर्वेद ने सावधान करते हुए कहा है।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितामलाः।
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहित सेवनम्॥

वात-पित्त-कफ दोष, मल-मूत्र-स्वेद-मल, रस-रक्त-मांस-अस्थि-मेद-मज्जा और शुक्र ये सप्त धातु मिलकर तेरह दोष और दूष्य हैं। वात-पित्त-कफ विपरीत आहार विहारसे आपसमें स्वयं एक दूसरेको दूषित करते हैं और शेष १० दूष्योंको भी दूषित करते हैं। जिस समय इनमें दूषण आ जाता है उस समय इनकी मल संज्ञा हो जाती है। ये मल प्रकुपित होकर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं। रोग उत्पन्न करनेके जो कारण दूरके होते हैं और कालान्तरमें रोग उत्पन्न करते हैं वे विप्रकृष्ट निदान कहलाते हैं और जिन कार्यों के द्वारा तुरन्त रोग उत्पत्तिकी सम्भावना होती है वे सन्निकृष्ट निदान या कारण है। यह आवश्यक नहीं कि आज हम जो लापरवाही करते हैं वह रोगरूपमें उसी समय हमें कष्ट दे, उसका असर दो चार दिन और दो चार महीनों तक में दिख सकता है। इसलिये हर समय सावधान रहना आवश्यक है। ऐसा कोई रोग नहीं है जिसमें दोष विकृति न हो। शारीरिक रोगोंमें दोष विकृति पहले होती है, पीछे रोग प्रकट होता है। किन्तु आगन्तुक व्याधियोंमें पहले व्याधि हो जाती है और फिर दोषविकृति होती है;

किन्तु दोषविकृति होती अवश्य है। सबसे अधिक बलवान वायु होता है, वह प्रकुपित हो तो अन्योंको दूषित कर देता है। अतएव वातके प्रति सावधानी सबसे अधिक रखनी चाहिये। नासारोगमें भी वायुका प्रकोप विशेषता से और अधिकताके साथ होता है। नासारोगोंमें सबसे प्रधान प्रतिश्याय है। उसे लोग साधारण समझते हैं; किन्तु वह विगड़कर खांसी-श्वास-पूय और शोषको उत्पन्न करता है।

प्रतिश्यादथो कासः कासात्संजायते क्षयः
क्षयोरोगस्य हेतुत्वे शोषस्या प्युपजायते।

अर्थात् जुखाम पुराना पड़कर खांसी पैदा कर देता है। खाँसीसे श्वास होना क्रम प्राप्त है। किन्तु यदि उस खाँसीने फेफड़ेपर असर किया तो क्षयमें रस-रक्तसे लेकर शुक्र ही नही ओजपर्यन्तका क्षय होता है। ओजके क्षयसे और धातुओंके के क्षयसे शरीर सूखने लगता है। वह शोष फिर शरीरका ही शेष कर देता है। इसीलिये वाग्भट भी कहते हैं कि

क्रुद्धावातोल्वणा दोषा नासायां स्त्यानतांगताः
जनयन्ति प्रतिश्यायं वर्धमानं क्षयप्रदम्॥

अर्थात् आहारविहारके दोषसे नासागत वायु प्रकुपित होकर दोष विस्तार करता है और ज्यों-ज्यों उसके दोषोंका प्रभाव बढ़ता है त्यों-त्यों मनुष्य क्षीण होता जाता है और अधिक बढ़ने पर अन्तमें उसे क्षय हो जाता हैं। साधारण जुखामसे पीनस हो जाना, स्वरभेद हो जाना, नाकसे बदबू आना, नाकमें कीड़े पड़ जाना, नाक बैठ जाना, नाकसे मिनमिनाहटका शब्द निकलना, श्वासोच्छ्वासमें कठिनाई होना तो होता ही है। क्योंकि जुखामकी लापरवाहीसे दुष्टप्रतिश्याय होने पर शरीरकी सभी इन्द्रियोंका नास होता है। अग्निमांद्य, ज्वर, दमा, खाँसी, छाती और पसलियोंमें दर्द, नाकमें सूजन और दुर्गन्धि इसके परिणाम हैं।

कृमि भी इसी अवस्थाके दुष्परिणाम हैं। ऐसी दशामें गन्ध ज्ञानका ह्रास होता ही है।

हमारी नाकको दुहरा काम करना पड़ता है। जब हम साँस लेते हैं तब बाहरसे अम्बरपीयूष या आक्सिजन खींचकर नाकके द्वारा फेफड़ों में और सारे शरीरमें पहुँचाते हैं; और जब भीतरसे बाहर साँस छोड़ते हैं, तब फेफड़ों और रक्तके दूषित और विषाक्त अंश बाहर करते हैं। यह विषाक्त अंश भी नाकके ही द्वारा बाहर होता है। अतएव यदि हमारे शरीरके भीतर दूषित और विषाक्त अंश अधिक होगा तो जाते-जाते नासामार्गमें कुछ दोष और विष छोड़ ही जायगा। नाकमें यदि कोई उत्तेजक वस्तु पहुँचे तो उसे निकालनेके लिये तुरन्त छींक आती है। स्वाभाविक छींक भी मस्तिष्कके शुद्ध होनेका परिचय देती है। चिकित्सा करनेमें सावधानी यह रखनी चाहिये कि प्रतिश्याय का जड़मूलसे नाश हो जाय। अन्यथा यदि रोग दबा दिया गया तो ऋतुपरिवर्तन या खानपानकी गड़बड़ीसे फिर जुकाम हो जायगा। उपवास और संयम द्वारा शरीरमें रोग निवारक शक्ति बढ़ानेका भी प्रयत्न करना चाहिये। प्रतिश्याय रोगीको सादा, ताजा, कुनकुना भोजन लेना चाहिये। जहाँ तक बने सबेरे जलपान न करे, यदि आदत ही हो तो मालपुवा या बेसनके लड्डू अथवा सूखे मेवा लेकर पानी पी लेना चाहिये। दिनमें १० से १२ बजे तक भोजनकर लेना चहिये। तीसरे पहर तीन चार बजे कूछ फल लेना अच्छा है। रातमें सोनेसे पहले कुनकुना दूध मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। जहाँ तक बने रातको भोजन न करे। यदि करना ही हो तो सोनेसे तीन चार घण्टे पहले हल्का ताजा, सादा भोजन करे।

बिगड़े हुए और पुराने पड़े हुए जुखाममें बड़ी सावधानी अपेक्षित है। क्योंकि अधिक दिनों तक जुखामका रहना खतरनाक है। प्रतिश्याय रोगीको गलेमें गरम कपड़ा बाँधे रहना अच्छा है। गलेको सर्दी

से बचाना चाहिये, क्योंकि नासिका गत विकार गलेके द्वारा ही मुख, हृदय, आमाशय और फेफड़ेमें पहुँचते हैं। नासिका रोगीको कभी शिरसे स्नान नहीं करना चाहिये। पानीमें कपड़ा भिगाकर शिरको पोंछ लेना काफी है। नीचेके धड़को गरम पानीमें तौलिया या खद्दर का मोटा अँगोछा भिगकार देह पोंछ डालें। अथवा इसकी सुविधा न हो तो शिरको डुबाये बिना नीचे धड़में स्नान कर ले। जहाँ तक बने खुली जगह में स्नान न करे। यदि नदी या कुएँमें स्नान हो तो स्नान करनेके बाद तुरन्त शरीर पोंछकर कपड़े पहन ले या शरीरको चादरसे ढक ले। तालाबमें डुबकी लगाकर नहाना हानिकर है। या तो तालाब के पानीको उबालकर नहावें या फिर कपड़े भिगाकर देह पोंछ लें।

पश्चिमी वैज्ञानिक पत्तेकी गोभी और फूलगोभी की बहुत प्रशंसा करते हैं; किन्तु इसका शाक पित्तको उत्तेजित करता और कफको सुखाता है। इसलिये यदाकदा ही लेना चाहिये। लालमिर्च उत्तेजक है। इसका व्यवहार अच्छा नहीं। कालीमिर्च ले सकते हैं। सिरका या रायता भी उत्तेजक होते हैं। इनमें तेल, राई और मिर्चा पड़े बिना स्वाद नहीं आता। इसलिये इनसे बचना ही चाहिये। ये अम्लता भी उत्पन्न करते हैं।

नासारोगोंमें पसीना निकालना अच्छा है। पसीनेके द्वारा रक्तके दूषित अंश बाहर निकल जाते हैं। इसलिये सुरसादिगणकी औषधियाँ अथवा पिप्पल्यादिगण (पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, गजपीपर, रेणुकबीज, इलायची, अजमोदा, इन्द्रजव, पाढ़ी, जीरा, सरसों, बकायन, नीमके फल, हींग, भारंगी, मूर्वा, अतीस, बच, वायविडंग और कुटकी) की वस्तुएँ लेकर वर्तनका मुँह बन्दकर उबालें और रोगी बन्द कमरेमें बैठकर मोटी चादर ओढ़ ले। अपने सामने कपड़ोंके भीतर काढ़ेका बर्तन रख उसका मुँह खोल दे। रोगीका सिर खुला रहे और चाहे तो सिरपर एक गीला कपड़ा रख दें।

बर्तनकी भाफसे सारे शरीरमें पसीना आवेगा। जब खूब पसीना आ जाय, तब शरीर पोंछ डाले और थोड़ी देर तक बन्द कमरेमें ही रहे। अथवा रोगी बिना बिस्तरकी चारपाई पर लेट रहे। सिर खुला रखे और सारा शरीर एक चादरसे इस प्रकार ढके कि चारपाईकी पाटीके नीचे तक कपड़ा लटकता रहे। चारपाईके नीचे काढ़ेवाला बर्तन मुंह खोलकर रख दे। इस प्रकार भी सारे शरीरसे पसीना निकलेगा। गरम पानीमें एक तोला द्राक्षासव मिलाकर पीवे और कपड़ा ओढ़कर लेट रहे, इससे भी पसीना आ जायगा। गरम पानीमें नमक मिलाकर नाकसे सुरकने या नाकमें पानी चढ़ाकर मुंहसे निकाल देनेसे नासा-रन्ध्र साफ रहते हैं, वहाँ क्लेद और दूषित अंश जमा नहीं हो पाते। नाकसे बफारा लेना लाभदायक है। नाकके नीचे स्वेदनीय द्रव्य या वायुनाशक द्रव्यका काढ़ा रख नाकमें धुआँ चढ़ने दे। इसी तरह धूम्रपान (विधि पहले लिखी जा चुकी है) करनेसे भी नासा मार्गमें शोथ नहीं होने पाता और वहाँ दूषित परमाणु और कीटाणु नहीं जमा हो पाते। नाक क्लेदरहित रहती है। नाकसे पानी निकालनेके सिवाय यदि नेतिक्रियाका अभ्यास डाला जा सके तो पीनस आराम करनेमें बहुत सहायता मिलती है। एक बारीक सूती कपड़ा या गरम सूतकी बटी हुई बत्ती नाकमें डालकर निकाली जाती है। इससे नासा-रन्ध्र स्वच्छ और खुले रहते हैं। प्रायः नासारोगियोंके पैर ठण्डे रहा करते हैं। इससे इस बातका परिचय मिलता है कि रोगीके शरीरमें ठीकसे रक्त परिभ्रमण नहीं हो रहा है। गरम पानीसे हाथ-पाँव खूब रगड़कर धोवें, पाँवमें मोजे पहने रहें। रातमें सोते समय पाँवकी पिंडलियोंके नीचे गरम पानीकी बोतलें रखें। एक तपेलीमें नमक छोड़कर पानी गरम करें और उसमें कुछ देर तक पाँव डुबाकर रखें। थोड़ी देर ठण्डे पानीमें डुबावें, फिर पाँव पोंछ कर मोजे पहन लें। यदि मोजेके ऊपर गेटिस या कपड़े की पट्टी भी ढीली कस ली जाय

तो अच्छा हो। मुख्य चिकित्सा रोगके लक्षणोंको दबाना नहीं बल्कि कारणोंको दूर करते हुए व्याधिको शोधनपूर्वक बाहर निकालना है। शमन चिकित्सा तात्कालिक होती है। शोधक चिकित्सा ही मुख्य है। नासा रोगोंमें प्रकुपित वायुके द्वारा कफ और रक्तमें विकृति आती है। इसलिये इसकी चिकित्सामें रक्त शुद्धिका भी ध्यान रखना चाहिये। श्लेष्मिककलाओंका शोथ हटाना तो आवश्यक है ही। नासारोगमें अम्लता बढ़ जाती है, उसे हटानेके लिये क्षारमय पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकताकी पूर्ति फलोंवाली तरकारियों तथा पालक चौराई, परवर, नेनुवाँ, आदिसे हो जाती है। मैदा, चीनी, मिर्चा, अधिक गरम मसाले तथा तेल नहीं होना चाहिये। खोवा, रबड़ी, मलाई; मांससे परहेज रखना चाहिये।

जिस प्रकार यह आवश्यक है कि नासारोगीको पाखाना साफ हुआ करे, उसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि उसे पेशाब भी साफ होना चाहिये। पेशाबके द्वारा बहुतसे हानिकारी विष शरीरसे बाहर निकल जाते हैं। इसलिये भोजनमें फलोंकी अधिकता रहनी चाहिये। भोजनके साथ कुछ ऐसी वस्तुएँ भी रहनी चाहिये जो कच्ची ही खायी जा सकें। यद्यपि कच्ची मूली लाभकर नहीं है; किन्तु टमाटर, मूली, अदरख, हरी धनियाँ, पोदीना और नमक नींबूका रस निचोड़ कर कच्ची खावें तो हानि न हो। जुखाम या नासारोगमें कुछ हलके जुलाब लेना सदा लाभदायक होता है। जुखाममें श्लेष्मा और क्लेदकी वृद्धि हो जाती है, उसके शोषणके लिये आवश्यक है कि रोगीको लंघन कराया जाय। लंघन के समय गरम जल पीवे। ठण्डा पानी तो नासारोगीको पीना ही नहीं चाहिये। उबाला हुआ जल भी थोड़ा ही लेना चाहिये। नासारोगी निवात स्थानमें बन्द कमरेमें रखा जाय, यह सभी आयुर्वेद ग्रन्थोंमें हिदायत है। खासकर जहाँ ठण्डी हवा चलती हो, या झोंकेदार अथवा पूर्वी हवा हो, वहाँ तो खुली हवामें

रहना ही नहीं चाहिये। जुखाममें नहाना हानिकर, खासकर डुबकी लगाकर सिरसे नहाना एकदम मना है। जुखामको रोकनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। उससे बड़ी व्याधि उत्पन्न हो सकती है। जुखाम पककर बह जाय यह सर्वथा उत्तम है। पसीना निकालनेके लिये तुलसी और अदरखकी चाय पीनी चाहिये। बनफशा, मुलेठी, मुनक्का, अंजीर, उन्नाब आदिका जुशांदा या काढ़ा देना भी अच्छा रहता है। जुखामवालेको सर्दीसे बचना चाहिये। सर्दी लग जानेसे जुखाम बिगड़ जाता है और इनफ्लुएञ्जा, न्यूमोनियाँ आदि व्याधियाँ उत्पन्न होनेका डर रहता है।

जिस प्रतिश्यायमें पित्त अल्प हो, उसमें स्निग्ध द्रव्योंसे, एरण्ड तैल या बादामके तेल से विरेचन कराना चाहिये। वातज प्रतिश्यायमें स्नेहनके पश्चात आस्थापन बस्ति देकर दोषोंको निकालना चाहिये। लघु अन्न, जो स्निग्ध और अम्ल हों, ग्राम्यजीव बकरा आदि तथा पक्षियोंके माँस रससे लेवे। गरम जलसे स्नान करे और गरम जल ही पीवे। ऐसे घरमें रहे, जहाँ अधिक हवा न आती हो, वातज प्रतिश्यायका रोगी चिन्ता, व्यायाम, बहुत बोलना और मैथुन त्याग दे। विदार्यादिगण या पंचलवणसे सिद्ध किया हुआ घृत जितना पचा सके पीवे। पैत्तिक प्रतिश्यायमें पहले प्रतिश्याय पकानेके लिये अदरखसे साधित घी और अदरखसे ही साधित दूध पीनेको दे, पक जाने पर शिरोविरेचन करे। पित्तज प्रतिश्यायमें घी-दूध, गेहूँ, जव, शालि-चावल, जांगल्य जीवोंका मांसरस, शीतवीर्य, अम्ल और तिक्तरस प्रधान शाक तथा मूंगकी दालका जूस हितकारी होगा। कफज प्रतिश्यायमें यदि गुरुता और अरुचि भी हो तो आदिमें लंघन करावे। प्रतिश्यायको पकानेके लिये शिर पर घी चुपड़ कर स्वेदन करे और कफनाशक औषधियोंके क्वाथसे शिर पर तरेरा दे, घीसे भूनकर मूंगका चूर्ण और लहसुन दे। कण्डूयुक्त अपीनस, पूतिनस्य, नासास्राव,

नासाकण्डूमें धूम्रपान और कटुरस प्रधान द्रव्योंसे अवपीड़क-नस्य दे। कफपीनसमें भी यही उपाय करे। प्रतिश्यायका वेग कम हो जाने पर स्निग्ध रोगीको कफजप्रतिश्याय वमनीय मदनफल आदि द्रव्योंसे सधित दूधके साथ तिल और उड़दकी यवागू पिलाकर वान्ति करानी चाहिये। बैंगन, परवर, वनपरवर, त्रिकटु, कुलथी, अरहर और मूंगका जूस तथा कफनाशक अन्नपान देना हितकर है, पीनेको गरम जल देना चाहिये। दुष्ट प्रतिश्यायमें त्रिदोष नाशक चिकित्सा की जाती है। नासाशोथमें शोथनाशक उपाय करने चाहिये। पित्त और रक्तके विकारसे होनेवाले प्रतिश्यायमें काकोल्यादि गणसे साधित-घृत पान करे और शीतल परिषेक, शीतलस्वेदन करे।

पथ्यापथ्य

पथ्येसति गदार्तस्य किमौषध निषेवणैः
पथ्येऽसति गदार्तस्यं किमौषध निषेवणैः ॥

किसी रोगके अच्छे होने या विगड़नेमें, घटने या बढ़नेमें आहार-विहार अर्थात खान-पान और हमारे रहन-सहनका बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि हम बहुत बढ़िया बढ़िया दवाइयाँ करते हैं, बड़े-बड़े वैद्योंकी सलाहसे औषधियाँ तैयार कराते हैं; किन्तु खानपानमें परहेज नहीं करते एक रत्ती दवा खाते हैं और पावभर कुपथ्य कर लेते हैं तो वह औषधि कुछ काम नहीं कर सकती। औषधि सेवन व्यर्थ है। इसके विपरीत यदि हम सादा आहार-विहार रखते हैं, पथ्यसे चलते हैं, जिह्वा और अन्य इन्द्रियोंको काबूमें रख वर्ताव करते हैं तो कोई दवा न भी खावें तो भी हम रोगी नहीं हो सकते। यदि साधारण रोग होवे भी तो साधारण सावधानीसे ही वह चला जायगा।

जो कुछ हम खाते हैं उसीके द्वारा निर्मित रसरक्तादिसे हमारा शरीर बनता है। हमारी माँस पेशियोंका निर्माण और पोषण आहार-

जनित रसरक्त और मांसके कोषोंसे होता है। ये कोष ही भिन्न भिन्न अङ्गमें भिन्न-भिन्न काम किया करते हैं। नासागत पेशियोंके द्वारा गन्ध ग्रहण और नेत्रगत पेशियोंसे तेज ग्रहण होता है। जैसा आहार होगा हमारे रसरक्त में वैसा ही पोषण या शोषण, शोधन या दूषण अंश होगा। यदि इन्हें अभीष्ट आहार न मिले तो वे निर्बल और निर्जीव होंगे। अतएव अपना काम करनेमें असमर्थ होंगे। यदि आहार शरीर शोधक होनेके बदले दोष प्रकोपक होगा तो रोगकी जड़ पड़ने लगेगी और रोग प्रकट होने पर वह जड़ मजबूत होती जायगी। इसलिये रस-रक्त और मांस पेशियोंकी शक्ति बनाये रखनेके लिये शुद्ध और शास्त्रोक्त आहार-विहार अपेक्षित है। यदि हमारा आहार-विहार परिमित हो तो आहार द्वारा जो दोष दूषक और हानिकर भाग (जिन्हें प्राकृतिक चिकित्सक विजातीय द्रव्य करते हैं) शरीरमें पहुँचने ही न पावें। यदि हमारी पाचन शक्ति और रसग्रहण तथा शोषण शक्ति समुचित रहे तो शरीरमें अनावश्यक क्लेद न रहे, न सड़न पैदा हो और न आधुनिक वैज्ञानिकोंके भयप्रद कीटाणु ही उत्पन्न हो सकें।

साधारणतः शरीरमें भीतर ऐसी व्यवस्था है कि यदि कोई हानिकारी अंश पहुँचे भी तो उसका असर दूर करनेके लिये शमन और स्वस्थहित प्रकृतिके अंश उनका मुकाबला करते हैं और उनका हानिकारी असर मिटानेका प्रयत्न करते हैं। यही नहीं मल-मूत्र-स्वेद-वान्ति आदि क्रियाओं द्वारा हानिकारी अंश को बाहर निकालनेका भी शरीर प्रयत्न करता है। यदि शरीर शुद्ध आहार-विहार द्वारा सशक्त प्रतिकारक्षम न हो तो ऐसी क्रिया सम्पादित नहीं हो सकती और दूषित अंश मलरूपसे संचित होते रहते और रोगोत्पादन करते हैं। शारीरिक कोष छोटे होने पर भी अपना कार्य सम्पादन करनेके साथ ही आत्मरक्षा करनेकी भी शक्ति रखते हैं। दूषित अंश जब उन तक पहुँचते हैं तब उनमें एक उत्तेजना उत्पन्न होती है और उस दूषित अंशको बाहर

निकालनेका प्रयत्न होने लगता है। यदि दूषित अंश प्रबल हुए तो कोष पराजित हो जाते हैं और दूषित प्रभाव अपना काम करने लगते हैं। यदि शरीर कमजोर हो तो वह बाहरी आक्रमण रोकनेमें समर्थ नहीं होता। जरा-सी भी सर्दी लगने या ठण्डी वस्तु खानेसे जुकाम हो जाता है। पहलेसे शरीरमें जो दोष इकट्ठे रहते हैं वे बारूदके समान बिछे रहते हैं, तात्कालिक कारण उसमें दियासलाई लगानेके कारण बनते हैं और भड़क कर वह रोगके रूपमें सामने आ जाते हैं।

औषधि द्वारा रोग दूर किया जाय और फिर संयम द्वारा रोग निवारक शक्ति बढ़ायी जाय तब फिर सहसा प्रतिश्याय होनेकी सम्भावना नहीं रहती। जो लोग धूपमें परिश्रम करनेके आदी हैं, सादा भोजन, ताजा करते हैं, उन्हें प्रतिश्याय होनेका भय बहुत कम रहता है। यदि शुद्ध वायु निस्सरण हो और नित्य साफ पायखाना हो जाया करे तो भी रोग होनेका डर नहीं रहता। ऋतु और शरीर शक्तिके अनुसार नित्य हलका व्यायाम कमसे कम खुली हवामें एक घण्टे टहलनेका व्यायाम करते रहना आवश्यक है। बीच-बीचमें उपवास आवश्यक है। उपवासके दिन यदि कुछ न लिया जाय तो अच्छा है अथवा केवल जल या जलमें नीबूका रस और चीनी डालकर शर्बत लेना अच्छा है। सन्तरेका रस, पपीता, सेब, नासपाती आदि भी ले सकते हैं। रातमें कुछ दूध कुनकुना लिया जाय। यदि मलबद्धता रहती हो तो रातमें सेंधा नमक मिला कर आधे तोलेसे एक तोले तक त्रिफला फाँककर गरम पानीसे उतार लिया जाया करे। अथवा कुछ छोटी लम्बी हरें पीस नमक मिलाकर खावें, ऊपरसे कुनकुना पानी लें तो पायखाना साफ हो जाया करेगा। इस रोगके पथ्यमें मुख्य ध्यान देनेकी बात यह है कि खूब भरपेट भोजन न करे, ऐसी वस्तुएँ न खावे जो देरसे हजम होती हों या कब्ज करती हों। भोजनकी वस्तुएँ ऐसी भी न हों जो वायुको विकृत करें और कफको बढ़ावें। ऐसी तेज भी न हों जो कफको सुखा दें।

प्रतिश्याय रोगीको अम्ल पदार्थोंसे बचना चाहिये। अम्लपदार्थ रक्तमें भी अम्लता (Acidity) पैदा करते हैं। अम्लताको नष्ट करनेवाले क्षार पदार्थ हैं; इसलिये क्षारपदार्थ यदि भोजनमें रहे तो कफ सूखने नहीं पाता और अम्लताजनित क्लेद भी नहीं उत्पन्न हो पाता। यदि तीव्र कफजनित प्रतिश्याय हो तो अदरख, तुलसीकी चाय अथवा चायमें अदरख डाल अधिक दूधके मेलसे बना कर ले सकते हैं। अकेला दूध भोजनके पहले लेना अच्छा नहीं, क्योंकि वह आमरस उत्पन्न करता है। खानेपीनेकी वस्तुएँ हलकी आँचमें पकानी चाहिये। यदि ज्वर रहता हो और लंघनकी आवश्यकता हो तो लंघन करावे। यदि ज्वर हल्का हो तो दाल रोटी, भात, फल, तरकारी आदि देवे। लङ्घनके सम्बन्ध में लिखा है "अक्षि कुक्षि भवारोगाः प्रतिश्याय व्रणज्वराः। पञ्चते पञ्चरात्रेण प्रशमं यान्ति लंघनात्॥ अर्थात लंघनसे आँखके रोग, पेटके रोग और प्रतिश्याय पाँच दिनमें शान्त हो जाते हैं। विशेषकर नूतन प्रतिश्यायमें मक्खन निकाले हुए स्निग्ध दधिमें सोंठ-मिर्च, पीपल और गुड़ मिलाकर खट्टा दही खावे तो नये प्रतिश्यायका नाश होता है और विशेषकर कफका पाचन होता है। नये प्रतिश्यायमें इमलीके पत्तों अथवा गूदेका पकाया हुआ जूस हींग और मिर्च मिला कर लेना हितकारी है। प्रतिश्याय रोगीके लिये जो पीनेका पानी बनाया जाय उसमें यदि बेलका छिलका, अग्निमंथ, श्योनाक, पाटला, खँभार, बरियारीकी जड़, बेरका बेचुन, कुलकी, जव और सोंठकी पोटली छोड़ कर पकाया जाय तो बहुत लाभदायक होता है। धूम्रपान करते समय धूम्रपानकी औषधिमें थोड़ा गायका घी मिला लेना चाहिये।

पथ्य

भोजन—पुराने गेहूँ, जौ और चनेकी रोटी नासारोगीके लिये लाभदायक है। गेहूँका चोकर न निकाला जाय, जौ को पहले कुछ करमोकर रातभर रहने दे फिर सबेरे कूटकर छिलका निकालकर पीसा

जाय। चना अकेला नहीं बल्कि गेहूँ या जवके साथ एक चौथाई मिलाकर आटा पीसा जाय। रोटी बनाते समय आटेमें कुछ अजवाइन या जीरा और नमक मिला दें। रोटी घीसे चुपड़कर न लें। घी दालमें डालकर या रोटीके टुकड़ेसे डुबाकर लिया जा सकता है। अरहर, चना, मसूरको छोड़ अन्य दाल सदा छिलकेदार लेनी चाहिये। यह जल्दी हजम होती और शुद्ध पायखाना लाती है। दालमें कुलथी, अरहर, मूँग और मसूर व्यवहार करना चाहिये। चावल जहाँ तक बने न ले। लें तो पुराने बढ़िया चावल ले, सेंधा नमकके सिवाय अन्य नमक नहीं लेना चाहिये। यद्यपि दही अभिष्यन्दी है तथापि गुड़ और कालीमिर्चके साथ वह प्रतिश्याय रोग में लाभदायक होता है। घी, दूध, खीर आदि उत्क्लेदकारी पदार्थ खिलावे जो दोषोंको बाहर निकालनेमें प्रवृत्त करे। भोजन हल्का, गरम और लवण घृत विशिष्ट करना चाहिये। दूध बृहत्पञ्च-मूल डालकर क्षीर पाक कर लेना चाहिये। षडङ्गजूसमें घी और गुड़ मिलाकर पीना चाहिये। जहाँ तक बने भोजनमें सूखी वस्तुएँ रहें। गुड़-दूध-चना-सोंठ, मिर्च-पीपर-जाङ्गल्यजीवोंका मांस, जव, गेहूँ, दही, अनार, कोमलमूली का जूस, कुलथीका जूस भोजनमें अधिकतासे रहना चाहिये। भोजनके बाद पुरानी वारुणी या दशमूलारिष्ट लेवें।

शाकतरकारी—मूँगकी मुँगौरी, ककरी, लौकी, परवर, नेनुआँ, पालक, चौराई जैसे शाक उबालकर या साधारण छौंककर लेवें। छौंकनेके लिये जीरा, हींग, मेथीका उपयोग करे। मसालोंमें हल्दी, कालीमिर्च, लौंग, बड़ी इलायची, तेजपात, दालचीनी और धनियाँका उपयोग कर सकते हैं। शाक या दालमें सदा सेंधानमकका उपयोग करें। सालनमें मूँगकी रसाजें बनवा सकते हैं। मूँगके मुँगौरा या भजिया भी घीमें बनवाकर ले सकते हैं। पके टमाटरोंका रस हींगसे छौंककर नमक कालीमिर्च मिला ले सकते हैं। पपीतेका शाकभी लेना चाहिये। नासारोगकी साधारण अवस्थामें परवर, पालक आदिके साथ कुछ

आलू भी दे सकते हैं। तरकारियाँ यथासम्भव फलवाली हों। माँसरस, तिक्तशाक, मूँगका जूस, जाँगल्य जीवोंका माँस हित है। बैंगन, सहिजन, मेथी, ककोड़ा, कोमलमूली, लहसुन, दही, त्रिकटु आदिका शाकमें उपयोग करे।

अचारचटनी—प्रतिश्याय रोगीके लिये अम्लपदार्थ वर्जित है। परन्तु इच्छा होने पर नींबू नमक-मिर्च मिला आगमें गरमकर चूस सकते हैं। नींबूका अचार भी जो केवल नमक मिर्च डालकर बनाये हो ले सकते हैं। आलू बुखारा या आँवला, अदरख, पोदीना, हरी धनियाँ, जीरा डाल चटनी बना सकते हैं। अनार मीठा खट्टा दोनों लिये जा सकते हैं।

फल-फलहरी—नींबू, सन्तरा, सेव, अञ्जीर, नासपाती, पपीता आदि फल लेना हितकारी है। ऋतुफलोंमें पके आम, खीरा, खरबूजा खाना अच्छा है। खीरा छिलके सहित खाना चाहिये। खीरे के साथ नमक और कालीमिर्च मिला ले, खरबूजेमें चीनी डाल ले। नमक मिर्चके साथ अमरूद भी खा सकते हैं, किन्तु अमरूद कभी रात में न लें। यों तो कोई भी फल जहाँ तक बने रातमें न ले, पके टमाटर खाये जा सकते हैं। गाजर कच्ची या तरकारीके रूपमें खा सकते हैं। नासा रोगीको भोजनके पहले सोंठ, मिर्च, पीपर अलग-अलग या मिलाकर जम्बीरी नींबू, अदरख, सोंठ, गुड़का सिरका आदि लेना हितकर है।

जलपान—साधारणतः प्रतिश्याय रोगीको जलपान न करना अच्छा है। इससे आमरस और क्लेद अधिक उत्पन्न होता है; किन्तु जलपानके बिना जिनकी तबियत बिगड़ जाती है, जुखाम हो जाता है, वे मालपुवा खाकर पानी पी सकते हैं। बेसनके लड्डू भी ले सकते हैं, अथवा मूंगके चिल्ले बनवाकर लें, बादाम और पोस्तके दाने रातमें भिगा दें। सबेरे धो-पीसकर घी, काली मिर्च और मिश्री मिलाकर हरेरा सा पतला हलुवा बना लें। चोकरको भिगाकर कपड़ेसे छान

हल्दी, काली मिर्च और नमक डालकर भी हरेरा बना सकते हैं। मश्री या बतासा खाकर भी पानी पिया जा सकता है। गाजरका हलुवा भी बनाया जा सकता है।

पानी—सदा औटाकर ठण्ढा कर लेना चाहिये। कच्चा पानी प्रतिश्याय रोगीको बहुत हानिकर है। यदि मध्यवर्षा श्रावण-भाद्रमें भूमि में गिरे बिना आकाशका जल रोक लिया जाय तो वह गांगजल ठण्डा भी लिया जा सकता है। कार्तिकसे ज्येष्ठ तक शुद्ध गङ्गाजल ठण्डा लिया जाय तो अधिक हानिकर नहीं होगा। तालाबका जल तो बिना पकाये लेना ही नहीं चाहिये। साधारण जुखाममें नींबूका शर्बत लाभदायक होता है।

बिहार—नित्य खुली हवामें कमसे कम एक घण्टे टहलना अच्छा है। हलका व्यायाम भी किया जा सकता है। नासा रोगीको यथासम्भव निर्वात स्थानमें रखना चाहिये। विशेषकर ठण्डी हवा; पूर्वी हवा, झड़ी वर्षाकी हवा और झंझावातसे एकदम बचना चाहिये। गरम मोटे कपड़े पहनना उचित है। शिरपर मोटा कपड़ा लपेटे रहना चाहिये।

अपथ्य—शराब, काफी, चाय, तमाखू, सिरका आदि ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका सेवन सभीको बहुत सँभालकर करना चाहिये। शराब अनावश्यक उत्तेजना उत्पन्न करती है और काफी-चाय-तमाखू वायुका प्रकोप कर पित्तको उत्तेजित और विदग्ध करती हैं। कफको सुखाती हैं। इसलिये विशेषकर नासागत रोगियोंके लिये तो ये हानिकारक है ही। यद्यपि नमक पाचक पदार्थ है तथापि नमकका अधिक उपयोग भी हानिकारक है। क्योंकि उससे क्लेद बढ़ता है। नासागत तरल भागको निकालता है। नमकमें सैंधानमक लेनाही उचित है। आजकल बिजली और तेलसे चलनेवाली चक्कियोंका आटा निर्जीव और आमाशय तथा पक्वाशयके लिये दुर्जर होता है। अधिक शाक और तेलसे बने पदार्थ भी हानिकर ही हैं। देरसे हजम होनेवाले, मैदेवाले और घीसे बने

हुए हलुवा, पूड़ी आदि प्रतिश्याय रोगीको नहीं लेना चाहिये। विसकुट केक, पुडिंग्स आदि भी भारतीयोंके लिये असात्म्यकर पदार्थ हैं। ताजे दूधके बदले डब्बोंमें बन्द किया हुआ दूध देना भी अस्वाभाविक है। मांस भी प्रतिश्याय रोगीको नहीं लेना चाहिये। चौंरा और मटरका व्यवहार नहीं होना चाहिये। अरहरके सिवाय अन्य मूँगकी दाल छिलका निकालकर लेनेमें शरीरमें उसके द्वारा जीवनीय द्रव्य नहीं पहुँच पाते। पतले रसादार भोज्य पदार्थ यथा सम्भव नहीं रहना चाहिये। नासारोगमें ऐसे पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये जो जरा भी कफको बढ़ावें। यदि कफका उपद्रव हो तो भात न देकर रोटी या अन्न कोई रूखा पथ्य दे। पूय और नासापाकमें तथा पित्त प्रधान नासारोगमें रक्त-पित्त नाशक आहार-विहार चाहिये। इसलिये पित्तवर्धक या उष्णता उत्पन्न करनेवाले पदार्थ ऐसे रोगीको भूलकर भी न देवे। नासाज्वरमें अधिक रूक्षण क्रिया उचित नहीं; क्योंकि उससे कफ सूखनेका डर रहता है।

आहार—मैदाआटा, मटर, उड़दकी दाल, कढ़ी, उड़दके बड़े, कचौड़ी, मांस, मछली, खोवा, रबड़ी, मलाई हानिकारक है। नासारोगीके लिये रसादार पतली खाद्य वस्तुएँ वर्जनीय हैं। यदि नासारोगके साथ ज्वरभी हो तो आरम्भमें भात न देकर हल्का पथ्य देना चाहिये। तेल साधारणतः मना है; किन्तु यदि किसी औषधिके साथ तैल पाक करने या अनुपानमें लेनेका विधान हो तो विशेष अवस्थामें ग्राह्य है।

शाकसब्जी—कटहर, केला, सेम, कच्चीमूली, आलू, शकरकन्द, अरुई, भिण्डी, काशीफल-कुम्हड़ा, हानिकर है।

शाक-तरकारियोंमें अधिक मसाला देना और उन्हें अधिक देर तक पकाते रहना हानिकर है।

फल-फलहारी—बेर, तरबूज, ककरी, फूट, केला, कच्चे आम, लीची, हानिकारक खट्टे फल वर्जित हैं किन्तु कुछ अवस्थाओंमें जम्बीरी नींबू, सन्तरा, मीठे नींबू, अनार; आलूबुखारा ले सकते हैं।

जलपान—खोवे की मिठाई, मैदेसे बने पकवान, बासी वस्तुएँ त्याज्य हैं। किन्तु वातपित्ताधिक प्रतिश्यायमें रोगी भोजनके बाद सोने के पहले रातमें यथेच्छ ठण्डा पानी पीवे तो लाभदायक होगा।

पानी—ठण्डा पानी नासारोगीके लिये सर्वथा त्याज्य है। जङ्गली जगहोंका और जिन कुओंमें पानी पासहीं निकलता है, वह तो विष है। उसे पकाकर छानकर ही लेना चाहिये। शर्बत और वर्फ बहुत हानिकारी हैं। बहुत ठण्डा पानी और बरसाती पानी भी हानिकर है। तालाबका पानी भी नहीं पीना चाहिये।

विहार—अधिक बैठे रहना, दिनमें सोना, रातमें जागना, सोकर बीचमें तुरन्त पानी पीना विष समान है। दूध पीनेके बाद घण्टेके भीतर जल नहीं पीना चाहिये। सिरसे स्नान करना वर्जित है। खुले शरीर या बारीक कपड़े पहनकर घूमना हानिकारक है। स्नान, शोक, क्रोध अधिक निद्रा और ठण्डे पानीको वर्ज्य करे। मलमूत्रका वेग धारण करना अहित है। नासारोगीको भूमिपर नहीं सोना चाहिये।

परिशिष्ट

पुस्तकके मूल भागमें उन रोगोंका वर्णन हुआ है जो खास नासिकामें होते हैं। किन्तु स्थान-स्थानमें इस प्रकारका उल्लेख आया है कि नासिका रोगका सम्बन्ध ब्रोंकाइटिस, इनफ्लुएञ्जा आदिसे भी है। अथवा नासिका रोगकी चिकित्सामें लापरवाही होनेसे या उसके उपद्रव रूपसे कुछ बीमारियाँ हो जाया करती हैं। नासारोगका यह मुख्य विषय नहीं; अतएव इसका वर्णन देना उचित नहीं समझा गया। तथापि उनमेंसे कुछका संक्षेप रूपसे परिचय दे देना अच्छा होगा।

खाँसी—प्रतिश्यायके साथमें कुछ-कुछ खाँसी भी आने लगती है और प्रतिश्याय पुराना पड़ने पर या बिगड़ने पर तो खाँसी रोगरूपसे आ जाती है। प्राणवायु दूषित होकर उदानवायुके साथ मिलकर

काँसेके फूटे वर्तनके समान शब्द निकालता है, उसे कास या खाँसी कहते हैं। वातज-पित्तज-कफज-क्षतज और क्षयज पाँच प्रकारकी खाँसियाँ हुआ करती हैं। जब प्रतिश्याय पुराना पड़कर फेफड़ेमें असर करता है, तब क्षयकी खाँसी आरम्भ होती है। फेफड़े या गले या श्वासनलिका या नासागुहामें क्षत होनेसे जो खाँसी होती है, वह क्षतज कहलाती है। गलेके टांसिल बढ़ जानेसे भी खाँसी आने लगती है। पुराने जुखाममें टांसिल बढ़ जाया करते हैं। श्वास प्रणालीमें प्रदाह होनेसे जब उसमें दबाव पड़ता है, तब भी खाँसी आती है। किसी ग्रन्थि अथवा किसी ट्यूपरके दबावसे भी खाँसी आ जाती है। कर्णगत विकारमें कानमें गूथ भर जानेसे भी खाँसी आने लगती है। फुफ्फुसमें विकार होनेसे खाँसी आती है। नासिकागत विकारके कारण जो खाँसी आती है, उसमें छींकें भी आती हैं। ट्राईजेमिनलनर्वस-वातनाड़ीके प्रक्षोभके कारण खाँसी आती है। श्वासपथ, स्वरयन्त्र, गला, फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, गलेसे फेफड़ोंके जानेवाली नसें (ब्रोंकिया) इनमेंसे किसीमें शोथ-प्रदाह होनेसे खाँसी आवेगी। खाँसीके द्वारा उन-उन स्थानोंका संचित मल और दोष कफके द्वारा निकलता है। रक्तकी अशुद्धतासे भी खाँसी आती है। जब रक्तमें कोई खुजली या प्रदाह करनेवाली वस्तु हो, तब खाँसी आवेगी। लौंग, मिर्च, बहेड़ेके छिलका समान भाग और सबके बराबर कत्था लेकर बबूलकी छालके काढ़ेमें सबको घोटकर गोलियाँ बना ले। इन्हें मुंहमें रखकर चूसनेसे खाँसी नष्ट होती है। मीठी, खट्टी मिर्च, मसाला, मैदा, पीठी, तेल आदिकी वस्तुओंसे परहेज रखे।

कुकुरखाँसी—डाक्टर लोग तो इसे वैसिलस पर्ट्युसीस नामक जीवाणुके कारण हुआ मानते हैं और इसे हूपिंगकफ Whooping Cough के नामसे सम्बोधन करते हैं। यह प्रायः १० बारह वर्षके लड़कोंको होती है। लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंमें अधिक होती है।

यह प्रायः श्लैष्मिककलाओंमें कफ सूख कर लिपट जानेके कारण होती है, अतएव शीत देशोंकी अपेक्षा उष्ण देशोंमें अधिक होती है। क्योंकि शीत और आर्द्रवायुमें कफ सूखनेकी सम्भावना नहीं रहती, लड़के खाँसते-खाँसते बेहोश हो जाते हैं। एक के बाद आसपासके अन्य लड़कोंको भी हो जाया करता है। डाक्टर लोग गले और श्वास न-लिकामें जीवाणुओंका होना बतलाते हैं। कुकुरखाँसीवाले बीमारके जूठे पदार्थ या बर्तन का उपयोग करने, उसके साथ सोनेसे यह औरोंको हो जाती है। पहली अवस्थामें नासास्राव, छींकें आना, आँखोंसे पानी बहना, सूखी खाँसी, आँखोंका लाल होना तथा इनफ्लुएञ्जाकेसे लक्षण होते हैं। खाँसी कष्टदायक होती है। खांसते समय छातीमें एक प्रकारकी आवाज होती है। यह अवस्था दो सप्ताह तक रहती है। दूसरी आवेगकी अवस्था होती है। खांसीके बाद व्हूप ऐसा शब्द होता है इसीसे हूपिंग कफ कहते हैं, और खों-खों कर कुत्तोंके समान लगातार खांसी आती है, रोगीका मुँह लाल हो जाता और कय हो जाती है, इसलिये कुकुरखांसी कहते हैं। गलेमें प्रक्षोभ होने, भोजन करने, पानी पीने, हँसने के समय खांसी आ जाती है। एकदम १५ बीस झटके खांसीके लगातार आते हैं। बहुत कष्टके साथ थोड़ा चिपचिपा कफ निकलता है। आवेगके समय रोगी आँखें फाड़ देता है, आँखें लाल हो जाती हैं, आँसू आ जाते हैं, सिराएं फूली रहती हैं, रोगी पसीनेसे तर हो जाता है। अधिक वेग होनेसे नाकसे रक्त निकलने लगता है, पेशाब पायखाना छूट जाता है। ऐसे झटके रात-दिनमें चार-पाँच बार आते हैं। रोगी दुर्बल हो जाता है। इस बीचमें इसे दस सप्ताह लग जाते हैं। इसके बाद प्रशमनकी अवस्था आती है, वेग कम जोरदार होने लगते हैं। वातकासघ्न चिकित्सा करने, घृतपान कराने, रोगीको उष्ण खानपानसे बचानेका प्रयत्न करना चाहिये। जिससे सूखा हुआ कफ ढीला पड़े वही करना चाहिये। प्रवालभस्म,

घी अथवा मलाईके साथ दे। प्रवालभस्म, शुक्तिभस्म और अभ्रकभस्म मिलाकर विहीदानेके लुआबके साथ दिनमें तीन-चार दफा दे। सितोपलादि अथवा लवंगादि चूर्ण लसोढ़ेके शर्बतके साथ दे। केकड़े-की भस्म घीके साथ दे।

श्वास—जब प्रतिश्यायका असर श्वासनलिका पर होता है और श्वास नलिकाका प्रदाह गलेके स्रोतसोंमें प्रकुपित वायु कफको साथ लेकर भर जाता है और स्रोतसोंका मुख बन्द कर देता है, तब दोष टेढ़े मार्गसे जाकर श्वास उत्पन्न करते हैं। कुछ गन्धयुक्त पुष्पोंके रजमें ऐसी उग्रता होती है कि उन्हें सूंघनेसे ज्वर आ जाता है और वह ज्वर श्वासरोग उत्पन्न कर देता है। अंग्रेजीमें इसे हेफीवर कहते हैं। गन्ध आघ्राणजनित ज्वर आयुर्वेदमें भी लिखा हुआ है। जब नासाध्मान होता है तब दोष गलेके रास्ते छातीमें उतरते हैं। यही नहीं नासारोगसे मस्तिष्क गत Vagus नामक नाड़ी केन्द्रके ऊपर विकृति होती है, वहांसे उसका असर श्वासनलिकाकी दीवालके संकोचक तन्तुओंमें संकोच होता है साथ ही श्वास नलिकाकी श्लेष्मलकलामें रक्ताधिक्य तथा श्लेष्माका स्राव होता है। नासागत दोषोंसे पहले खांसी होती है और उस खांसीके बाद श्वास उत्पन्न हो जाता है। श्वासके दौरेके पहले प्रतिश्याय, छींक, जमुहाई आदि विकार होते हैं। रातमें रोगका आक्रमण अधिक होता है। वायु प्रतिलोम होकर स्रोतसोंको भर देता है, ग्रीवा और शिरमें जकड़न हो जाती है, गलेकी सिराएं फूल जाती हैं। पीनस प्रतिश्यायके लक्षण होते, रुके हुए दोषोंके कारण गलेमें घुघुर शब्द और श्वासनलिकामें सांव-सांवका शब्द होता है। श्वास फूलने लगता और कफकी प्रवृत्ति होती है। श्वासनलिकाका शोथ तथा गलेकी उपजिव्हाके आसपासकी ग्रन्थियों-टांसिल शोथके कारण श्वास शीघ्र अच्छा नहीं होता। सिरमें दर्द, नींदकी कमी, सुस्ती, तन्द्रः आदि उपद्रव होते हैं। तमक श्वास

सर्दी लगनेसे होता है। प्रतमक श्वासका सम्बन्ध भी ऊर्ध्वाङ्गसे है। इसमें रोगीको मूर्छा हो जाती है। श्वासका दौरा रात चौथे पहर होता है। महाश्वासमें सांस ऊपर चढ़ती है और बैलके ढांसनेका-सा शब्द होता है। प्रदाह-शोथ और कफकी विकृति दूर करनेके लिये रोगीको उपवास कराया जाय, उसे गरम पानी और सन्तरोंका रस दिया जाय। पन्द्रह दिन बाद रोटी और नमक दिया जाय, कुछ फल भी दिये जायँ। पानी औटाकर ठण्डा कर दिया जाय। गरम पानीमें नमक मिलाकर पीवे और इस प्रकार कभी-कभी कय कर डाला करे। प्रवाल भस्म, अभ्रक और श्वासकुठार पानके रसमें दे। सितोपलादि घीके साथ दे। शृंगाराभ्र मधुके साथ दे।

क्षय—कहा गया गया है कि जुखामसे खांसी और खांसीसे क्षय होता है। मल-मूत्र-छींक आदि वेगोंको रोकनेसे क्षय होता है। नासारोगमें विकार पहले गले और श्वासनलिकामें आते हैं, वहाँसे फेफड़ोंमें विकार बढ़कर क्षय रोग उत्पन्न होता है। फेफड़ेमें विकार होनेसे सड़न होती है और सड़नसे कफमें क्षयके कीटाणु बैसिलस ट्यूबर क्युलोसिस उत्पन्न हो जाते हैं। कफ-खांसीके साथ ही रोगीको ज्वर भी आने लग जाता है। क्षयके कीटाणु सूर्यके प्रकाशसे शीघ्र नष्ट होते हैं यों क्षय रोगीके सूखे कफमें महीनों सजीव बने रहते हैं। जुखाम होने पर गन्दे और कम प्रकाशके स्थानोंमें रहनेसे क्षयरोग जल्दी होता है। क्षय रोगीको नदी, पहाड़ या समुद्र किनारे ऊँची खुली जगहमें रहना चाहिये। जिस वर्तनमें रोगी थूँके, उसमें फिनायल या अन्य कीटाणु नाशक दवा डाल देनी चाहिये। रोगीके कफको घासमें रख जला देना चाहिये। प्रतिश्याय रोगी यदि दुर्बल हो, रूक्ष अन्नपान करे, उपवास करे, तो उसके हृदयस्थ रसका क्षय होता है, रससे रक्त-मांस- मेद-मज्जा और शुक्रका क्रमशः क्षय होता है। प्रतिश्यायके अतिरिक्त रोमान्तिका,

प्लूरिसी, बांङ्कोन्यूमोनिया, कुकुरखांसी, फुफ्फुसीय धमनी द्वारके सन्निरोध आदि व्याधियोंके बाद भी क्षयरोग हो जाता है। क्षय कफ प्रधान दोष है। कफके द्वारा रसवाही स्रोतस अवरुद्ध हो जाते हैं। खांसीके द्वारा उसे निकालनेका प्रयत्न होता है। इसमें स्वरभेद, गलेमें खुरखुराहट, खांसी, छातीमें पीड़ा, मानसिक धैर्यकी कमी, रक्तवमन, प्रतिश्याय, थूक; फुफ्फुसावरणशोथ आदि उपद्रव होते हैं।

क्षयरोगी **षडङ्गयूष** पीवे तो दाह, शोष, खांसी और प्रतिश्याय नष्ट होता है। जव ४ तोले, कुलथी ४ तोले बकरेका मांस ४ तोले लेकर १९२ तोले पानीमें पकावे, जब ४८ तोले शेष रहे, तब उसे ४ तोले घीसे कड़का कर छौंक दे। फिर १ तोला सेंधानमक और थोड़ी घीमें भुनी हींग डालकर पीवे। जो लोग मांस न खायँ वे उसके बदले ४ तोले ४ अनारका रस पीते समय मिलावें और ४ तोला आंवला पकते समय डाल दिया करें। अथवा अर्जुनकी छाल, नागबला और केवांचके बीजोंका चूर्ण कर उसमें मधु-घी-और मिश्री मिला चाटे और ऊपरसे बकरी या गायका पका हुआ दूध पीवे। अथवा **सितोपलादि चूर्ण** घी और शहदके साथ चटावे। मिश्री ४ तोले, वंशलोचन २ तोले, छोटी पीपर १ तोला, इलायचीके दाना आधा तोला, दालचीनी ३ माशे लेकर चूर्ण करे। इसे सितोपलादि कहते हैं। इसमें मुलेठी ३ माशे, ककड़ासिंगी ३ माशे, अतीस १॥ माशे, गुर्चका सत्व १ तोला और प्रवाल भस्म ३ माशे मिला दें तो अधिक लाभदायक हो जायगा।

शोष—क्षयके बाद शोष होता है। यथार्थमें रोग क्षयका ही परिणाम है। शरीर सूखने लगता है। शरीरमें दाह और जलन होती है, पिपासा अधिक लगती है। रस-रक्त सूख जाता है। मुँहमें तो कुछ चमक रहती है; किन्तु अन्य सारा शरीर दुर्बल हो जाता है। शरीर ढीला पड़ जाता है, तालू सूखते हैं, नशा-सा चढ़ा रहता है, जुखाम

होता है, खांसी आती है, नींद खूब आती है, आँखें सफेद पड़ जाती हैं। शरीरमें चन्दनादि तैल और लाक्षादि तेलकी मालिश करावे। मोती मक्खन मिश्रीके साथ दिया करे। भोजनमें दूध और फलोंकी अधिकता रखे।

नासामेद—दूषित मेदके कारण नासिकाके अगले भागमें छोटे-छोटे व्रण नासिकाकी त्वचामें हो जाते है। यह एक प्रकारसे चर्मरोग है। डाक्टर लोग इसे **लाइपोमानेजी** कहते हैं। जो लोग अधिक शराब पीनेवाले होते हैं प्रायः यह उन्हें होता है। इन्हें अस्त्रसे छील देवे और व्रणकी चिकित्सा करे। छीलने पर उनके ऊपर अंकुर (ग्रैजूलेशन) निकल आते हैं और रोग आप ही शान्त हो जाता है। छीलनेके बाद उसमें भुना सुहागा पानीमें पीसकर लगानेसे भी लाभ होता है।

क्षयजनासा प्रदाह—जीर्णनासा प्रदाहका वर्णन पहले हो चुका है। अधिक पुराना होनेसे जीर्णनासा प्रदाह ही क्षयजनासा प्रदाहमें परिणत हो जाता है। पुराना प्रतिश्याय सूखा हो या पूतिमय (फिटिड) हो, वह भी क्षयजनासाप्रदाह हो जाता है। डाक्टर ओयलसेन इसे पूति नस्य (ओजना) ही समझते हैं; किन्तु अधिकांश डाक्टर इसे एट्रोफिक राइनाइटिस मानते हैं। इस रोगके आक्रमणमें श्लैष्मिक-कलाका वधन अंश छोटा पड़ जाता है और साथ ही सम्पूर्ण ग्रन्थियां अल्पाधिक परिमाणमें नष्ट हो जाती हैं। रक्ताल्पतासे भी यह रोग हो जाता है। दूषित वाष्प और धूलिके कण व्यथित अंशमें पहुँचें तो यह बीमारी अधिक कठिन हो जाती है। इसमें नासारन्ध्र अधिक बढ़ जाता है। उसकी फांक इतनी बढ़ जाती है कि समय समय पर नासा छिद्र देखनेसे कण्ठका प्राचीर और कण्ठ कर्णनलिका दिखलाई पड़ती है। नाककी सांसके साथ दुर्गन्धि आती है। विशेषता यह है कि इस रोगमें नासिकाके भीतर किसी प्रकारका क्षत नहीं होता। इसमें च्यवनप्राशके

साथ अभ्रभस्म, लौहभस्म, यशदभस्म, तालिसादि चूर्ण, सितोपलादि चूर्ण या लवंगादि चूर्ण आदि आवश्यकतानुसार दे। महालक्ष्मीविलास भी आवश्यकतानुसार दे सकते हैं। कण्टकारी अवलेह और वासावलेहका भी उपयोग हो सकता है। डाक्टर लोग मछलीका तेल देनेकी सलाह देते हैं। डोबलके सेल्यूशनसे भी लाभ होता है। इसमें सोडाबाईकार्ब, सोडाबाई बोरेट, सोडाक्लोब प्रत्येक एक एक रत्ती, ग्लिसरीन दो माशे, कार्बोलिकएसिड आधी रत्ती और पानी आधी छटांक लेकर बनाते हैं। इससे नासा रन्ध्रको धोवे, जिससे नासिकाके छिद्र साफ रहते हैं। इसके बाद टानिक एसिड, ४ माशे सल्फोकार्बनेट ४ माशे, मेंथाल ४ माशे आयोडाइड आफ- जिंक ४ माशे, यूक्लिपटिस (२ तोले में ३ माशे), टेरबिन (२ तोलेमें एक माशा) कोकेन या थाइमल (२ तोलेमें एक माशा) लेकर सबको तरल पेट्रोलियममें घोलकर नासिकाके भीतर डाले। अथवा आयडोफार्मका चूर्ण डालनेसे भी उपकार होता है।

वाह्यनासिकाव्याधि—नाकमें मिनमिनानेके दोषका वर्णन हो चुका है नाकके ऊपरी भागमें आघात लगनेसे उसमें कई प्रकारके परिवर्तन हो सकते हैं। आघातसे नाक बैठ जा सकती है, वह चपटी होकर फैल जा सकती है। ऐसी अवस्था नासास्थिके भग्न होने पर होती है। कभी कभी उपदंश, घुणाकार पिडिका या ट्यूबर्क्लकी पीड़ासे भी नासाप्राचीरकी पूर्ण स्फीति होकर नासाविकृतिहो जाती है। उपदंश की तीसरी अवस्थामें नाक बैठ जाती है। यदि शीघ्र प्रतिकार न किया जाय तो रोगदुश्चिकित्स्य हो जाता है। नासिका बैठ जानेपर नासा-रन्ध्र ठीक रखनेके लिये एक यन्त्र आता है, उसे प्रविष्ट कर देनेसे नासिकाकी विकृति ठीक हो सकती है। अथवा एरण्डकी नली या नर-कटकी नली भी लगायी जा सकती है। नासाशोथ या नासार्बुद होने पर भी उसका असर बाहर दिखता है और उससे नाकके बाहरी भागमें

विकृति दिखने लगती है। भारी आघात, ल्यूपस या उपदंशसे नासिका का आंशिक और कभी-कभी सम्पूर्ण अंश नष्ट, विकृत या ध्वंस हो सकता है। नाकके ऊपर विलोमत्वगनुकरणी अर्बुद (ऐपीथील्यूमा) उत्पन्न होनेसे नासिकाका समूल भाग नष्ट हो सकता है। ऐसी विकृति शस्त्रसाध्य होती है। सुश्रुतके मतानुसार नासासन्धान विधिमें हम उसका वर्णन कर चुके हैं। पाश्चात्य डाक्टर भी इसीका अनुकरण करते हैं और इसे इण्डियनमेथड कहते भी हैं। एलोपैथीमें इसकी सुधरी प्रक्रियाको फ्लैप अपरेशन (त्वङ्मांसौष्ट संरक्षित अस्थिछेदन) क्रिया कहते हैं।

नाक का नासूर—नाकके भीतर एक ऐसा घाव कभी कभी हो जाता है, जिसमेंसे कभी मवाद आता है और कभी बन्द हो जाता है। कभी कभी यह व्याधि बहुत दुःख देने लगती है। यदि कुत्तेकी जीभ जलाकर उसी मनुष्यकी लारमें सानकर आँखोंमें अंजनकी तरह लगावे तो नाकका नासूर अच्छा होता है। अथवा एलुवा, लोभान, अनारके फूल, सोनामक्खी, दम्मुल अखबेन और फिटकरी तीन तीन माशे लेकर बारीक पीसे, फिर गुलाब जलमें घोटकर लम्बी बत्तियां बना ले। नासूरके मुखको पोंछ कर उसमें इसका रस टपकावे और बत्ती घावके मुख पर रख दे। इसे सात दिन लगानेसे घाव बिलकुल आराम हो जायगा।

नाकका घाव—नासाव्रण होने पर उसकी शीघ्र औषधि न करनेसे घाव पुराना पड़कर नासूर हो जानेका भय रहता है। इससे नाकनाकका स्वर विकृत होनेका भी भय रहता है। इसलिये इसकी दवा तुरन्त करनी चाहिये। पीला मोम एक तोला, गुलरोगन ३ तोले लेवे। तेल आग पर चढ़ा कर उसमें मोम डाल टिघलावे। टिघल जाने पर मुरदासंख २ माशे और रांगेका सफेदा ४ माशे डाल कर मल्हम बना कर रखे। इसे नित्य नाकमें भरा करे तो घाव ज़ल्दी अच्छा होगा।

(२) वनशनके फूल ९ माशे, बीहदाने ६ माशे, दोनोंको थोड़े पानीमें औटा कर मसल कर छान ले और २ तोले गुलरोगनमें मिला एक तोला सफेद मोम डाल टिघला कर मलहम तैयार कर ले। इसके लगानेसे घाव अच्छा होता है। (३) मुरगीकी चर्बी और मोम बराबर बराबर लेकर घीमें पकावे। जब ठण्डा हो जाय, तब उसमें सफेद कपड़ेकी बत्तियां डुबा कर बना ले। इन बत्तियोंको नाकमें रखा करे। (४) अथवा सफेद कत्था और मुर्गीकी चर्बी पीसकर नाकके भीतर लेप किया करे। अथवा (५) मुरदासंग, भैंसके सींगाका गूदा, मुर्गेकी चर्बी, सबको गुलरोगनमें पकावे। जब मल्हम बन जाय, तब उसमें रुईकी बत्ती भिगोकर नाकमें रखा करे (६) मोम ३ माशे, कपूर ३ माशे सफेदा १। तोले, गुलरोगन १ तोला। पहले गुलरोगनग रम कर उसमें मिलावे फिर सफेदाको पानीमें धोकर मिलावे। सबको गरम करे, जब मल्हम हो जाय, तब उतार कर रखे। यदि घाव गहरे भीतर हो तो इस मल्हममें बत्ती डुबाकर नाकमें रखे। यदि घाव पास हो तो फुरहरी से मल्हम लगावे।

ब्रोंकाइटिस—यह श्वासनलीके प्रतिश्यायका एक रूप है। आरंभ में इसमें गलेके श्लेष्मिक प्रदाहके लक्षण मिलते हैं। पहले सिरका जुखाम होता है और आवाज बैठ जाती है। गला सूखता है, थकावट मालूम पड़ती है। मन किसी काममें नहीं लगता। गलेमें खरखराहट और दर्द होता और खाँसी आने लगती है। पहले कफ नहीं निकलता या कम निकलता है, फिर कुछ दिनों बाद कफ निकलने लगता है। कफ छाती में लिपटा सा रहता और ज्वर होता है। यदि ठीक चिकित्सा हो तो शीघ्र अच्छा हो जाता है अन्यथा कई हफ्ते चलता है। ठीक ढङ्गसे दवा न होने से, शारीरिक रोगनिवारक शक्ति क्षीण होने से रोग पुराना पड़कर याप्य हो जाता है। यदि श्वासनलीका जुखाम बिगड़ जाय तो फेफड़ेमें प्रदाह हो जाता अर्थात् न्यूमोनिया तक हो जाता है।

क्रानिकब्रोंकाइटिस—श्वासनलीका जुखाम होने पर ठीकसे दवा न हो, अथवा फेफड़े की खराबी हो तो यह रोग हो जाता है। इससे हृदयकी गति और क्रियामें अन्तर आ जाता है। गलेका नया जुखाम पुराना हो जानेसे यह नाम मिलता है। परिश्रम करने, गरिष्ट भोजन करने और बहुत बोलनेसे तुरन्त खाँसी बढ़ जाती है। खाँसीमें थोड़ा-थोड़ा कफ निकलता है। उष्णऋतु हो और पथ्याहार हो तो रोग बढ़ने नहीं पाता। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता है, रातमें खाँसी, श्वास और अनिद्रा होती है। श्वासका सन्देह होने लगता है। खाँसते समय मुखमण्डल नीला पड़ जाता है। ब्रोंकाइटिस बच्चों को भी जुखामके बाद या दाँत निकलते समय हो जाता है। बच्चोंकी श्वास नालीमें कफ भर जानेके कारण कष्ट होता है। यदि ज्वर १०२ डिग्री के ऊपर होने लगे तो दशा चिन्तनीय समझनी चाहिये। सूखी खाँसी जल्दी आती है। छाती में वंशी बजनेका-सा शब्द सुनाई पड़ता है। कण्ठमें कफ भर जानेसे दम घुटनेसा लगता है। कफ बढ़ जानेसे फेफड़ेके काम में रुकावट पड़ने लगती है। साँस नहीं लेते बनता। पसली चलने लगती है। बच्चोंके नाकके नथुने बढ़ जाते हैं। बीमारी भयङ्कर हो जाती है। और बच्चेकी जानपर आ बनती है। श्वासकुठार रसके साथ प्रवाल-भस्म, शुक्तिभस्म और अभ्रकभस्म मिलाकर देनेसे लाभ होता है।

आवश्यक है कि श्वासनलीके ब्रोंकियाका प्रदाह कम किया जाय। कफ पतलाकर निकालनेका प्रयत्न हो। सब प्रकार रोगीके बलकी रक्षा की जाय। ज्वर कम करनेका उद्योग हो और फेफड़ोंमें रक्तका दौरा बढ़े इसका उद्योग हो। अभ्रकसे यह काम सम्पादित होता है। सयानों में तो यह श्वासनलीकी शाखाओं तक ही रहता है किन्तु बच्चोंमें सूक्ष्म से सूक्ष्म शाखाओं तकमें फैल जाता है। कफ ढीला करनेके लिये अलसीकी गरम पुल्टिस लगाना अच्छा होता है। बादामका तेल, तारपीनका तेल, पुराना घी, सेंधानमक और कपूर मिलाकर छातियोंमें

मला जाय और आगपर सेंककर हथेली फेरी जायँ। वासावलेह भी दिया जा सकता है। पानी गरम देना चाहिये। रोगी आरामसे पड़ा रहे। दूधके सिवाय फलोंका रस भी दे सकते हैं। पायखाना न हो तो वस्ति द्वारा पायखाना करा देना चाहिये।

ब्राङ्कोन्यूमोनिया—जुखाम पुराना हो या बिगड़ गया हो तो दोष गलोंसे फुफ्फुसकी वायुप्रणालियों और सूक्ष्म प्रणालियोंमें शोथ हो जाता है। रोमान्तिका, वातश्लेमक ज्वर आदिके कारण टेंटुवेमें शोथ होकर कीटाणु हो जाते हैं, या वायु द्वारा बाहरसे प्रवेश करते हैं। बच्चों और क्षीण पुरुषोंको अधिक होता है। सूक्ष्मवायु प्रणालियोंमें शोथ होनेसे मार्ग सकरा हो जाता है, इसलिये उनमें से जब वायु निकलता है तब शब्द करता हुआ निकलता है। वायु प्रणालियोंके आसपासके वायुकोष्ठ भी शोथयुक्त हो जाते हैं। शीतपूर्वक ज्वर, १०३ तक हो जाता है। छातीमें दर्द, खाँसी आदि लक्षण होते हैं। फुफ्फुसोंमें अतिगुञ्जन ठेपन मालूम पड़ता है। मधुयष्ट्यादि क्वाथ, कण्टकार्यादि क्वाथ, शृङ्ग भस्म, चन्द्रामृत रस, द्राक्षारिष्ट आदि लाभदायक होते हैं। रोगीको एकदम बन्द कमरेमें नहीं रखना चाहिये। गन्दी हवासे बीमारी बढ़ती है। प्रारम्भिक दशामें उपवास आवश्यक है। छाती पर अलसीकी पुल्टिशसे लाभ पहुँचता है। पथ्यके बाद मूंगकी दाल और जौकी रोटी दी जाय। फिर शाक तरकारी भी दे सकते हैं। जब तक काफी बल न आ ज़ाय पथ्यका बराबर ध्यान रखना चाहिये। कफ निकालनेका प्रयत्न हो। कमजोरी दूर करनेके लिये सितोपलादिके साथ सुवर्णमालिती वसन्त दे। इससे कफ भी निकलता रहेगा, खांसी और ज्वर भी नहीं रहने पावेगा। गरम पानीमें नमक डालकर उससे देह पोंछनी चाहिये।

इन्फ्लुएञ्जा (वातश्लेष्मक ज्वर)—यह ऐसी व्याधि है जो संक्रामक रूपसे फैलती है और एक साथ हजारों पर प्रभाव डालती

है। इसमें पहले प्रतिश्याय और शिरःशूल होता है और फिर ज्वर आता है। डाक्टर लोग इसके भी कीटाणु बतलाते हैं। नाम उनका वैसीलस इनफ्लुएञ्जा अथवा फीफरके जीवाणु कहते हैं। जो दण्डाकार होते हैं। प्रतीश्यायके कीटाणु भी कफमें रहते हैं। शरद, शिशिर और वसन्त ऋतुमें प्रायः इसका प्रकोप अधिक होता है। सन् १९१८ में इस संक्रामक व्याधिने कुछ महीनोंमें ही भारतमें लगभग एक करोड़ मनुष्योंकी बलि ली थी। बीच-बीचमें अब भी इसका संक्रमण साधारण रूपमें होता है। रोगका आरम्भ अकस्मात होता है। ज्वर आने पर फिर रोगीको उठने बैठनेकी हिम्मत नहीं रहती। शिर और कमरका दर्द भयङ्कर होता है। टांसिलमें शोथ, कण्ठ और मुखमें दाह, सूखी खांसी, मुख और आँखोंमें लाली, जिह्वा मैली और फूली हुई तथा किनारोंमें ललाई इसके प्रधान लक्षण हैं। रक्तमें श्वेत अणु कम हो जाते हैं। प्रथम सप्ताहमें ज्वर १०४ डिग्री तक पहुँच जाता है। सातसे दश दिनों तकमें प्रायः उतर जाता है। यदि श्वास मार्गमें उपद्रव हो तो अधिक दिन तक रह सकता है। उपद्रव होने पर कफमें रक्त भी आता है, खाँसी प्रबल हो जाती है, गलेसे बढ़कर रोगप्रभाव वायुप्रणाली और फुफ्फुस तक पहुँच जाता है। लसीका ग्रन्थियोंमें भी शोथ हो जाता है। जिसमें फुफ्फुस प्रदाहके लक्षण प्रतीत होते हैं, फुफ्फुसावरण प्रदाह होकर पूयनिस्सरण भी हो सकता है। इससे अवस्था भयङ्कर हो जाती है। दूषित जीवाणु नासामार्ग और झर्झरास्थिके चालनी पटल हो कर मस्तिष्क तक भी पहुँच जाते हैं। जिससे वहां भी शोथ हो जाता है। एकाङ्ग, पक्षाघात, मस्तिष्क विद्रधि, उरुस्तम्भ, शिरःशूल, आत्महत्या करनेकी इच्छा, बुद्धिभ्रम आदि उपद्रव होते हैं। हृदयके विकार, हृदयविस्फार, हृदशूल, हृदयकी गति मन्द, मध्यकर्णशोथ, कर्णमूलशोथ आदि उपद्रव भी होते हैं। इसमें पानी पका हुआ दिया जाय, भोजन बिलकुल न दिया जाय, क्षीरपाक कर दूध दे सकते

है। वृहतकस्तूरी भैरव, महालक्ष्मीविलास, शृङ्गाराभ्र, नरसार, संजीवनी, मौक्तिक, अभ्र आवश्यकतानुसार देना चाहिये। इन औषधियोंके साथ कटफलादि चूर्ण या क्वाथ भी देना अच्छा होगा। इसमें जुखाम और फेफड़ोंका ध्यान रख औषधि करनी चाहिये।

श्वसनक ज्वर (लोबर न्यूमोनिया)—इसमें कर्कट सन्निपातके लक्षण मिलते हैं। डाक्टर लोग इसमें 'डिप्लोकोकस न्यूमोनिया' के जीवाणु बतलाते हैं, इसमें चार प्रकारके जीवाणु कहे जाते हैं, इसमें चार प्रकारके जीवाणु होते हैं, उनमेंसे चौथे प्रकारके जीवाणु प्रतिश्याय होने पर नाक और मुखसे फेफड़ेमें पहुँचते हैं। रोगीके थूंकका संक्रमण अन्य लोगों पर भी हो जाता है। थूंकमें जीवाणु मौजूद रहते हैं। शुद्ध वायुकी कमी, गरीबी, शीतसे बचनेके साधनोंकी कमी, आहारकी न्यूनता आदि इसके प्रसारमें सहायक होते हैं। छातीको सदा सर्दीसे बचाना चाहिये। ब्रोंकाइटिसमें श्वासनलीका प्रदाह होता है; किन्तु न्यूमोनियामें फेफड़ोंका प्रदाह होता है। खांसी दोनोंमें आती है। दोष फुफ्फुसमें पहुँचने पर वहाँ शोथ हो जाता है, वहां रक्तकी अधिकता होती है और फिर फुफ्फुसका आयतन बढ़ जाता है। फुफ्फुसमें पूय उत्पन्न हो जानेसे रोग असाध्य हो जाता है। ऐसे समय यदि फुफ्फुस पानीमें डाला जाय तो डूब जायगा। मूत्रमें सौचिक धातु उत्पन्न हो जानेसे अधिक दिनों तक रोग चलता है। सर्दी खा जाने पर रोगीको बहुत जाड़ा मालूम होता है और १० बारह घण्टेमें ज्वर आ जाता है जो १०४ ड़िग्री तक पहुँचता है। शिरमें दर्द, पसलियोंमें पीड़ा, सूखी खांसी, निरन्तर ज्वर, ओष्ठपाक, सांस और नाड़ीकी गति तीव्र, सांस लेनेमें कठिनता, कठिनाईके साथ कलौंस लिये चेपदार लाल कफ निस्सरण आदि लक्षण होते हैं। ६वें दिन या ९वें दिनसे लेकर धीरे धीरे बारहवें दिन तक ज्वर उतरता है। बहुत दिनों तक कमजोरी रहती है। आकर्णन यन्त्रसे सुनने पर छाती में रगड़कासा शब्द सुनाई

पड़ता है। छाती पर अँगुलीसे ठोंका जाय तो जहाँ विकृति हो वहाँ डिमडिम शब्द होगा। आरम्भमें घर्षण और बुदबुद शब्द सुन पड़ता है। कुछ दिन बाद रगड़का शब्द नहीं रहता, बुदबुद शब्द भी कम रहता है, रोगीके बोलनेपर ध्वनि होती है। तीसरी अवस्थामें वाचिक ध्वनि घट जाती है और बुदबुद शब्द सुनाई पड़ने लगती है। बच्चोंको अधिक होता है। बच्चों में आक्षेप, शिरमें पीड़ा, निद्रानाश, कम्प, मन्यास्तम्भ, शिरका पीछे झुक जाना आदि उपद्रव होते हैं,। सयानोंमें फुफ्फुस, हृदय, मस्तिष्कके आवरणमें शोथ होता है। ब्राँकोन्यूमोनियामें श्वासनलिका और फेफड़ोंमें आनेवाली सिराओंमें प्रदाह होता है, लोबर न्यूमोनियामें दोनों फेफड़े या उनके पाँच हिस्सोंमेंसे एक या पाँचोंमें विकृति होती है। इसके संक्रमणसे बचने के लिये आवश्यक है कि रोगीके साथ न सोवे, उसके जूठे वर्तनोंमें पानी न पीवे न कोई वस्तु खाय। उसके खाँसते समय उसके मुँहके पास अपना मुँह न रखे। फेफड़ेके हिस्सोंको अँग्रेजीमें लोब्स कहते हैं, उनमें विकार होनेके कारण इसे लोबरन्यूमोनिया कहते हैं। लोब्समें कफ भर जाता है। कर्णमूल होता और हृदयका कार्य अवरोधके साथ होता है। यह कृच्छ्रसाध्य भयङ्कर व्याधि है। यदि सात दिनमें ज्वर उतर जावे तो १४ दिनमें फेफड़ा भी ठीक हो जाता है। पानी पका हुआ दें, नाड़ी और हृदय को बदलनेवाली औषधि दें। क्योंकि मृत्यु हृदयका कार्य बन्द होनेसे ही प्रायः होती है। मोती या शुक्तिका योग आयुके साथ करें। क्षुद्रादिकाथ (भटकटैयाकी जड़, चिरायता, सोंठ, गुडुची और पोह-कर मूल) लाभदायक होता है। संजीवनी और त्रिभुवन कीर्ति तथा कस्तूरीभैरव यथावश्यक देवे। न्यूमोनियामें प्रायः सातवें या नवें दिन रोगीकी दशा बिगड़ जाती है। शरीरकी गर्मी ९६ से भी कम हो जाती है, पसलियोंमें दर्द बढ़ जाता है। ऐसी दशामें कस्तूरीभैरवके साथ हिर-ण्यगर्भ और मकरध्वज देना अच्छा होता है। कभी-कभी यह भी

होता है कि रोगीको १०६ डिग्री बुखार हो जाता है, उसमें बेहोशी या प्रलाप हो जाता है। खाँसी कष्टकारक हो जाती है। नींद नहीं आती, हृदय कमजोर हो जाता है। ऐसी दशामें मोतीके साथ मकरध्वज देने से अथवा उसमें कुछ सुवर्ण भस्म भी मिला देनेसे उसे शान्ति मिलती है। न्यूमोनियाके इलाजका सिद्धान्त यह है कि शरीरके भीतरसे दूषित अंश कफ के द्वारा निकल जाय। रोगीकी शक्ति क्षीण न होने पावे, दोष निकालकर वे अवयव सुधारे जावें। जिन पर रोगका आक्रमण हुआ है। ज्वर कम करने का बराबर ध्यान रहे। बिना विशेष आवश्यकता हुए दवाइयोंकी भरमार न की जाय। औषधि इतनी ही दी जाय जिससे रोगका वेग घटे और शरीरकी स्वाभाविक संरक्षण शक्ति को अपना काम करनेमें सहायता मिले। पानी औटाया हुआ दिया जाय, लङ्घनक्रम जारी रखा जाय, कभी-कभी लहसुनका रस या नौसादर और अभ्रक देनेसे दूषित कीटाणु नष्ट होते हैं। छातीपर अलसी की पुल्टिस या एण्टीफ्लोजिस्टिनकी पट्टी बाँधनेसे रोगीको आराम मिलता और कफ आसानीसे पतला पड़कर निकलता है। पुराना घी, कपूर, सेंधानमक और तारपीनका तेल मलना लभदायक है। वासासव या अडूसेका रस मधु मिलाकर देनेसे भी कफ आसानीसे निकलता है। डाक्टर लोग रोगीको नहलानेकी सलाह देते हैं; किन्तु गरम पानीमें कपड़ा भिगोकर देह पोंछ देना बस होगा। यदि शरीरकी गर्मी घटती मालूम पड़े तो गरमपानीसे बोतलें भर पेड़ू और छातीके अगल-बगल रखनी चाहिये।

तीव्रगलग्रन्थिशोथ—(एक्यूट टॉंसलाइटिस) नासारोगोंके साथ जब उसके दोष गलेमें उतरते हैं तब गलग्रंथिका कण्ठगत ग्रंथियोंमें शोथ हो जाता है। यह स्वतन्त्र व्याधि भी है और नासागत रोगोंके उपद्रव रूपमें भी होती है। आमवातके ज्वरमें जैसा पंक्तिबद्ध विन्दुके आकार का कीटाणु होता है इसमें भी वैसा कीटाणु पाया जाता है। टांसिल

वालोंको ज्वर भी हो जाता है। यह प्रायः बच्चोंको अधिक होता है; किन्तु सयानोंमें भी पाया जाता है। अधिक परिश्रम, शीत और क्लेद की उपस्थितिमें यह हो जाता है। उष्ण या अनूपदेशोंमें वसन्त और वर्षाऋतुमें यह प्रायः होता है। ज्वर प्रायः शीत लगकर आता है और १०३ तथा १०४ तक पहुँच जाता है। हाथ पैर और कमरमें दर्द, गलेमें सूजन गर्दनका जकड़ जाना इसके लक्षण हैं। गलेके दोनों ओरकी गलग्रंथियाँ सूजकर बढ़ जाती हैं। ग्रीवाकी लसीका ग्रन्थियाँ भी बढ़ जाती हैं। रोगी कोई चीज खाने और चबानेमें असमर्थ हो जाता है। जीभ मैली और रूखी रहती है। प्रायः बद्धकोष्ठवालोंको यह होता है अथवा इसके होनेसे बद्ध कोष्ठ हो जाता है। पेशाब थोड़ा, गाढ़ा और ललाई लिये होता है। ज्वर तो एक सप्ताहके भीतर उतर जाता है किन्तु गलेकी सूजन बनी रहती है। इसका असर हृदय पर भी पड़ता है। हृत्कपाट विकृत हो जाते हैं और हृदय भी विस्तृत हो जाता है। यदि यह रोग नासारोगके कारण हुआ हो तो नासारोगकी दवाके साथ ही इसका भी उपाय किया जाय। गरम पानीमें मधु और भुना सोहागा मिलाकर कुल्ले किये जायँ, अथवा मधु और स्फाटिका अथवा मधु और सोहागा मिलाकर गलेमें लगाया जाय। गरम पानीमें नमक या फिटकरी डालकर कुल्ले कराये जायँ। शोथनाशक औषधियोंके काढ़ेसे गलेमें बफारा लिया जाय। अथवा कटसरैयाकी पत्तीके काढ़ेसे गरारे लिये जायँ और भाफ भी ली जाय। पेट साफ करनेके लिये यष्ठ्यादि चूर्ण गरम पानी या गरम दूधसे दिया जाया। सौंफ, मुलेठी, सनाय, गन्धक और मिश्रीके योगसे यष्ठ्यादि चूर्ण बनता है। इस रोगके कारण ग्रीवाकी लसीका ग्रंथियाँ सूज जाती हैं और गण्डमाला और अपची होनेका भय रहता है। जब यह बीमारी पुरानी पड़ जाती है तब उस शोथसे सौत्रिकतन्तु बनकर ग्रन्थिको संकुचित कर देते हैं। रोगीके मुँहसे दुर्गन्धि आती है, मुखका स्वाद बिगड़ जाता है। गलेमें

विकृति आ जाती है। कभी-कभी उनसे मवाद भी आता है। वह मवाद आमाशय में जाकर उदर विकार उत्पन्न करता है। ऐसी दशा में दिनमें दो बार गरारे और कुल्ले करने चाहिये।

एडिनाइड्स—नाकके पिछले भागमें गलेकी छतमें जहाँ गल-शुण्डिका लटकती है, उसके ऊपर नासाफलक और उसके अगल-बगल दो नासाछिन्द्रोंमें दो शुक्तिका होती हैं। इन शुक्तिकाओंके ऊपर गलेकी छतमें दानोंके समान उभरे हुए जो भाग हैं उन्हें डाक्टरीमें एडिना-इड्स कहते हैं। गलेकी छतकी लसीका ग्रंथियोंके शोथको एडिनाइड्स रोग कहेंगे। यह गलरोग है, किन्तु नासारोगके प्रभावसे इसमें भी विकार होता है। यह शालाक्यसाध्य रोग है। बच्चोंमें अधिक होता है। प्रतिश्याय बने रहनेसे, अस्वास्थ्यजनक परिस्थितिमें रहनेसे, शुद्ध वायु न मिलनेसे नासाके पीछे गलेमें छतकी लसीका ग्रंथियाँ शोथयुक्त हो जाती हैं। युवावस्थामें प्रायः ये क्षीण हो जाती हैं। इस बीचमें अज्ञात सी रहती हैं। इसके होने पर नाक सट जाती है, नासावरोध के कारण रोगी मुखसे श्वास लेनेका प्रयत्न करता है। इस कारणसे लसी-का ग्रंथियोंका शोथ और भी बढ़ जाता है। गलेमें पाक हो जाता है, सोते समय रोगीके गलेसे खर्राटेकी आवाज निकलती है। ऐसे रोगी बेजाने रातमें बिछौनेपर पेशाब कर दिया करते हैं। रोगी अस्वस्थ, दुर्बल, क्षीणकाय और फीके पीले चेहरेका हो जाता है। रोग वृद्धिके साथ नासासेतु बैठ जाता है और नथने पिचक जाते हैं। हनु-ठुड्डीका भाग गोलाईके बदले नीचे झुका हुआ अँग्रेजीके वी (V) अक्षरके समान हो जाता है। अँगुली डालकर भीतरी नासारन्ध्र पर फेरे तो ग्रंथि मालूम पड़ेगी। ऐसा प्रयत्न करे कि रोगीके मुँहमें धूल-धुआँ न जावे। समुद्र किनारे या पर्वतका वायु लाभप्रद होता है। पौष्टिक आहार दें। वातनाशक और शोथनाशक काढ़ोंसे मुँहमें वफारा लें।

नाकमें प्रधमन नस्य दें। षडबिन्दु तैल की बूंदें टपकावें। लोहासव और द्राक्षासव पिलावें।

कण्ठप्रदाह—जब नासारोगके कारण या स्वतन्त्र कारणसे कण्ठ की श्लैष्मिककलामें प्रदाह-शोथ होता है तब उसे तीव्रकण्ठ प्रदाह (Acute Pharyngitis) कहते हैं। यह प्रायः प्रतिश्यायके पश्चात् होता है। प्रतिश्यायमें नासाकी श्लैष्मिककलामें शोथ होता है, वहाँसे दोष फैलकर कण्ठमें शोथ उत्पन्न करते हैं। तेज दवाइयोंके सूंघने अथवा अधिक गरम द्रवोंके पीनेसे भी कण्ठकी श्लैष्मिककलामें प्रदाह हो जाता है। वातश्लैष्मिक ज्वर, मोतीज्वर और रोमान्तिकाके उपद्रव रूपमें भी ऐसा हो सकता है। गलेमें खुजली और खाँसी रहती है। गला लाल रहता है और कण्ठावरोध मालूम पड़ता है। स्वर भारी फटा हुआ हो जाता है। कुछ ज्वर और अङ्गावसाद भी रहता है। कण्ठ-तालु और गलग्रन्थियाँ सूजी हुई लाल दिखती हैं। रोगीको ठंडी हवासे बचना चाहिये, गरम बन्द कमरोंमें रहना चाहिये। टंडा पानी कतई बन्द कर देना चाहिये। मृदुवि-रेचन देकर पेट साफ रखना चाहिये। ताजे हलके और पतले आहार द्रव्य देना चाहिये। आँवला-हर्रा-बहेड़ा-खैरसार, बेरका बेचुन, अमिलतासका गूदा सबका काढ़ाकर कुल्ले कराना चाहिये। गरम पानीमें नमक या पोटाशियम क्लोराइड छोड़कर भी कुल्ले कर सकते हैं। गरम पानोमें सोहागा डालकर भी कुल्ले करें। द्राक्षादि क्वाथ—मुनक्का, मुलेठी, गुलबनफशा, अंजीर, उन्नाब और काली मिर्चका काढ़ा मिश्री मिलाकर पिलावे। बकरीका खोवा गरम कर उसमें नमक और सोहागा डाल गलेसे बाँधकर पट्टीसी लपेट दे। लक्ष्मी विलास रस मधु से दें। मुंहमें एलादिवटी या खदिरादिवटी रखकर चूसें। चमेलीकी पत्ती और कटसरैयाकी पत्ती उबालकर बफारा लें।

पूयात्मक कण्ठप्रदाह—जब कण्ठप्रदाहमें शोथके साथ पाक

हो जाता है और उसमें पूय आजाता है, तब उसे तीव्र पूयात्मक कण्ठ-प्रदाह (Acute Septic pharyngitis) कहते हैं। पूयोत्पत्तिके साथ इसमें कीटाणु भी उत्पन्न हो जाते हैं। अग्निविसर्प और मुख-कण्ठ शोथमें भी उपद्रव रूपमें ऐसी स्थिति हो जाती है। इसके होने पर कण्ठदाह, कण्ठावरोध, तथा श्वासकी वृद्धि होती है। शरीर टूटता है और किसी काममें मन नहीं लगता। ज्वर १०५ से १०६ डिग्री तक हो जाता है। गला लाल, शोथ युक्त रहता है। इसके उपद्रव रूप फुफ्फुसावरण और फुफ्फुस तथा हृदयावरणमें भी शोथ हो जाता है। यह मारात्मक व्याधि है। कण्ठशोथ होते ही प्रयत्न पूर्वक चिकित्सा करे जिससे यह नौबत न आने पावे। हल्का सुपाच्य भोजन दे। मवाद मालूम होते ही चीरा देकर निकलवा दे।

जीर्ण कण्ठप्रदाह—जब गलेका शोथ कई महीनेका पुराना पड़ जाता है तब उसे जीर्ण कण्ठप्रदाह (Chronicpharyngitis) कहते हैं। बारम्बार जुखाम और बार-बार तीव्र कण्ठप्रदाह होनेसे, जीर्णगलग्रन्थि शोथसे तथा अति धूम्रपानसे वह व्याधि होती है। जीर्ण कास तथा राजयक्ष्माके उपद्रव रूप भी यह हो जाता है। कण्ठदेशमें पीड़ा, दाह, खुजली, चुभन, फटनकीसी, पीड़ा होने लगती। कभी गला बैठ जाता है और कभी नहीं। खांसी तो रहती ही है। सूजे हुए लालरंगके गलेमें सिराएं उभड़ी हुई दिखाई पड़ती हैं। कण्ठकी दीवालमें छोटे छोटे दाने दिखाई पड़ते हैं। इन्हें कणिका प्रदाह कहते हैं। यदि गला सूखा हुआ साफ किन्तु लाल रहे तो शुष्क कण्ठप्रदाह कहते हैं। मुख्य चिकित्सा प्रतिश्यायकी होनी चाहिये अथवा कारण ढूंढ़कर दवा करनी चाहिये। नासाशोथमें कथित उपाय काममें लाने चाहिये। आरग्वधादि क्वाथ या खदिरादि कषायसे कुल्ले कराने चाहिये। सभी कण्ठ, गले, फेफड़े और पसलियोंकी बीमारीमें बारह-सिंगाकी भस्म आधीरत्तीसे एकरत्ती तक घीके साथ चटानेसे लाभ होता

है। **आरग्वधादि क्वाथ**—अमिलतासका गूदा, पाढ़ी, कुरैयाकी छाल, पाटला, सप्तपर्ण, नीमकी छाल, गिलोय, पटोल, करंज, मकोय का काढ़ा कर दे। **खदिरादिक्वाथ**—खैरसार लकड़ी या खैर, बबूल की छाल, अनारकी छाल, माजूफल, त्रिफला, गूलरकी छाल, गुलनीलोफरका काढ़ा करे।

बालरोगोंमें नासाविकार—नाकके स्वतन्त्र विकारोंके अतिरिक्त कुछ ऐसे रोग हैं जिनमें नाकमें कुछ विकार हो जाते हैं, उनका भी यहां उल्लेख कर देना अप्रासांगिक नहीं होगा। यदि माताका दूध त्रिदोषसे दूषित हो तो बच्चेकी नाक, आंख और मुंह आ जाता है। नाक सूज जाती और उसमें दाने पड़ जाते हैं। जो बालक ठण्डा पानी पीते हैं, कफसे दूषित दूध पीते हैं उनके रसवाहक स्रोत कफसे भर जाते हैं, इससे उन्हें बारम्बार प्रतिश्याय होता है, अरुचि, ज्वर, खांसी होती है, बाल सूखने लगता है। **शोषनाशक घृत** चटाना चाहिये। मुलेठी, पिप्पली, पठानी लोध, पदमाख, गुलनीरोफर, लालचन्दन, तालीसपत्र, अनन्तमूल और काकोलीका कल्क कर घृत तैयार कर देवे। बच्चेको ग्रह बाधा होने पर भी नाकमें विकार होता, नाक का स्वर बिगड़ जाता है। श्शकुनग्रह होने पर नाक-जीभ-तालू और मुँह पक जाता है। अन्धपूतनामें भी बच्चेका स्वर बदल जाता है। रेवतीग्रहकी बाधा होसे पर बच्चा नाक, कान और आंख मलता रहता है, खांसी आती है। शुष्क रेवतीमें बच्चा सूखता जाता है, उसका स्वर बदल जाता है। असाध्य बालरोगमें बच्चेकी नाक बराबर बहा करती है। ऐसी बाधाओंमें बच्चेको **रास्नादिघृत** चटाना चाहिये। रास्ना, सरिवन, पिठवन, बेल, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला, खँभार और नागरमोथाके काढ़ेसे जो घृत सिद्ध किया जाता है उसे रास्नादिघृत कहते हैं।

अन्य रोगोंमें नासाविकार—अपस्मार रोगमें नाकसे पानी

जाता है, नाकसे कफ निकलता है। नेत्रोंका अभिष्यन्द होने पर नाक फूल जाती है, उसमें कुछ शोथ भी हो जाता है। कफजन्य अधिमन्थ में भी नाकमें सूजन आ जाती है। कफज रक्तविकारसे जब तालूमें शोथ होकर गलगुण्डिका होती है तब आहार अन्न नाकमें चला जाया करता है। असात्म्य गन्धग्रहणसे शिरोरोग होता है। वातजन्य शिरोरोगमें नाक बहती है। शिरमें कृमि हो जानेसे नाकमें पतला नेटा आया करता है। व्रणरोगमें लिखा हुआ है कि नाकका व्रण कष्ट साध्य होता है। राजिल या राजीमन्त सर्पके काटने पर उसकी तीसरी लहरमें नाक, आंख, मुखसे पानी आता है। सांप काटने पर यदि उस मनुष्यका उच्छ्वास ठण्डा निकले तो वह मनुष्य नहीं बचता। इसी प्रकार सांप काटे हुए मनुष्यकी नाक बैठ जाय तो वह बचता नहीं है। सांप काटे हुए मनुष्यको यदि तीक्ष्णनस्य देने पर भी चेत न हो तो वह नहीं बचता। तेज विष वाले बिच्छूके काटने पर भी नाक और मुँहसे काला रक्त आता है।

वात ज्वरमें छींके नहीं आतीं। पित्त ज्वरमें नाक और मुँह आ जाता है, पक जाता है और श्वासमें दुर्गन्धि आने लगती है। कफ ज्वरमें जुखाम होना नाकका जाना, श्वास, खांसीके विकार होते हैं। वातकफ ज्वरमें पीनस, दमा, खाँसीकी शिकायत होती है। खांसी कफ पित्त ज्वरमें भी आती है। ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त नाक, आंख और मुँह से निकलता है। कफ कासमें नाकमें पीनस और काला, चिकना कफ निकलता है। शुद्ध श्वासमें पीनस होता है। हुचकी रोगमें बार बार छींकें आती हैं, क्षयरोगमें जुखाम होता है, छींकें आती हैं। त्रिदोषज ज्वर भेदमें मुँह और नाकसे धुआंसा गरम वाष्प निकलता है। पित्तजन्य हृद्रोगमें मुँह और नाकसे भाफसी निकलती है। पित्तज-तृष्णामें भी नाक और मुँहसे गरम भाफसी निकलती है। कफ

जन्यतृषामें गलेमें कुछ अटका हुआ सा मालूम पड़ता है, शिर भारी पड़ जाता है।

कुष्ठ रोगके कीटाणु नासा तथा कण्ठके श्लेष्मामें उपस्थित रहते हैं।

ऊर्ध्वाङ्गके अरिष्ट

जिसके शिरके बाल और शरीरके रोम बिना तेल लगाये तेल लगानेके समान स्निग्ध और चिकने दिखें तथा जिसके नेत्र अत्यन्त चञ्चल, स्तब्ध और गहरे घुसे, टेढ़े, फैले हुए अथवा आकुंचित हो जायँ और जिसकी भौंहें खिंची हुई सी नीचे गिरी हुई दिखें, जिसे पदार्थ उल्टे दिखें या कम दिखें, जिसके नेत्र नेवले या कबूतरके समान अथवा आगके समान लाल दिखें तथा आँखोंसे बिना कारण अश्रु-धारा बहती रहे, जिसकी आँखोंकी बरौनी लूली सी पड़कर नीचे गिर जायँ, जिसकी नाक बहुत फैल जाय, अथवा संकुचित हो जाय अथवा नाक फुंसियोंसे भर, उसमें शोथ हो, नाकका रंग मलीन हो जाय, उसमें चिरनेके-से रेखाचिन्ह दिखें, इसी प्रकार जिसके नीचेका ओंठ नीचे ही रह जाय और ऊपर का ओंठ ऊपर उठ जाय अथवा दोनों ओंठ पकी जामुनके समान काले हो जायँ, जिसके दांतों पर रेतसी जमे अथवा दांत काले-लाल फटे हुए से, कीचड़ लिपटे हुए से हो जायँ या बिना कारण गिरने लगें, जिसकी जीभ टेढ़ी, चंचल, सफेद, सूखी हुई, स्तब्ध-भारी, काली लिपलिपी तथा रसास्वादवधिर हो जाय अथवा उसपर कांटेसे उत्पन्न होकर खुरदरी हो जाय उसे समझ ले कि यह एक वर्ष के अन्दर मर जावेगा। जिसकी गर्दन शिरको न संभाल सके, जिसकी ग्रीवा कसेरुका शिर और गर्दनका भार न सह सकें, जिसके जबड़े आहारके कौरको न पकड़ सकें, जिसका शरीर बिना कारण भारी या हल्का मालूम पड़े, बिना कारण नाकसे रक्त निकले वह भी एक वर्षके भीतर मर जाता है।

जिसके कपाल पर एकाएक सिराओंकी पांति अथवा अर्द्ध चन्द्राकार आकृति उपट आवे वह छः महीनासे अधिक नहीं बचेगा। जिसके शिर या मुँहमें तेल मिला गायका गोबर-सा दिखे, जिसके शिरसे धुएंके समान भाफ निकले उसे समझिये कि एक महीनेमें मर जायगा। जिसके शिर पर और भौंहों पर अकस्मात नयी रेखाएं या घेरेसे उत्पन्न हो जायँ वह यदि बीमार न हो तो छः दिनोंमें और बीमार हो तो तीन दिनोंमें मर जावेगा। जिसकी जीभ काली पड़ जाय, मुँहसे दुर्गन्धि आवे, बायीं आँखमें गढ़ा पड़ जाय अथवा जिसकी आंखों पर पक्षी बैठ जाय उसे समझ ले कि १५ दिनोंमें मर जायगा। जिसके सांवले चेहरेमें अकस्मात गोराई आजाय अथवा गोरा चेहरा श्याम पड़ जाय अथवा पुष्टि-ग्लानि-रूक्षता-स्निग्धता आदि परस्पर विरुद्ध बातें एक साथ दिखें वह मनुष्य बच नहीं सकता। जिसके छींकते, खांसते या डकारते समय चमत्कारिक आवाज़ निकले अथवा जिसकी सांस बहुत संकुचित ह्रस्व अथवा लम्बी दीर्घ हो जाय, जिसकी सांसके साथ साथ सुगन्धि या दुर्गन्धि निकले वह एक वर्षसे अधिक नहीं जीता। जिसके शरीरमें मधुरता बढ़ जाय और लीख-जुआं आदि उत्पन्न हों या चेहरे पर मक्खियां अधिक बैठें अथवा अत्यन्त विरसताके कारण मक्खियां पास आवें ही नहीं वह मनुष्य एक वर्षके भीतर मर जाता है।

जिसका थूँक या कफ पानीमें डूब जाय वह एक महीनेमें मर जाता है। जिसे आकाश घन पदार्थके समान और घन पदार्थ आकाशके समान तथा साकार वस्तु न दिखे और जो वस्तु न हो निराकार हो वह दिखाई पड़े, जिसे तिमिर आदि रोग न रहते हुए भी अनेक चन्द्रमा दिखें अथवा चन्द्रमाका दाग न दिखे, जिसे जाग्रतावस्थामें ही राक्षस, गन्धर्व, प्रेत, यक्ष, किन्नर आदि तथा विद्रूप आकृति दिखें वह एक वर्षके भीतर मर जाता है। जिसे आकाशके ऋषियोंके पासका अरुन्धती

तारा, ध्रुवतारा अथवा आकाशगंगा न दिखे वह भी वर्षके भीतर मर जाता है। जिसे मेघकी गर्जना, जलप्रवाहका शब्द, वीणानाद तथा मुरलीवादनका शब्द न होने पर भी सुनाई पड़े अथवा होने पर भी न सुनाई पड़े, इसी प्रकार कानोंमें अंगुली लगाने पर जो धुकधुक शब्द होता है वह न सुनाई पड़े, जिसे गन्ध, रस और स्पर्श वास्तविक से विपरीत मालूम पड़े अथवा जिसे इनका ज्ञान ही न हो, जिसे दीपक बुझानेके बाद उसमेंसे जो एक प्रकारकी गन्ध निकलती है वह न मालूम पड़े वह अवश्य मरने योग्य है। जिसे किसी दोषको नष्ट करनेके लिये जो उचित रस हो, उसे देने पर भी लाभ न होकर उल्टा दोषवृद्धि हो अथवा विपरीत रसवाले पदार्थ देने पर दोष शमन हो, जिसे शरीर पर आघात करने पर भी कुछ मालूम न पड़े, जिसे बिना तपश्चर्याके अथवा बिना योगसाधनके अतीन्द्रिय ज्ञान हो जाय, उसे भी मरनेके लिये तैयार समझिये।

जिसका स्वर हीन-दीन-अस्पष्ट अथवा घरघराता हुआ हो अथवा जो अकस्मात नहीं बोलता, या जिसे बोलना नहीं भाता, वह नहीं बच सकता। जिसका स्वर दुर्बल हो जाय, शक्ति और कान्तिका क्षय हो जाय और बिना कारण जिसका रोग अकस्मात बढ़े उसे समझिये कि मरेगा। जो बारम्बार दीन स्वरसे 'मैं मरूँगा—मैं मरूँगा' बकता है, वैद्यको उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। दर्पण, धूप और पानीमें जिसकी छाया या परछाहीं बिना कारण टूटी हुई, मुड़ी हुई, छिद्रयुक्त, परिमाणसे बड़ी, हिलती हुई, बिना शिरकी या दो शिरकी, टेढ़ी विकृत दिखे, उसका आयुष्य समाप्त हुआ समझे। जो किसी मनुष्यकी पुतली नहीं देख पाता, उसकी उमर समाप्त समझिये। जो थोड़ा खाने पर भी कफसे पीड़ित हो दीर्घश्वास छोड़ता है, जो सांस हल्की खींचता और लम्बी छोड़ता है, हाथकी मुट्ठी बांधकर कष्टसे इधर उधर गर्दन घुमाता रहता है, माथे पर जिसके पसीना बह रहा

है, उठाने पर जिसे चक्कर आता है, बिना कारण हँसकर मूर्छित हो जाता है, ओंठ चाटता है, ऊपरी ओंठ पर जीभ रख अनेक प्रकारके शब्द करता है उसे यमराजके अधीन समझिये।

जिस रोगीका गला, माथा और हृदय ठण्डा होने पर पसीना दे रहा हो और शेष अङ्ग गरम हों उसकी रक्षा ईश्वर ही कर सकता है। दृष्टि अथवा तेज क्षीण हो गया हो, चित्त व्यग्र, चिन्ताशील और कान्ति बिगड़ गयी हो, जिसकी धारणाशक्ति, शोभा, पुष्टि और लक्ष्मी अकारण बढ़ गयी हो अथवा अचानक नष्ट हो गयी हो उसे यमसदनका पथिक समझिये। जिसकी मानसिक और शारीरिक प्रकृति विपरीत हो जाय वह मनुष्य रोगी हो या नीरोग हो छः महीने में मर जायगा। जिसकी भक्ति, सुशीलता, स्मरणशक्ति, दा ़त्व तथा बुद्धि और शक्ति अकारण नष्ट हो जाय वह छः महीनेमें मर जाता है। जो मनुष्य शराबी के समान अथवा पागल के समान बोलता, काँपता और मूर्छित होता है वह एक महीनेमें मर जाता है। जिसके बाल उखाड़ने पर भी दर्द नहीं होता वह छः महीनेमें मर जाता है। जिसके गलेमें कोई रोग न होने पर भी गलेसे नीचे अन्नका कौर नहीं उतरता, जिसके नौकर-चाकर विपरीत हो जाते हैं, जिसका चेहरा मुर्दे के समान निस्तेज दिखता है, जिसे सदा नींद लगी रहती है अथवा जिसे नींद आती ही नहीं वह नहीं बच सकता।

जिसका मुँह आंसुओंसे भीग जाता है, आँखें डबडबायी रहती हैं; उसे यमराजका महमान समझिये। जिन बातोंसे पहले आनन्द और सुख मालूम पड़ता था उनसे त्रास मालूम पड़े तो वह नहीं बचता। जिसे एकदम कोई सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त रोग होजाय अथवा कोई रोग रहते हुए भी एकदम अच्छा हो जाय वह एकदम मर जायगा। जो बोलनेमें लड़खड़ाता है, जिसकी आँखें लाल हो गयी हैं वह नहीं बचता। जिस रक्तपित्त रोगीको लाल, काला इन्द्रधनुषके समान, पीला

हरा, चमकदार रक्त गिरता है अथवा रक्त रोमरन्ध्रोंसे निकलता है अथवा गला-मुँह और छातीसे टकराते हुए रक्त गिरता है वह रोगी मरता है। जिस रक्तपित्तके रक्तके दाग कपड़ेमें नहीं रहते, जिस रक्त पें दुर्गन्धि हो, जो रक्त वेगके साथ अधिक आता है वह रोगी नहीं बच सकता। यदि रक्तपित्त वालेको खाँसी और वान्ति होती हो, शोथ हो तो वह नहीं बचता। किसी रोगसे क्षीण हुआ मनुष्य जीभ बाहर निकालकर निश्चेष्ट पड़ जाय और उसे प्यास अधिक लगे तो वह अवश्य मर जायगा। यदि मदात्यय रोगीके चेहरे पर तेल लगा हुआ सा प्रतीत हो तो वह मर जाता है। मलमूत्रका अवरोध, दमा, शोथ, हुचकी, खाँसी, जुखाम, जीभ चलाना, आँखोंका शोथ हो जावे, नख पीले हों जिसे सब पीला दिखता है, वह अवश्य मरता है।

जिसे झपकीसी लगी रहे, दाह, अरुचि, वान्ति और मूर्छा हो, पेटका आध्मान, अतीसार आदि उपद्रवके साथ शोथ हो तो वह शोथ यदि पुरुषके पावोंकी ओरसे और स्त्रीके मुखकी ओरसे आया हो तो उसे मारता है। यदि वह शोथ पेट अथवा गुह्येन्द्रियसे आरम्भ हो तो चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री दोनों मरते हैं। जिसका शरीर सड़ने लगा हो, आँखें लाल हो गयी हों, आवाज बैठ गयी हो, अग्निमन्द हो, घावमें कीड़े पड़ गये हों, प्यास लगती हो, अतीसार हो, इस प्रकारका कुष्ठ-रोगी अवश्य मरता है। त्वचा वधिर हो गयी हो, अङ्ग जकड़े हुए तथा टेढ़े पड़ गये हों, कम्प-शोथ और वेदना हो तो ऐसे वायु रोगीकी मृत्यु हो जाती है। जिस वातरक्त रोगीमें मोह-मूर्छा-मद-निद्रा-ज्वर-मस्तक पीड़ा-अरुचि-श्वासके साथ सन्धियोंका संकोच और फोड़े होकर सड़ने लगनेकी शिकायत हो वह अवश्य मरता है।

किसी भी रोगमें शिरोरोग, अरुचि, श्वास, मोह, अतीसार, पिपासा और भ्रमकी अधिकता हो और रोगीकी आवाज क्षीण हो गयी हो, धातु, शक्ति और अग्निमें भी क्षीणता आ गयी हो तो ऐसा रोगी

मृत्युको प्राप्त होता है। रोगी कफ ज्वरसे पीड़ित हो और सबेरेके समय ही उसके चेहरेसे पसीना छूट रहा हो तो उसका बचना कठिन है। जिसके शरीर में मूँगेके रङ्गकी मसूरिकासी निकलें और तुरन्त अदृश्य हो जायँ वह शीघ्र मरता है। जिसके चेहरेमें या मुखके भीतरी भागमें मसूरकी दाल या मूँगेके रङ्गके दाग़ उठें उसके शरीरीका नाश होता है। जिसकी आंखें पीली पड़ गयी हों, मुँह फूला हो, कनपटी का मांस छूटा हुआसा शिथिल हो गया हो, शरीर गरम हो और उसे त्रास मालूम पड़ता हो तो ऐसे रोगी को वैद्य छोड़ दे।

जो रोगी दाँतोंसे नख कुरेदता है, नखोंसे बाल या तृण तोड़ता है, लकड़ीसे जमीन पर रेखाएँ खिंचाता है ढेलेपर ढेला मारता, जिसे बारम्बार रोमांच हो आता, पेशाब गाढ़ा और खाँसी सूखी आती है, ज्वर आता और वह बारबार हँसता, चिल्लाता और बिछौने पर पाँव पटकता है, साथ ही बार-बार नाक और कानोंमें हाथ लगाता है उसपर मृत्युका हाथ लगा हुआ समझिये। यदि रोगीके मुखमण्डलमें अकस्मात् तिल और व्यङ्ग अधिकतासे निकल आवें, दाँतों और नखोंमें सफेद दाग उत्पन्न हों अथवा पेट पर अनेक प्रकारकी सिरा उभड़ आवें तो वह रोगी बच नहीं सकता। जिसके ऊर्ध्वश्वास चलने लगे, शरीर ठण्डा पड़ गया हो, जाँघोंमें दर्द हो, जिसे किसी प्रकार चैन न पड़े उसे वैद्यको छोड़ देना चाहिये।

जिसके विकार एकदम बढ़ जायँ, स्वभाव और प्रकृति पलट जाय, वह एकदम मरता है। जिस रोगीके लिये वैद्यको औषधि ढूँढ़ने पर भी न मिलें अथवा अनेक बारकी अनुभूत औषधिसे भी लाभ न हो अथवा जिस रोगीके लिये औषधि या आहार तैयार करते समय उसके रङ्ग; गन्ध आदिमें अन्तर मालूम पड़े वह आरोग्य दिखता हो तौ भी नहीं बचता। जिसके घरमें जलती हुई आग सूखी लकड़ियोंके रहते भी नहीं जलती या बुझ जाती है, जिसके घरमें अकस्मात बर्तन फूटने

लगते हैं, एक पर एक रखे हुए बर्तन गिरने लगते हैं, उसके जीवनके लिये अरिष्ट ही समझिये।

जो रोगी अशक्त और मरणोन्मुख होते हुए भी एकदम अच्छासा मालूम पड़े उसे अच्छा न समझिये। जब वैद्य समझ ले कि अब यह रोगी नहीं बचेगा तब घरवालोंके आग्रह करने पर भी वैद्य उसे दवा न दे। वैद्यको यह भी उचित नहीं कि उससे या उसके घर वालोंसे यह दुःखद वार्ता कहे कि अब यह नहीं बचेगा। मरणशील रोगीकी औषधिकी शक्ति अदृश्य शक्तियाँ नष्ट कर देती हैं। इसलिये उसे औषधि देना व्यर्थ है। वैद्यको सावधानीके साथ अरिष्ट ज्ञान सम्पादित कर यश सम्पादन करना चाहिये। साधारणतः आयुष्य और पुण्य क्षीण होने पर मनुष्य मरता है; किन्तु जो मनुष्य साहसकर्ममें प्रवृत्त रहता है, युद्ध और शिकारमें आत्मरक्षाकी परवाह किये बिना प्रवृत्त रहता है, हाथी-सिंह, व्याघ्रादिसे सर्कस आदिमें कुश्ती लड़ता है और विषम प्रसङ्ग उपस्थित होने पर उन्हें टालता नहीं वह आयुष्य और पुण्य क्षीण होनेके पहले भी अकाल मृत्युसे मर सकता है।

जो रोगी स्वप्नमें राक्षसोंके साथ नाचते हुए पानीमें डूबनेका दृश्य देखता है वह उन्माद रोगसे मरता है। जो अपस्मार रोगी देखता है कि मैं भूतप्रेतों या मुर्देके साथ नाचता हुआ जा रहा हूँ वह मरता है। स्वप्नमें सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण देखनेसे नेत्ररोग होता है। जो स्वप्नमें सूर्य और चन्द्रमाको गिरते हुए देखता है, उसका दृष्टि नाश होता है। आधीरातसे पहलेका देखा हुआ स्वप्न निरर्थक है। तीसरे पहरके स्वप्नका फल कुछ दिनोंमें और पिछले पहरके स्वप्नका फल शीघ्र होता है।

नासा चिकित्सामें उपयोगी यन्त्र

नाककी शस्त्र क्रियामें भी प्रायः शालका यन्त्रका उपयोग होता है; किन्तु आवश्यकतानुसार कभी-कभी अन्य यन्त्र शस्त्र भी काममें

आते हैं । नाकके बाल या बालके समान बारीक सूक्ष्म शल्य निकालने के लिए एक छः अंगुल लम्बी संडसी होता है । इससे आंखके परवाल बालभी निकाले जाते हैं । नासार्बुद या नासार्शमें शल्य कर्म करने के लिये जो नाड़ीयन्त्र होता है उसकी लम्बाई दो अंगुल होती है और उसके एक सिरेमें छिद्र होता है, और इसकी मोटाई तर्जनी अंगुलीके बराबर होती है, इसका आकार भगन्दर यन्त्रके समान होता है । नाकमें समीप अथवा दूरमें क्रिया करनेके लिये छः और सात अंगुल लम्बी दो सलाइयां (शलाका) होती हैं । नाक या मुख में क्षार लगानेके लिये एक मोटी, दूसरी पतली और तीसरी लम्बी तीन प्रकारकी सलाइयां होती हैं । इसी प्रकार दागनेके लिये भी तीन प्रकारकी सलाइयां मोटी, पतली और लम्बी होती हैं, जिनका मुख जामुनके फलके आकारका होता है । किन्तु नाकके अर्बुद या नासार्श को दागकर जलाना हो तो ऐसी सलाईका मुख जंगली बेरके बीजके समान अथवा अनारके दानेके समान रखना चाहिये जो बीचमें खाली और अन्तमें तेज ओंठ वाली हो । इसी प्रकार क्षार लगाने की इस प्रकारकी सलाई आठ अंगुल लम्बी, गहरे मुखकी छिंगुलियाँ अँगुलीके नखके समान रहना चाहिये ।

जब नाकके भीतर मांस बढ़ जाय या रवा पड़ जाय, उससे सांस लेनेमें रुकावट होने लगे तब उसे खरोंचकर और मथकर निका-लनेकी आवश्यकता पड़ जाती है । इस कार्यके लिए खजश शस्त्र होता है । इसमें आधे-आधे अंगुलके गोलाकार मुखवाले आठ कांटे लगे रहते हैं, जिससे यह खज (रई-मथानी) के समान दिखती है । नासारोगमें इसे भीतर डालकर हाथसे मथते हैं और नाकसे रक्त निकालते हैं ।

सिरावेधन

शिरावेधनका विषय कर्णरोग विज्ञानके परिशिष्टमें दिया गया है ।

नासार्श तथा नासाछिद्रकी रुकावटमें नाकमें भी फस्द खोलनेका विधान है। इस कामको बहुत चतुर वैद्यको करना चाहिये। क्योंकि स्वभावसे ही सिराएं चलायमान होती हैं। मछलीके समान उनकी गति उल्टी और सीधी दोनों प्रकार की होती है। इसलिये यन्त्रके साथ मध्यमा अँगुलीके नख भागकी ओरसे ताड़नकर पहले जरा उठा ले और सिरावेधनमें सावधानीसे काम ले। जिस वैद्यको सिराओंका अच्छा ज्ञान नहीं है, उसे इस कार्यमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। थोड़ी भूलसे कई व्याधियाँ और उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये आवश्यकता हो तो किसी अच्छे जर्राहकी सहायतासे कार्य करे। स्नेहन-स्वेदन-वमन-विरेचन आदि क्रियाओंसे तथा लेप आदिसे जो व्याधियाँ शान्त नहीं होतीं वे सिरावेधनसे ठीक की जा सकती हैं। शल्यतन्त्रमें सिराव्यधको चिकित्साका आधा अङ्ग माना गया है। अतएव शालाक्य तन्त्रमें भी आवश्यकतानुसार उसकी प्रधानता स्वीकार की गयी है। जिस प्रकार कायचिकित्सामें पञ्चकर्मकी प्रधानता है, उसी प्रकार शल्य-शालाक्य तन्त्रमें रक्तमोक्षण या फस्द खोलकर अशुद्ध रक्त निकालकर शरीर शुद्ध किया जाता है।

सिरावेधनसे सब प्रकारके दोष निकलते हैं; क्योंकि रक्तमें सब दोष मिले रहते हैं। रक्त सिराओंमें रहता है और इन्हींके द्वारा अशुद्ध रक्त हृदय और फुफ्फुसमें जाकर शुद्ध होता है। सिराओंके दूषित होनेसे—अर्थात सिरागत अशुद्ध रक्त दोषोंके द्वारा अधिक दूषित होनेसे उसका शुद्धीकरण स्वाभाविक नहीं हो पाता। अतएव रोग शान्तिमें भी विलम्ब होता है। सिरामोक्षणसे दूषित रक्त निकल जाता है, तब सिरागत रक्तकी स्वाभाविक रीतिसे शुद्धि होने लगती है। पञ्चकर्मके द्वारा जो शुद्धि होती है, उसमें सभी दोष नहीं निकलते; किन्तु सिराव्यध द्वारा रक्तके दोष अधिक परिमाणमें बाहर निकलते

है। इसीलिये सिरावेधनकी श्रेष्ठता आयुर्वेद और यूनानी दोनों शास्त्रोंमें स्वीकार की गयी है। सिरावेधनमें एक खूबी यह भी है कि इसमें दोष निकालना अपने हाथ रहता है। यदि देखे कि सिरावेधन करने पर जो रक्त निकल रहा है, वह दूषित नहीं है तो उसे तत्काल बन्धन खोलकर बन्द कर सकते हैं; किन्तु वमन-विरेचनमें अपना अधिकार उतना नहीं रहता। औषधि प्रभावसे वमन-विरेचन यथेष्ट हुए बिना उसकी रुकावट नहीं की जा सकती। यदि बलात् ऐसा करें भी तो उससे हानि होनेकी सम्भावना रहती है; किन्तु सिरामोक्षणमें यह बात नहीं है। पञ्चकर्ममें पाचन औषधियाँ पीनी पड़ती हैं। पहले दोषोंका पाक करके तब संशोधन करना पड़ता है। सिरामोक्षणमें मुख्य तीन बातें देखनी पड़ती हैं। (१) सिरामोक्षण ऐसे रोगीका होना चाहिये, जिसके शरीरमें रक्तकी अधिकता हो और वह रक्तज रोगोंसे पीड़ित हो। (२) यदि रोगीका रक्त बढ़ रहा है और वह निकाला न जाय तो उसमें रोग बढ़नेका भय हो और (३) अशुद्ध रक्तकी वृद्धिसे क्षय रोग होनेका भय हो। खासकर ऊर्ध्वाङ्गमें कोई फोड़ा फुंसी, कर्णार्श, नासार्श आदि ऐसी व्याधियाँ हैं और ऐसे कोमल स्थानमें होती हैं जहाँ उनके पकने-बढ़ने और फटनेसे भयङ्कर परिणाम हो सकते हैं। आयुर्वेदके समान यूनानीमें भी फस्द खोलनेका विधान है और इस ऊर्ध्वाङ्ग-चिकित्साकी पुस्तकमें जहाँ-तहाँ ऐसा जिक्र हुआ है कि यूनानीवाले इस रोगमें अमुक सिराका मोक्षण करते हैं। अतएव कुछ बातें यूनानी मतानुसार भी जान लेना आवश्यक है। यूनानीमें जिन सिराओंका वेधन किया जाता है, वे १० प्रकारकी हैं और उनके अलग अलग नाम हैं। १ शिरारों २ हफ़्अम्दाम ३ वासलीक ४ असलीम ५ अबती ६ हब्बलजरा ७ साफन ८ अरकुलनसा ९ मावज और १० चाररग।

शिरारो या सरारो—इस नामकी सिरा या रग हाथके अंगूठे

की सीधमें होती है। इसके खोलनेसे शिर और मुखके रोगोंमें लाभ पहुँचता है।

हफ्तअन्दाम—इसे शरीरको नहर समझा जाता है। यह तर्जनी अंगुलीकी सीधमें होती है। इसके खोलनेसे शरीरके सब रोग अच्छे हो सकते हैं।

वासलीक—यह सिरा मध्यमा अँगुलीकी सीधमें होती है। इसे खोलने अर्थात् इसमें सिराव्यध होनेसे ग्रीवाके नीचेके भागके सब रोग अच्छे होते हैं। किन्तु इसे खोलनेमें वैद्यको बहुत सावधान रहना पड़ता है। क्योंकि इसके नीचेही धमनी चलती है। यदि नश्तर गहरा हो जाय तो धमनी कटनेका डर रहता है। जिससे मृत्युभी हो सकती है। धमनी शुद्ध रक्तवहा होती है। शुद्ध रक्त ही जीवन है। उसके निकल जानेसे जीवन संकटमय हो सकता है।

असलीम—इसे असीलम भी कहते हैं। यह रग बहुत बारीक होती है। हाथके पृष्ठ भागपर छिंगुलियाँ और अनामिका अँगुलीके बीच भागके सीधमें यह होती है। इसे खोलनेमें बहुत बारीक धारका शस्त्र लेना पड़ता है। फस्द खोलते समय रोगीका हाथ गरम पानीमें रखा जाता है, जिससे रक्त बन्द न हो जावे। दाहिने हाथमें इस रगको खोलनेसे यकृतके रोग अच्छे होते हैं और बायें हाथका रग खोलनेसे प्लीहाके रोग अच्छे होते हैं। यदि दोनों हाथोंकी यह रग खोली जावे तो फुफ्फुसके रोगोंमें लाभ पहुँचता है। स्मरण रखना चाहिये कि इस सिरासे अधिक रक्त न निकाला जावे, क्योंकि इसका सम्बन्ध हृदय और यकृतसे है; अतएव इसके द्वारा जो रक्त निकलता है, वह हृदय और यकृत का होता है।

अबती—यह सिरा कक्षा अर्थात् बगलसे आती है और कोहनीसे चलकर छोटी अंगुलीकी सीधमें आ पहुँचती है। इसमें रक्तस्राव करनेसे उदर और उसके नीचे होनेवाले रोग अच्छे होते हैं।

हब्बुल—इसे हबलुलजरा भी कहते हैं। यह सिरा या रग हाथमें वासलीक रगसे मिली रहती है। किसी किसी मनुष्यमें हफ्त-अन्दामसे भी मिली रहती है। जो गुण वासलीक रगके खोलनेसे होते हैं, वही इससे भी होते हैं।

साफन—यह रग टखनेमें होती है और अँगूठेके सामने इसे खोलनेसे घाव और खुजलीमें लाभ होता है। पुरुषेन्द्रियकी व्याधिमें और मासिक धर्मका रज प्रवर्तित करनेके लिये भी इसे खोला जाता है।

अरकुलनसा—यह बहुत पेचदार रग है। पिण्डली पर बन्धन बाँधा जाय तो यह दिखने लगती है। यदि न मिले तो पाँवकी छोटी अँगुली और पाँवकी अनामिकाके बीचमें इसे पाकर खोलते हैं। इस फस्दके खोलनेसे गृध्रसी रोग आराम होता है।

मावज—यह रग जानुके नीचे है। इसे खोलनेसे गुदा और योनिकी पीड़ा दूर होती है।

चाररग—इसमें चार सिराएँ सम्मिलित हैं। इनमेंसे दो ऊपरके ओंठमें और दो नीचेके ओंठमें हैं। इनका वेधन गोल मुखवाले नश्तरसे करना चाहिये। इनके खोलनेसे मुख, तालु, ओष्ठ, जिह्वा और गलेके रोग दूर होते हैं।

फस्द खोलनेमें दिनोंका भी विचार किया गया है। शनिवारको फस्द खोलनेसे जनून, उन्माद, अपस्मार आदि मस्तिष्क सम्बन्धी रोग अच्छे होते हैं। रविवारको फस्द खोलनेसे सभी प्रकारके रोगोंमें लाभ पहुँचता है। सोमवारको फस्द खोलनेसे रुधिर विकारकी शान्ति होती है। बुधवारको किसी प्रकारकी फस्द नहीं खोलना चाहिये। गुरुवारको फस्द खोलनेसे वातप्रकोप बढ़ता है और पागलपन होनेका डर रहता है। शुक्रवारको फस्द खोलनेसे मस्तिष्क सम्बन्धी जनून रोग बढ़ते हैं।

शीतकालमें मध्यान्हके समय फस्द खुलवाना अच्छा है; क्योंकि जाड़ेमें रक्त गाढ़ा रहता है और मध्यान्हके समय धूपसे वह पतला

पड़ जाता है, जिससे उसका परिभ्रमण ठीक रीतिसे होता है। ग्रीष्मकालमें फस्द सन्ध्याके समय खुलवाना चाहिये। ग्रीष्ममें सबेरे खुलवानेसे शरीरमें रक्त कम पड़ जाता है और शरीरमें खुश्की बढ़ जाती है। वर्षाकालमें रुधिर मातदिल रहता है। अतः वर्षामें फस्द खुलवानेकी आवश्यकता नहीं। बहुत आवश्यकता हो तो चिकित्सककी सम्मतिसे खुलवावे। प्रायः फस्द खोलना कोहनीके खम परसे और पांवके पंजेके ऊपर अधिक निरापद रहता है। कहीं भी खोलना हो, इतना तो स्मरण ही रखना चाहिये कि कहीं रग पर घाव न हो जाय। बांहके ऊपर से नीचे तक और बांहकी तरफ जो बड़ी रग अँगूठेकी जड़से कन्धे तक जाती है और दूसरी बांहके भीतरकी ओर जो उतनी ही बड़ी रग अँगुलीसे कोहनी तक जाती हैं, वह मुख्य है। तीसरी रग भी अन्दाजन इतनी ही बड़ी हाथके ऊपर कोहनीके नीचे दिखती है और वहांसे उसकी दो शाखा हो जाती हैं। एक भीतरकी रगकी ओर और दूसरी बाहरकी ओर जोड़के पास जाती है। बाहरकी शाखामें बीचवाली रगमें भी फस्द खोलना ठीक होता है। फस्द खोलनेके पहले अँगुलीका सिरा उस रगपर रखे, यदि उसके नीचे कोई धमनीकी टपक या धमक मालूम पड़े या कोई दूसरी सिरा हो तो सावधानीसे धमनी बचाकर अशुद्ध रक्तवाहिनी सिराको खोले। दोनोंके बीचकी सिरा ऊपरसे नीचे तक उसके पीछे होती है, उसे नहीं छेड़ना चाहिये। रक्त निकल जाने पर स्वस्तिक बन्धन बांधे।

यदि पांवमें फस्द खोलना हो तो टांगके नीचे एक पट्टी खींचकर टांगमें बांध दे और रगोंके फूलने पर सबसे बड़ी रग जो पांवके ऊपरी भागमें लम्बी होती है, उसीमें लम्बाईकी ओर नश्तर लगावे। रक्त निकल जाने पर पट्टी खोलदे और रोगीको पांव फैलाकर लिटा दे। घावमें लिंटकी गद्दी और स्टिकनिंग प्लास्टरका फाहा या कर्णरोग विज्ञानमें लिखी दवा लगाकर पट्टी बांध दे। हकीम लोग खाली पेट

बिना कुछ खाये फस्द खोलना अच्छा समझते हैं। सिरामोक्षणके पश्चात रोगीको क्रोध, परिश्रम, मैथुन, दिनमें सोना, अधिक बोलना, घोड़े-एक्का-तांगा आदिकी सवारी, ऊँचे चढ़ना, अधिक पढ़ना, अधिक बैठना, अधिक चलना, शीतल वायु, धूपसे बचना चाहिये। विरुद्धान्न, दूध-मछली आदि, अजीर्ण करनेवाले पदार्थ, भारी और विदाही पदार्थ आदिसे भी तब तक बचना चाहिये, जब तक पूरा बल न आजावे। एक महीने तक पथ्यापथ्य पर ध्यान रखना आवश्यक है।

नासाछिद्रकी परीक्षा

नासाछिद्रके भीतर जो पीड़ा होती है और जिसे साधारणतः नेत्रोंसे नहीं देख सकते उसे देखने और रोग निर्णय करनेके लिये एक **नासिका यन्त्र** होता है, उसे डाक्टर लोग लैरिंगस्कोपिक कहते हैं। इसमें दर्पण लगाकर अथवा बिजलीका प्रकाश पहुँचाकर देखते हैं। इसके सिवाय जो व्याधि कुछ गहराईमें होती है, उन्हें देखनेके लिये **नासावीक्षण यन्त्र** होता है। इसे डाक्टर लोग नेसेल स्पेकुलम कहते हैं। इसे नासाछिद्रमें भी प्रविष्ट करनेसे भीतरकी व्याधि दिखाई पड़ती है। डाक्टरी दूकानोंमें डूप्ले और फोंकेलके बनाये हुए ऐसे यन्त्र मोल मिलते हैं। जब नाकमें इस यन्त्रको लगाना हो, तब रोगीका सिर कुछ पीछेकी ओर झुका दे। यदि नासारन्ध्रके पीछेकी ओरकी व्याधि देखनी हो तो रोगीके तालुके पीछे अँगुली डाल दे अथवा गलेके पीछे एक दर्पण रखे तो ठीक पता लग जावेगा। यदि नासास्थिकी परीक्षा करनी हो तो नाकमें नासाशलाका (नेसेलप्रोब) डालकर पता लगावे।

इतिशम्

नासारोग
Nose Diseases

१ प्रतिश्याय—Rhinitis
२ दीप्त—Simple Rhinitis
३—Hypertrophy
४ नासापरिशोष — Rhinitis Sicca
५ अपीनस—Atrophic Rhinitis
६ पूतिनस्य—Ozena
७ नासापाक—Chronic Rhinitis
८ रक्तपित्त—Epistaxis
९ पूयरक्त—Ulcerative chronic Rhinitis
१० क्षवथु—Sneezing
११ नासार्श—Polypus
१२ नासार्बुद—Tumer (papilloma) Chondroma
१३ नासाप्रतिनाह — Dialalation of the Narsae
१४ नासा परिस्राव—Begining of the acute Rhinitis
१५ रक्त प्रतिश्याय } T.B. formation of cavity
क्षयोघातसपीनस }

कर्णरोग
Ear Diseases

१ कर्णशूल—Otalgia
२ कर्णनाद — Tinni Auriu
३ बाधिर्य—Deafness
४ कर्णस्राव—Allorrho
५ कर्णकण्डू— Dermeti (एकज़िमा आफ दी ई
६ कर्णगूथक — Impac Wax
७ कृमि कर्ण—Magets
८ कर्णपाक—Suppurat
९ कर्णशोथ—Ottitis
१० मध्यकर्ण शोथ - Ottit Me
१२ बाह्य कर्ण शोथ—Exter Ottitis
१३ पूतिकर्ण—Suphurat Ottitis Media
१४ कर्णार्श—Palypus i the ear
१५ कर्णार्बुद—Tumour the ear
१६ कर्णपिटिका — Fur Closis
१७ कर्णविद्रधि— Ear bo